

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180802

UNIVERSAL
LIBRARY

Mania University Library

Accession No. ^H 3100

5

95

जी. वि. वि. सुकृष्ण सिंह

संस्कृत का शिक्षाकार

Book should be returned on or before the date last

1.

--	--	--

जसकोट का चित्रकार

सुदर्शनसिंह मजीठिया

दिल्ली पुस्तक सदन
नई दिल्ली : पटना

प्रकाशक :

दिल्ली पुस्तक सदन,
१२६, कमला मार्केट,
नई दिल्ली

(C) १९५९ सुदर्शनसिंह मजीठिया

मूल्य : ४.००

मुद्रक .
राजकमल प्रिंटिंग प्रेस,
तुर्कमान गेट, दिल्ली

परिचय

‘जसकोट का चित्रकार’ सुदर्शनसिंह मजीठिया का मनोरंजक उपन्यास है। स्थूल रूप से उपन्यास तीन भागों में बाँटा गया है। ये तीनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। कथानक सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रखा गया है। चित्रकार उदयसिंह ने दूसरे भाग में संस्मरणात्मक ढंग से कथा प्रस्तुत की है। शैली नवीन है। मजीठिया का प्रयत्न सराहनीय है। यों तो उपन्यास के सभी पात्र सजीव हैं परन्तु सागर का चरित्र अपनी विशेषता रखता है। उसने उपन्यास के कई अंगों को जगमगा दिया है। उपन्यास में वीर्यवान् और भावुकता का समन्वय कौशल से हुआ है। मेरी बधाई।

मयूर प्रकाशन,
भारमी

—वृन्दावनलाल वर्मा

‘मुठभेड़ ।’

‘किससे ?’

‘शाही फौज के कुछ सैनिकों से ।’

संदेशवाहक वह सैनिक धूल से तो सना हुआ ही था किन्तु घबराया हुआ भी था । उदय उस समय अपने डेरे में अपने तंबू के बाहर के बाहर खड़ा था । सैनिक के स्वर से उसका ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया । उदय क्या करता ? क्योंकि वह सैनिक भी तो आखिर पागलों सरीखा चिल्ला उठा था । अभिवादन करने के पश्चात घोड़े से उतर कर वह सैनिक उदय के समक्ष खड़ा था । उदय ने कहा, ‘देखा नायक, शाही फौज के कितने सैनिक होंगे ?’

‘राजन् ! उनकी संख्या करीब तीन सौ है ।’

‘हमारे कितने सैनिक हैं ?’

‘हमारी ओर से कोई दो सौ नंगी तलवारें उनका रास्ता रोक रही हैं ।’ सुनकर उदय के मस्तक पर बल पड़ गए । चौड़ा मस्तक क्षण भर के लिए सिकुड़-सा गया । ‘तुम चलो मैं आता हूँ ।’

नायक ने झुककर अभिवादन किया और कूदकर घोड़े पर सवार हो गया । ऐड़ लगते ही घोड़ा द्रुत वेग से चला गया । उदय उस ओर देखता रहा । उदय के आस-पास ही उसके अंगरक्षकों के तम्बू थे । उदय

ने कहा, मैं कहता था न कि ये शाही फौज की टुकड़ियाँ निरंतर हमारी खोज में घूमा करती हैं।' इतना कहकर वह आँधी की तरह तम्बू में घुस गया। प्रहरी को उसने घोड़ा लाने की आज्ञा दी।

एक काला तगड़ा घोड़ा उदय के लिए वहाँ ला दिया गया। अंगरक्षकों सहित अस्त्रों से सुसज्जित हो उदय घटनास्थल की ओर बढ़ गया।

दूर ही चिल्लाने और मारकाट के स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ रहे थे। संध्या हो रही थी और सूर्य डूबना ही चाहता था। परन्तु कुछ ऐसी घुंघलाहट छा रही थी जैसे कि महाभारत में जयद्रथ वध के समय आता है। शाही फौज का एक भाग उदय की सेना के एक दस्ते के साथ भिड़ गया था।

उदयसिंह के पहुँचते-पहुँचते वह मुठभेड़ समाप्त हो गई थी। शाही दस्ते के पैर उखड़ गए थे और मैदान उदयसिंह के हाथ था। अपने राजा को देख कर सैनिकों में नया उत्साह आ गया था। परन्तु उदयसिंह के मस्तक पर बल पड़ गए। निस्सन्देह विजय उदयसिंह की थी किन्तु वह जानता था कि उसके अस्तित्व का शाही फौजों को पता लग चुका है। हारे हुए शाही सैनिक अपने साथ पूरी शाही फौजों को लायेंगे उसे संभालना आसान कार्य नहीं होगा।

रात आने लग गई थी। धूल और खून से सने लोगों के शव पड़े थे। गिद्धों के दल आसमान में मंडरा रहे थे। गिद्धों की काली छायाएँ रात को और भी सघन बना रही थी।

रातों रात आज्ञा हुई और सारे तम्बू उठाए जाने लगे। चाँदनी रात में योगियों के समान समाधिस्थ प्रतीत होने वाले सारे तम्बू उखाड़े जा रहे थे। चाँदनी रह रह कर खेल उठती थी।

दो



उस रात को पूर्ण चन्द्र की स्निग्ध ज्योत्सना का धवल प्रकाश यमुना के प्रशांत जल पर रह रह कर खेल उठता था। यमुना के तट पर उस दिन मैं अकेला ही बैठा था। दूर मुझे कोई नौका विहार करते हुए दीखा। उसके राजसी वस्त्र चाँदनी में दमक रहे थे। उसके साथ दो चार दासियाँ भी थीं। उसकी नाव भी इस किनारे पर आ लगी।

उसका सौंदर्य और उसके वस्त्रों को मैं देखता ही रहा।

उमने मेरी ओर देखा...मुझे ऐसा लगा कि मुझे बुलाया जा रहा है.....मैं उस ओर गया.....

‘आप उदयसिंह.....’

‘आप...मैं...मुझे आप जानती हैं?’

‘जसकोट का चित्रकार उदयसिंह यहाँ कैसे?’

‘आप मुझे कहाँ से जानती हैं?’

‘आपकी ख्याति मैं सुन चुकी थी। आपको कुछ रोज पहले देखने का भी मौका मिला था। मेरे एक दोस्त ने बताया था कि आप आजकल दिल्ली में हैं। आपको देखने की मैंने तमन्ना जाहिर की। हम लोग शाही पोशाक में आपके डेरे पर आए थे। आप से बातें भी की थीं। अपने नहीं पहिचाना.....’

‘मैं नहीं जानता.....’

‘मैं जेबुन्सिसा हूँ ।’

‘आलमगीर औरंगजेब की पुत्री ?’

‘जी…… !’

जेबुन्सिसा दासियों सहित इस किनारे पर बेसुध सी अवस्था में आ पहुँची थी । उसने तो मुझे पहिचान लिया था किन्तु मैं नहीं पहिचान सका था ।

दोनों एक दूसरे के लिए महान् थे । उसका नाम मैंने सुना था । फारसी की वह एक महान् कवियित्री थी । उसे देखने का आज सौभाग्य भी प्राप्त हो गया था ।

दिल्ली आकर भी इन मुगल इमारतों की ओर बढ़ने का साहस मैंने नहीं किया था । क्योंकि वहाँ औरंगजेब का शासन था, वहाँ अत्याचार खुलकर खेलता था । और एक वह थी जो दिल्ली में मेरी उपस्थिति सुन सादी पोशाक में मुझसे मिल भी आई थी ।

दक्षिण से अपने राज्य जसकोट से मैं यों ही पर्यटन के लिए निकला था । भ्रमण के सिलसिले में मैं दिल्ली आया था । जेबुन्सिसा ने मुझसे नौकाविहार के लिए कहा किन्तु मैंने असमर्थता प्रगट की । मिलने का वचन उसे मैंने दे दिया था । मैं लौट पड़ा, किन्तु पीछे मुड़कर नाव को देख लेता था । जीवन में एक अभाव को महसूस करते हुए भी निसा के लिए मेरे मन में श्रद्धा और सम्मान की भावना उमड़ी पड़ी थी । मुगल सौंदर्य से साक्षात्कार करने का यह मेरा प्रथम अवसर था ।

मैं मौन अवश्य था किन्तु बार-बार मेरे मन में तूफान उठते थे । यमुना तट पर प्रसन्न मुद्रा से मैं आया था और गंभीरता को लेकर लौट रहा था । विचारों के भीषण भंभावात में उसके स्वर अभी तक मेरे कानों में गूँज रहे थे ।

दूसरे दिन—

उसके गृहल में मैं पहुँचा ।

मानता हूँ कि मैं चित्रकार हूँ । लोग कहते हैं कि मेरी तूलिका का एक-एक स्पर्श सौंदर्य को जन्म दे जाता है । परन्तु निसा की प्रतिभा क्या कम थी ? फारसी कविता में उसने एक स्थान प्राप्त कर लिया था । उसकी प्रतिभा स्पृहणीय थी ।

उसके निवास पर मैं पहुँचा । मेरे आगमन की उसे सूचना दी गई । दासी के पीछे-पीछे उसके निजी कक्ष में मैंने प्रवेश किया । इशारा पाकर दासी चली गई । कमरे में एक मूल्यवान् ईरानी कालीन बिछा था । उस पर गद्दियाँ रखी थीं । गद्दियों पर सुनहरी काम किया गया था । दीपशिखाओं के प्रकाश में कमरा आलोकित हो रहा था । कमरे की अद्भुत सजावट पर मैं मुग्ध था ।

अपने बनाए दो-एक चित्र भी मैंने अपने पास रखे थे । शाहजादी के पास ही फारसी की कुछ किताबें पड़ी थीं ।

दीवारों पर चित्र टँगे थे । एक चित्र पर मेरी दृष्टि गई..... उसमें एक क्लान्त पथिक सघन तिमिर से, बीहड़ पथ से, एक हल्की सी ज्योति लेकर अपना पथ प्रशस्त कर रहा था ।

उस चित्र को देख मैं मुस्करा पड़ा । शाहजादी उसे देख हँस पड़ी क्योंकि वह चित्र मेरा ही था ।

‘आपको यह चित्र कहाँ से मिला ?’

‘दक्षिण से एक सौदागर आया था, उससे यह चित्र मैंने खरीदा था । इसी से आपका प्रथम परिचय मुझे मिला था ।’ शाहजादी ने कहा ।

‘अपने एक मुसलमान सामन्त से मैंने आपकी फारसी में दो-एक रचनाएँ सुनी थीं । तब आपका पहली बार मैं परिचय पा सका था ।’

उसने एक आलमारी खोली और मेरे हाथ में एक पुस्तक थमाते हुए कहा, ‘ले जाइए, इसे पढ़िये मेरा सौभाग्य होगा ।’

‘आप यहाँ भी कविता ही कर रही हैं ।’

‘क्यों ?’

‘सौभाग्य आपका होगा या मेरा ।’

निसा हँस-सी पड़ी परन्तु मैं उसे हँसी नहीं कहूँगा वह मुस्करा दी । उसकी मुस्कराहट हँसी से अधिक थी उसे जोर से हँसने की आदत नहीं थी, उसकी मुस्कराहट में प्रौढ़ता और गंभीरता छिपी थी । उससे उसका सौंदर्य और भी बढ़ जाता था । उसने मेरे हाथों की ओर देखते हुए कहा, ‘आपके पास क्या है ?’

‘मेरे चित्र ।’

वे चित्र निकाल कर मैंने उसके समक्ष रख दिए ।

‘इनका मूल्य क्या है !?’ उन्हें एकटक देखने के पश्चात् उसने कहा ।

‘मूल्य !’

‘जी हाँ ।’

‘आपकी दी हुई यह पुस्तक ।’

यह पुस्तक जहाँआरा का संग्रह था, निसा का नहीं ।

‘इतना ही मूल्य क्यों ?’

‘यह तो निर्माता के मन पर है चाहे वह जितना मूल्य ले ।’

‘इससे आपका क्या फायदा होगा ?’

‘फायदे के लिए मैं यहाँ नहीं आया ?’

‘फायदे के लिए मैं यहाँ नहीं आया ?’

निसा ने एक शाल लपेट रखा था । बाहर हल्की-हल्की चाँदनी पड़ रही थी ।

‘इन तस्वीरों को कहीं और देते तो शायद ज्यादा कीमत मिल जाती ।’ शाहजादी ने कहा ।

‘मैं सौदागरी करने नहीं आया हूँ ।’

सुन कर शाहजादी हँस पड़ी । ओठों की पृष्ठभूमि पर उसके दाँतों की पंक्ति बहुत ही सुन्दर दिखाई पड़ी । उसकी इस हँसी से मुझे अवश्य आश्चर्य हुआ किन्तु इसमें उसका अविरोध और अलहड स्वरूप

झलक मार गया ।

मैं तो उसे विस्फारित नेत्रों से देखता ही रह गया । उसने कहा,

‘क्या देख रहे हैं ?’ प्रश्न सीधा-सा था ।

‘शायद मुझ पर आप हंस रही हैं’ । मैंने कहा ।

‘यह आपकी गलतफहमी है ।’

‘तो मेरे चित्रों का आपने मूल्य क्यों पूछा ?’

‘वाह यह भी कोई बात है । एक चीज इतनी मेहनत के बावजूद बनाई जाए और उसकी कीमत भी पूछना गुनाह है ।’

‘तो फिर आपने जो कृति दी है उसका मूल्य क्या है ?’

‘क्यों ?’

‘इसीलिए कि एक चीज मेहनत से लिखी जाए और उसकी कीमत भी पूछना गुनाह है ।’

निसा शांत होकर कुछ सोचने लगी । इसमें सन्देह नहीं कि निसा एक कवयित्री थी किन्तु चित्रों की विभिन्न शैलियों की उसे बारीक पहिचान थी । विशेषकर भारत में प्रचलित विभिन्न चित्रशैलियों की वह सफल जानकार थी । इसीलिए मेरे चित्रों का वह मूल्य बारीकी से कर सकने में समर्थ थी ।

उसकी अपनी एक चित्रशाला थी जिसमें कला के उत्तमोत्तम नमूने टंगे थे ।

वह मौन हो गई । उसके बर्ताव में स्वाभाविकता और सरलता थी अतएव इस थोड़ी सी संगति से ही मैं उसके काफी करीब-सा आ गया था ।

उसने एक किताब खोलकर कहा ‘देखिए फारस का एक कवि क्या कहता है ?’

‘कहिए…………।’

‘जिन्दगी की असली तरक्की संतोष में है ।’

‘परन्तु कला का जन्म असंतोष से होता है ।’

‘तो क्या कला में संतोष को कोई जगह नहीं ?’

‘कलाकार के जीवन का अन्त सन्तोष में है ।’

जेबुन्सिसा मेरा यह उत्तर पाकर चुप रही ।

‘लौटने का हुक्म हो ।’ मैंने कहा ।

‘क्यों…………?’

‘रात अधिक हो रही है ।’

‘रात ज्यादा हो रही है तो क्या शेर आ रहा है ?’

मैं हँस पड़ा । उसने कहा ‘आप योही नहीं जा सकते ।’

‘खैर जा तो सकता हूँ, चाहे कैसे भी जाऊँ ?’

‘थोड़ी देर बाद शाहजादी थाल लेकर लौटी उसके आग्रह से मुझे वहाँ भोजन करना पड़ा । उसने भी साथ ही भोजन किया । आज एक ही भेंट में मैंने उसे काफी पहिचानने की कोशिश की और देखा कि वह अपने युग से कितनी आगे दौड़ रही है । वह अविवाहित थी, उसके कार्य, उसका स्वभाव मुगल इमारतों के अन्य शाहजादे व शाहजादियों से सर्वथा भिन्न था । मूल रूप में वह एक स्त्री थी जो पांडित्य की गरिमा से दबी जा रही थी ।

उस दिन उस स्थल पर मुझे एक ही वस्तु दिखाई पड़ रही थी और वह था सौंदर्य—जेबुन्सिसा में, उसकी कृति में, उसके कमरे में सिर्फ वही दृष्टिगत हो रहा था ।

आहार से निबट कर जैसे ही मैं उठने लगा तो उसने मेरा हाथ पकड़ कर बैठाते हुए कहा, ‘एक बात है ।’ उसका स्वर काँप रहा था ।

‘एक बात है ……मानिएगा ।’ शाहजादी ने कहा, ‘आपको ज़बान देनी होगी ।’

‘बिना सूने मैं कैसे आपको वचन दे सकता हूँ ।’

ज़बान देने से आखिर आप डरते क्यों हैं ?’

‘वचन न देने से भय का प्रश्न तो तब उठता है जबकि वचन देकर उसका पालन मैं न करूँ । जब तक मैं आपसे सुनूँगा नहीं तो उस पर

विचार कैसे करूँगा और जब तक विचार नहीं करूँगा तो भला स्वीकृति कैसे दूँगा ?'

‘मैं आपका एक चित्र बनवाना चाहती हूँ ।’

‘वाह खूब रही आपकी प्रतिज्ञा ।’

‘काफी देर बैठना होगा ।’

‘बन्दा तैयार है ।’

‘बहुत ठीक ।’ शाहजादी ने फिर कहा, ‘बैठने का मेहनताना आप क्या लेगे ?’

‘मुझे समझ नहीं आता है कि आप हर बात में इतनी औपचारिकता की आड़ क्यों लेती हैं ?’

उसने उत्तर नहीं दिया ।

स्वीकृति देकर मैं चला आया । दरवाजे तक मुझे वह छोड़ने आई ।

*

*

*

जेबुनिसा.....

अजीब रमणी है ।

क्यों ?

पता नहीं ।

शिष्टाचार तो उसमें कूट-कूट कर भरा था । पास आकर भी दूर रहना उसे बहुत आता था । उसके जीवन में वौद्धिकता कूट-कूट कर भरी थी । मेरे साथ बातें करते समय सदा वह मेरे प्रति एक आदरभाव को लिए रहती । इसीलिए उत्तर देते समय उसके प्रति मुझे आदर की भावना को रखना पड़ता था । परन्तु मुझे यह कृत्रिम-सा लगता ।

दूसरे दिन मैं उससे मिला । मेरे आने के पहले उसने मेरी काफी प्रतीक्षा की । कुछ-कुछ पानी की बूँदें भी पड़ने लगी थीं । होते-होते पानी का वेग तीव्र हो उठा । पानी के भोंकों के साथ हल्की-सी ठंड का भी आभास होने लगा ।

खिड़की से बाहर झाँक कर उसने बरसते पानी को देखा । उसका मन उदास हो गया । पानी काफी जोर से बरस रहा था उसने मेरे आने की आशा छोड़ दी । वह ऊपर टहलने लगी ।

अपने आगमन की सूचना मैंने पहुँचाई । उसका चेहरा खिल उठा । भेंट होने पर उसने उपरोक्त समस्त वृत्तान्त मुझे सुनाया ।

‘मैं तो सोचती थी कि इतने खराब मौसम में आप नहीं आएँगे ।’

‘मैं’

‘सोचा शायद आप न आएँ ।’

‘बरसात, गर्मी और ठंड में इतनी शक्ति कहाँ कि वह मेरे दिए हुए वचन को तोड़ दे ।’

‘यह तो आपकी ज़रानवाजी है ।’ वह मुस्करा उठी ।

‘सेवक हाज़िर है ।’

‘आइए मेरे पीछे-पीछे ।’

‘वह मुझे महल के ऊपरी हिस्से में एक खुले से भाग में ले गई । भला संगमरमर के फर्श पर वहाँ एक आसंदी रखी थी । मैं उस पर बैठ गया । वहाँ एक ईरानी चित्रकार पहले ही से उपस्थित था ।

वर्षा बन्द हो गई थी । सुबह के वक्त हवा अच्छी थी ।

मैं आसंदी पर बैठ गया । उसने अपने लिए भी आसंदी मँगवाई और और उस पर बैठ गई । चित्रकार ने अपना कार्य प्रारंभ किया । मैं एक ही मुद्रा में शाहजादी से बातें करते बैठा रहा ।

‘कार्य शुरू हो गया ।’

‘जी हाँ ।’

इस तरह चार दिनों तक शाहजादी की सेवा में उपस्थित होना पड़ा । पाँचवें रोज उसने मेरे हाथ मेरा चित्र पकड़ाते हुए कहा, ‘लीजिए आपकी दौलत ।’

उस दिन उसके चेहरे पर एक अजीब उल्लास था ।

‘इस पर मेरा क्या अधिकार है ?’

‘चित्र तो आपका है न ।’

‘उसमें अंकित छाया मात्र मेरी है बाकी तो सब आपका है ।’

‘आपको बैठने में जो तकलीफ हुई उसकी क्या कोई कीमत नहीं ।’

‘बैठने से तकलीफ तो जरूर हुई इसमें सन्देह नहीं किन्तु उसका मूल्य यह चित्र तो नहीं हो सकता । इसे आप अपने पास रखिए । मेरी तकलीफ की आपको ठीक-ठीक कीमत देनी होगी ।’

‘बड़े आदमियों की बड़ी बातें होती हैं । हमारी समझ में भला कैसे आएँ ?’

‘बड़े आदमी कौन ?’

‘आप !’

‘मैं..... ।’

‘जी हाँ ।’

‘क्यों शर्मिन्दा करती हैं । महान तो आप हैं आपके संसर्ग में आकर, मैं भी महान होने का प्रयत्न कर रहा हूँ ।’

यह सुन कर वह हंस पड़ी ।

‘मैं आपको भी तकलीफ दूँगा ।’ मैंने कहा ।

‘यह कैसे ?’

‘आपका चित्र मैं बनाऊँगा ।’

‘जरूर.....लेकिन कहाँ ?’

‘यहीं ।’

‘कब से खिदमत करनी होगी ।’

‘कुछ दिनों के बाद ।’

‘ठीक है ।’

उसने कह तो दिया कि ठीक है लेकिन उसके इस टके-से उत्तर से खिन्नता टपकती थी । सहसा वह अंदर चली गई । पुनः लौट पड़ी । उसने कहा, ‘आदमियों ने औरतों की जिन्दगी के असली पहलू को

समझने की कभी कोशिश नहीं की। और समझने की कोशिश भी की है तो सिर्फ अपनी नजर से।' मैं शांत रहा। उत्तर देना व्यर्थ था।

*

*

*

कुछ दिनों के पश्चात् उसी स्थान पर मैंने निसा का चित्र बनाना प्रारंभ किया। उसके चेहरे का निरीक्षण करते-करते मुझ में एक सिहरन-सी दौड़ गई। निसा मुस्करा कर बाहर आकाश की ओर देखने लगी।

क्या हो रहा है ?' उसने कनखियों से देखते हुए कहा।

'चेहरे की देखरेख।'।

'चेहरे में क्या कोई हीरे जड़े हैं।'।

'इसमें भी कोई सन्देह है क्या ?'

'आज तक मैंने कई तस्वीरें बनवाई थीं। दूसरों की, अपनी नहीं। आज समझ सकी हूँ कि तस्वीर बनवाने बैठना भी एक सजा ही है।

'मेरे अनुरोध को निसा ने टाला तो नहीं किन्तु एक जगह लगातार बैठना उसे कष्टप्रद प्रतीत हो रहा था।'।

'धीरज शायद छूट रहा है।'।

'अंदाज गलत नहीं है।'। शाहजादी ने कहा।

'अधिक कष्ट अब और नहीं दूँगा।'।

'कैसे ?'

'रूपरेखा मैंने तैयार कर ली है।'। सौंदर्य की वह प्रतिमा सुन्दरता से भी अधिक सजीव थी। स्त्रियाँ अनुरोध करती हैं तो उसे टालना मुश्किल हो जाता है विशेषतः मेरे समान एक युवा पुरुष के लिए तो यह बात शत-प्रतिशत ठीक थी। इसीलिए निसा ने जब अनुरोध किया था तो मैं चित्र बनवाने के लिए तैयार हो गया था। और आज इसका बदला मैंने लिया था उसे यहाँ बैठा कर। एक बार दिल भर कर उसे मैं देख लेना चाहता था।

निसा का सौंदर्य भारतीय नहीं था। तुर्क और ईरानी सौंदर्य की

उसके चेहरे में एक अद्भुत बनावट थी। चित्र बनाते समय मेरे हृदय में एक अजीब-सी धड़कन होती। लगता जैसे दिल बैठ रहा है। निसा मुस्करा देती। उसकी मुस्कराहट में ही मेरा पुरस्कार छिपा रहता।

चित्र बनाते-बनाते शाहजादी के चेहरे के निरीक्षण के लिए मुझे उसके चेहरे के पास जाना पड़ता। उस समय तो बरबस पीछे हट जाने को दिल करता। वह भी ठिठक कर चेहरा कुछ पीछे कर लेती। उसे देखकर मुझे सन्देह होता कि उसका चित्र मुझसे बनेगा या नहीं। मैंने नायिकाओं के सौंदर्य वर्णन के काव्य प्रसंग पढ़े थे जहाँ पर कुशल से कुशल चित्रकार भी नायिका के सौंदर्य के समक्ष क्षीण पड़कर लौट जाते थे। परिणामस्वरूप वे चित्र नहीं बना पाते थे। कुछ ऐसी ही स्थिति मेरी उस दिन हो रही थी।

तीन दिन के बाद वह चित्र तैयार हो गया। उसको मैंने उसे दे दिया।

‘चित्र बनवाते वक्त तो आप ऐसे प्रसन्न नहीं थे जैसे बनाते वक्त’। यह कह कर वह तीव्र वेग से अंदर जाने को उठी।

‘सुनिए तो’

‘कहिए.....’

‘आप तो ऐसे भागी जा रही हैं जैसे आपके हाथ में आग का गोला हो।’

‘इसमें क्या शक है?’

और वह अंदर चली गई। मुझे क्रोध आ गया। मैंने उसका चित्र वहीं फेंक दिया और चला आया। उसके इस परिवर्तन को मैं नहीं समझ सका। वैसे आदमी यदि औरत की हर बात को समझने कि कोशिश करे तो शायद पागल हो जाए। नारी-प्रकृति को प्रमथना, ही टेढ़ी खीर है।

उस दिन इस विषय पर मैं काफी सोचता रहा किन्तु कोई हल नहीं प्राप्त हुआ।

मुझे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि मेरा अपमान किया गया है। फिर मैंने सोचा कि वह आकस्मिक घटना ही हो। रमणी की बोद्धिकता भी लड़कपन के खेल, खेल जाया करती है। उसके बाद मैं उसके महल में नहीं गया।

सप्ताह बीत गया लेकिन वहाँ से कोई समाचार नहीं मिला।

*

*

*

अचानक दसवें दिन एक दासी मुझे बुलाने आई।

‘मैं असमर्थ हूँ।’

‘उनका विशेष आग्रह है।’

‘तुम चलो मैं आता हूँ।’

खैर मैं आखिर निसा के महल की ओर मुड़ ही गया। जेबुन्निसा से न तो मेरा कोई बैर ही था और न ही कोई उसके लिए उपेक्षा भाव, उसे तो मैं आदर देता था। फारसी-काव्य की उसमें एक महान प्रतिभा थी। उसकी अवस्था यौवन को प्राप्त हो गई थी। सुगठित शरीर से जैसे सौंदर्य और यौवन फूट कर बाहर आ जाना चाहते थे। भारत के सम्राट आलमगीर औरंगजेब की वह पुत्री थी। भला उसे किस बात की कमी।

उस दिन निसा के साथ एक और स्त्री को मैंने देखा। उसकी अवस्था काफी थी। उसे बिल्कुल वृद्ध तो नहीं कहा जा सकता। उसके काले बालों में सफेद बाल चाँदी के तारों की तरह चमक रहे थे। तरुण्य ही बीत जाने पर भी उसके चेहरे पर एक तरह का पानी था। निसा ने उससे मेरा परिचय कराया। वह थी जहाँआरा। शाहजहाँ की पुत्री और औरंगजेब की बहिन। वह सारे हरम की प्रमुख थी। वह फारसी साहित्य की भारी विद्वान और महान कवियित्री थी। जहाँआरा से एक न एक विद्वान मिलने आता ही रहता। निसा उनका पूरा-पूरा लाभ उठाती। जहाँआरा की छत्रछाया में निसा बड़ी हुई थी बल्कि यों कहा जा सकता है कि निसा के रूप में ही जहाँआरा का

योवन आज जाग्रत था । जहाँआरा अपने योवन में निसा से भिन्न नहीं थी । यदि जहाँआरा निसा की उम्र की होती और उसे निसा के साथ खड़ा कर दिया जाता तो पहिचानना कठिन हो जाता कि कौन जहाँआरा है और कौन जेबुनिसा ?

उनके स्वभाव, उनकी आकृति की साम्यता अद्भुत थी । जहाँआरा निसा का वृद्ध रूप ही था और निसा जहाँआरा के योवन की प्रतिमूर्ति !

‘आपकी तारीफ में निसा से सुन चुकी हूँ ।’ जहाँआरा ने कहा ।

‘यह तो आपका बहृप्पन है ।’

निसा मुस्करा दी । अबतक हम महल के जगमगाते खंड में आकर बैठ चुके थे । तीनों मौन थे । निसा ने मौनता भंग करते हुए कहा, ‘यह मातम कैसा ?’

‘कैसा मातम ?’

‘यही, कोई……बात ही नहीं करता ।’

जहाँआरा ने हँस कर कहा, ‘आया करिये यहाँ अबतक आप दिल्ली में हैं ।’

‘जरूर आऊँगा ।’

‘जरूर आएँगे ।’ निसा कहकर मुस्करा उठी । व्यंग मुझसे न छिप सका ।

‘क्यों सन्देह है क्या आपको ?’

‘तो इतने दिन तक आप क्यों नहीं आये ? आपको बुलाने की जरूरत क्यों पड़ी ?’

जहाँआरा उठकर अन्दर गई ।

‘इसका उत्तर आप स्वयं दे सकती हैं ।’

निसा आंचल में मुँह दबा कर हँसने लगी ।

‘आप शायद मेरा उपहास कर रही हैं ।’

‘यह आपकी गलतफहमी है ।’

*

*

*

जेबुन्निसा एक महान दार्शनिक बन गई थी । इसलिए कि वह जहाँआरा के साथ रही थी । वैसे ही उसके जीवन में एक भयंकर अभाव हो गया था । वह था शाहजहाँ का । शाहजहाँ की वह पोती थी ।

उसके आग्रह से एक दिन मैं आगरा गया । आगरा के दुर्ग में शाहजहाँ ने अपने अन्तिम दिन काटे थे । उन दिनों में उसे जहाँआरा और जेबुन्निसा का ही सहारा था । निसा तो उस समय यौवन की देहली पर कदम रख ही रही थी । वह अपने दादा के बहते हुए आँसू थाम लेती । जिस समय वह शाहजहाँ के अन्तिम दिनों का वर्णन करती, उस समय उसके मुख पर भीषण उदासी छा जाती थी । आगरे के दुर्ग के पार्श्व भाग से यमुना प्रवाहित होती है । दुर्ग के उसी भाग में शाहजहाँ का हरम था । वहाँ से साफ-साफ यमुना के पार ताजमहल दिखाई पड़ता है । वहीं पर हरे पत्थर का एक बहुमूल्य छोटे-से कांच के समान टुकड़ा लगा था । उसमें ताजमहल का प्रतिबिंब एक छोटी-सी आकृति के रूप में पड़ता है । इस पत्थर के चारों ओर रंग-बिरंगे कीमती रत्नों के बेल-बूटे बने थे । शाहजहाँ उदासी के क्षणों में ताजमहल का प्रतिबिंब घंटों बैठा इसी पत्थर में देखता रहता । उसकी निगाहों में एक भीषण सूनापन होता । आँसू तो उसके सूख चुके थे । मुमताज के जीवन की बीती स्मृतियाँ उस पत्थर के हरे-से टुकड़े में जैसे साकार हो उठतीं । वह भाग सफेद संगमरमर का बना है । इसमें मेहराबदार खिड़कियाँ बनी थीं । दो खिड़कियों के भीतर का जो भाग होता है उसमें जालियाँ लगी हैं । ये जालियाँ संगमरमर की हैं । रात के सन्नाटे को चीर कर यमुना के खुले वातायन से आकर जब हवा इन जालियों से टकराती तो ऐसा प्रतीत होता मानो दूर हल्के-हल्के स्वरों में कोई रो रहा है ।

हल्की सी छिटकी चाँदनी में आकर जब ताजमहल को वहाँ से निसा ने देखा तो वह फूटकर रो उठी । अपने बक्षःस्थल में उसका सिर दबा

कर उसके आँसू मैंने पोंछ दिए ।

उस दिन हम नौका-विहार कर रहे थे । जहाँआरा की नाव काफी आगे जा चुकी थी । इस नाव पर सिर्फ निसा और मैं ही थे । मैं नाव चला रहा था । पतवार मेरे हाथ में थी । यमुना के पश्चिमी ओर आगरा का दुर्ग सिर उठाकर आसमान से बातें कर रहा था । उसके बुर्ज चाँदनी में चमक रहे थे ।

हवा के हल्के-से झोंके उस हल्की-सी चाँदनी में हमारे पास से बह बह रहे थे ।

निसा उदास थी.....

उसके आँसू मेरे हाथों पर गिरे । उसका चेहरा देखकर मैं काँप गया । मैंने पतवार रोक दी ।

“शाहजादी रो रही हैं ।”

‘उदय.....।’

अपना नाम सुनकर मैं सहम गया ।

‘निसा.....।’ सहसा मैं कह उठा ।

‘तुम रोती क्यों हो ?’ मैंने फिर कहा ।

‘उदय, उस दिन भी ऐसा ही समय था, ऐसी ही चाँदनी फैली थी और आगरे का किला ऐसे ही सिर उठाकर दुनिया की नश्वरता पर हँस रहा था ।’

‘उस दिन क्या हुआ ?’

‘उस दिन शहंशाह शाहजहाँ का मृत शरीर नावों पर रख कर आगरे के किले से ताजमहल को ले जाया जा रहा था । बादशाह के साथ इने-गिने ही लोग थे । ये वही चंद लोग थे जिन्होंने बादशाह का आखिरी दम तक साथ दिया था । चारों तरफ घोर सन्नाटा छाया था । उदय, वह रात काफी डरावनी थी । सारा वनप्रांतर भाग साँससाँप कर रहा था । मैं इतनी दुखी थी कि मेरे आँसू भी सूख चुके थे । हमारी नावें धीरे-धीरे ताजमहल की ओर बढ़ी जा रही थीं । दिल को हिला

देने वाले मातम का पर्दा हम सब पर पड़ा था । वहीं दादी के पास दूसरी कब्र में उन्हें दफना दिया गया ।

इसके बाद मेरे निश्चल हाथों पर सिर रखकर वह काफी देर रोती रही ।

नारी कितनी ही महान क्यों न हो, दार्शनिक हो, विचारक हो, किंतु भावना के लिए उसके पास एक जगह होती है और स्त्री का वही वास्तविक रूप है ।

उस दिन जेबुनिसा शाहजहां की पौत्री नहीं थी, औरंगजेब की पुत्री नहीं थी और न ही फारसी की प्रसिद्ध कवयित्री थी । बल्कि एक साधारण नारी थी जो मेरे निश्चल हाथों पर सिर रखकर रो रही थी ।

‘मलके आला...!’ मैंने कहा ।

‘मैं मलके आला नहीं हूं ।’ उसने भर्पाए हुए स्वरों में कहा ।

‘तुम जो कुछ भी हो, रोओ मत, मुझे अच्छा नहीं लगता ।’

उसका चेहरा उदासी से म्लान पड़ चुका था । मैंने लौटने का आग्रह किया, नाव मोड़ ली गई ।

उसके बाद निशा के साथ नौका-विहार करने उस ओर मैं कभी नहीं गया ।

उसने दो-तीन बार कहा भी लेकिन मैंने अस्वीकार कर दिया ।

‘नूतने हो उदय ।’

‘तुम रोती हो । मुझे अच्छा नहीं लगता । मैं अब वहाँ कभी नहीं जाऊँगा...निसा तुम बहुत भावुक हो ।’

‘भावना-हीन बुद्धिवाद किस काम का उदय ।’

✽

✽

✽

इस घटना के बाद मैं निसा के काफी निकट आ चुका था । इस रमणी का सौंदर्य अपने साथ एक हल्की-सी उदासी को लिए रहता था । जिस समय मैं दिल्ली में था उस समय औरंगजेब पश्चिमोत्तर सीमा पर कबाइलियों का विद्रोह दबाने गया था । दिल्ली में फिर भी उसका कठोर

शासन ढीला नहीं हुआ था । उसकी अनुपस्थिति में भी 'औरंग-जेबी' में कोई कमी नहीं थी ।

जेबुन्निसा और औरंगजेब !!

दोनों में एक ही रक्त था किंतु दोनों एक रस्सी के दो छोर थे, एक दूसरे से बिल्कुल अलग, एक दूसरे के ठीक विपरीत ।

आगरा से ही एक दिन मे जहांआरा के आग्रह से मैं फतहपुर सीकरी देखने गया । सीकरी को अकबर ने बहादुरशाह को हराकर अपनी गुजरात विजय के पश्चात बनवाया था ।

अकबर की महानता सीकरी की इमारतों की खाली दीवारों में आज भी उसकी मृत्यु के बाद स्पष्ट थी ।

जिस नगरी में अकबर ने अपने दरबारियों सहित अपने जीवन के सत्रह वर्ष बिताये थे, वह स्थान आज निर्जन पड़ा था । खाली इमारतें अपना सिर धुनती थीं । उस दिन संध्या हो रही थी । मैं और जहांआरा उस महान इमारत के विशालकाय कक्ष में खड़े थे जहाँ अकबर बैठकर धार्मिक गोष्ठियों में भाग लिया करता था । अकबर के बैठने का महान चबूतरा इस समय खाली पड़ा था । उसके सामने ही विभिन्न छोटे-छोटे चबूतरे बने थे । उन पर बैठ कर विभिन्न धर्मों के शास्त्रवेत्ता धार्मिक वादविवाद करते थे । अकबर उन्हें ध्यान से सुनता और उसका तात्त्विक निष्कर्ष निकालने में व्यस्त रहता । दीवारों पर चित्र बने थे किंतु उन चित्रों में स्त्री-पुरुषों के सिर नहीं थे ।

'क्यों मलके आलम, इन चित्रों से सिर कहाँ गए ?' मैंने पूछा ।

'बनाए गए थे ।'

'फिर क्या हुआ उनका ?'

'इन तस्वीरों में तो आदमी और औरतें पूरी तरह से बनाए गए थे किंतु अब उनके धड़ साफ करवा दिए गए हैं ।'

'किसको इसका श्रेय है...?'

'आलमगीर...को...' उसने रुककर फिर कहा 'औरंगजेब का कहना

है कि इस्लाम के मुताबिक बुत की पूजा को शिर्क माना है । उसीसे यह उसूल निकला कि तस्वीर बनाना भी शिर्क है । इसलिए औसत मुसलमान तस्वीरों में कोई दिलचस्पी नहीं रखता । कुरान शरीफ भी कहती है कि 'जो आदमी जानवरों की तस्वीर बनाता है वह खुदा के काम में दखल देता है । कयामत के दिन खुदा उससे कहेगा कि तू मेरी बराबरी करना चाहता है । इसलिए इन तस्वीरों में जान डालकर अपना काम पूरा कर, और जब आदमी ऐसा नहीं करेगा तो वह दोज़ख में भेज दिया जायेगा ।'

कहना व्यर्थ है कि सुन कर हँसी रोकना मेरे लिए कठिन हो गया ।

'कला के इन अन्यतम नमूनों को इस निर्दयता से साफ कर दिया गया ।'

मैं उनकी ओर एकटक देखता रहा । जहाँआरा ने व्यंग से मुस्करा कर कहा ।

'उदय, इस सल्तनत के ये आखिरी दिन हैं ।'

'कैसे ?'

'मुगलों का बड़प्पन अब मिट रहा है ।'

जहाँआरा औरंगजेब की बहिन थी । सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ । जहाँआरा ने सारा जीवन अविवाहित रहकर ही काट दिया था ; फारसी और अरबी साहित्य का उसे महान् ज्ञान था । फारसी की तो वह एक महान् कवियित्री थी ही । कला के लिए उसके हृदय में सम्पूर्ण जागरूकता थी । अजातकी गुफाओं में मैंने विशुद्ध भारतीय कला के नमूने देखे थे । सीकरी के चित्र भारत और फारसी शैली का समन्वय लिए हुये थे । जेबुन्निसा उस दिन हमारे साथ नहीं आई थी । शाही हरम की जहाँआरा मालकिन थी लेकिन अपने साथ निसा को दिल्ली के बाहर प्रायः वह नहीं ले जाती थी । आगरा तो जहाँआरा बहुधा आया जाया करती थी ।

‘उदय, कल शाम को संगीत के एक उस्ताद के पास चलेंगे ।’ जहाँ-आरा ने कहा ।

‘कौन हैं ये उस्ताद ?’ सुनकर वह चुप रही । उसने कहा ‘पहले यह जबान दो कि उस शख्स की जानकारी किसी को नहीं दोगे ।’

मैंने वचन तो दे दिया किंतु मेरा कौतूहल बढ़ा । मैंने सोचा ऐसा कौन-सा उस्ताद है कि जिसका नाम भी वह संसार को नहीं बताना चाहती ।

जहाँआरा ने कहा ‘मेरा बस चले तो मैं उसे एक से एक शाही इज्जत और ओहदे दूँ । लेकिन यहाँ तो औरंगजेब की सल्तनत है । यहाँ गाना मना है । उन उस्ताद के तो हाथों में ही संगीत समाया है । उनकी तमन्ना नहीं है कि किसी को उनका पता लगे । इस बात की पूरी-पूरी तसल्ली मैंने उनको दी है । उन्होंने मुझ से कह रखा है कि यदि उनका पता मैंने कहीं दिया तो वह अपना गाँव छोड़ कर किसी गुमनाम जगह पर चले जायेंगे जहाँ पर मुझे उनका पता भी नहीं लग सकेगा ।’

‘आपको मुझ पर कैसे अचानक विश्वास हो गया ?’

‘मैं आदमी पहचानती हूँ ।’

*

*

*

दूसरे दिन हम सीकरी से दूर एक गाँव की ओर बढ़े । जहाँआरा उस दिन साधारण-सी भारतीय वेशभूषा में ही थी । एक खपरैल के घर के सामने वह रुक गई । वह कोई चालीस पचास घरों का एक छोटा-सा गाँव था । वहाँ के निवासियों का पेशा कपड़ा बुनना ही था । वे जुलाहे थे । संध्या का समय था । हमें देखते ही गाँव के छोटे लड़के-लड़कियाँ हमारे चारों ओर जमा होकर हमें कौतूहल से देखने लगे । उनके कपड़े फटे थे । नाक बह रही थी । सिर धूल में सने थे । कपड़े बेहद गंदे थे । दूर एक छोटा लड़का अपने सिर में धूल डालने में मग्न था । हमें देख कर अपना पवित्र कार्य छोड़कर वह भी भागा आया । वे आँखें फाड़-

थे । फाड़ कर ऐसे देख रहे थे जैसे कि पहले कभी उन्होंने आदमी देखे ही न हों ।

जहाँआरा ने अपना पूरा शरीर मेरी ओर घुमाकर कहा; 'उदय, यह है हमारा हिंदुस्तान ।'

मैं भ्रम गया उसने फिर कहा, 'यह है उस्ताद का घर ।'

घर कच्चा और खपरैल का था । उसका छप्पर झुका हुआ था । घर के सामने ही गंदा पानी ठहरा था । वहाँ तो खड़ा रहना भी कठिन था लेकिन शाहजादी जहाँआरा वहाँ ऐसे खड़ी थी जैसे उसी का घर हो । उस स्त्री पर मुझे आश्चर्य हुआ ।

हिंदोस्तान के शहंशाह की बहिन एक टूटे से घर के सम्मुख...

मुझे देखकर वह मुस्करा उठी । उस मुस्कराहट में व्यंग था ।

कोलाहल सुनकर उस्ताद के घर से मैंने कुचैले कपड़े पहिने हुए एक दस ग्यारह वर्ष का बालक निकला ।

'उस्ताद कहाँ हैं ?' शाहजादी ने उससे पूछा ।

'नमाज़ अदा करने गये हैं ।'

'कितनी देर हो गई ।'

'काफी देर हो गई है । आते ही होंगे ।' इसके बाद वह लड़का हमें एकटक देखने लगा । हमारी उपस्थिति वहाँ कुछ ऐसी थी जैसे कि खर-बूजे में छुरी घुस गई हो ।

'आप अदर आकर बैठ जाइये तब तक...' उस लड़के ने कहा ।

'यहीं बाहर ठीक है...ठंडी हवा आ रही है ।' मैंने कहा ।

'वो आ रहे हैं उस्ताद ।' एक लड़के ने चिल्लाकर कहा । मैंने घूम कर देखा कि एक साँवला-सा तगड़ा-सा आदमी धीरे-धीरे लाठी टेककर आ रहा था । उसकी आयु कोई ५० के लगभग होगी । वह पास आ गया । उसके चेहरे पर चेचक के दाग थे । शाहजादी ने कहा, 'उस्ताद...बाबू...खाँ...'।

'कोन...शाहजादी...' उसने चौंककर कहा ।

‘हाँ...’

‘मैं आवाज से आपको पहिचान गया । आँखें तो अब नहीं रहीं ।’

‘क्यों क्या हुआ ?’ शाहजादी जैसे चिल्ला उठी हो ।

‘कुछ दिन पहले चेचक से बीमार पड़ा । खुदा की दुआ से बच तो गया लेकिन आँखें जाती रहीं ।...जिन्दगी की नियामत अब नहीं रही ।’

शाहजादी के चेहरे को मैंने देखा । लगता था कि जैसे वह रो देना चाहती है ।

‘उस्ताद ! आप बीमार थे तो क्या इसकी खबर भी नहीं भिजवा सकते थे ।’

‘उसकी मैंने जरूरत नहीं समझी ।’ उस्ताद के चेहरे से आत्माभिमान टपक रहा था ।

आज मैंने देखा कि मिट्टी के इन खपरैलों में शाही ताकत का उपहास करने की कितनी ताकत है ।

‘अरे...तुम तो बाहर खड़ी हो...अंदर आओ...अहमद ! कंदील तो ला ।’

वह बुढ़ा लाठी टेकते हुए सिर झुकाकर खपरैल के घर में घुसा । जहाँआरा ने कहा, ‘आओ उदय !’

‘आपके साथ कौन है ?’ उस्ताद ने चौंक कर कहा ।

‘एक जौहरी...घबराने की कोई बात नहीं है ।’

‘तारीफ आपकी ।’

‘आपका नाम उदयसिंह है । जसकोट की सल्तनत के आप राजा हैं ।’

‘ओह, मेरी खुश किस्मती है...आइये...आइये ।’ अभीतक मौन हो कर मैं तो सारा नाटक देख रहा था । इस बुढ़े पर मुझे कौतूहल हो रहा था और जहाँआरा उसे आदर दिए जा रही थी ।

छपरी को पार कर हम अंधेरे से कमरे में पहुँचे । वहाँ पर उस्ताद के लड़के ने एक पुरानी सी दरी बिछा दी । उस पर हम बैठ गये ।

कमरे में कंदील का मन्द प्रकाश फैल रहा था । उस्ताद हमसे कुछ दूर हटकर बैठ गए । शाहजादी ने कहा 'हम आपकी वीणा सुनने आये हैं ।'

'जानता हूँ...शाहजादी...कहने की कोई जरूरत नहीं ।' उस्ताद ने अपनी पीठ फेरी और कमरे के एक कोने में टटोलना शुरू किया । उन्होंने टाट का एक बड़ा सा टुकड़ा हटाया । उसके नीचे उस्ताद की चमकती हुई वीणा रखी थी । कन्दील का मन्द प्रकाश वीणा के तारों पर बिजली के समान नाच उठा । मैं देखकर हैरान हो गया । एक बेश कीमती वीणा टाट के सड़े से टुकड़े के नीचे रखी थी ।

वाह रे...गरीबी...!

जहाँआरा के लिए जैसे यह सब कुछ नया नहीं था । उस्ताद ने तारों पर एक साथ अँगुलियाँ चलाईं । स्वर गूँज उठे, मुँह उठा कर फिर पुकारा 'अहमद ! अहमद !!...खुर्शीद बाजार से आया या नहीं ?'

'अब्बाजान ! अभी वे नहीं आये ।'

'मैं आता हूँ ।' हाथ से टटोलते हुए उस्ताद उठे और अन्दर चले गये ।

'खुर्शीद इनका बड़ा लड़का है । कपड़ा बेचने वह बाजार गया है । ये वीणा वजाते हैं वह तबला बजाता है ।'

इतने में ही उस्ताद फिर आ गए । उनके साथ उनका लड़का खुर्शीद था । खुर्शीद की मसँ भीग रही थीं ।

उसने सबको अदब से झुककर सलाम किया । उस्ताद ने मेरा परिचय उस लड़के से कराया । खुर्शीद तबलों की जोड़ी उठा लाया । वह भी एक ओर खिसककर बैठ गया । इसके बाद अपनी हथौड़ी से वह तबला ठीक करने में व्यस्त हो गया । उस्ताद अपनी वीणा की तारों को कसने लगे ।

मौन भंग करते हुए मैंने कहा, 'उस्ताद ! किसी शाही दरबार में तुमको आसानी से जगह मिल सकती थी ।'

उस्ताद ने अपनी अंधी आँखों से मुझे देखने का निष्फल प्रयास किया ।

‘हं……’ उस्ताद व्यंग से हँसे ।

‘राजा साहब मेरे बुजुर्गों ने जब किसी के आगे हाथ नहीं पसारा तो भला मैं उनका मुँह क्यों काला करूँ ?’ इतने में ही जहाँआरा बोल उठी ‘उदय, यह आज का नहीं बहुत पुराना सवाल है । मैंने तो कई बार कहा लेकिन ये मानें तब न……वीणा बजाने में इनका जवाब नहीं, कपड़ा बिनना इनका धंधा है ।’

‘वह तो देख रहा हूँ ।’

100

‘क्यों नाहक गर्मिन्दा कर रही हैं ?’ उस्ताद ने हँसकर कर कहा ।
उस्ताद की आँखों में अधेरा छाया था ।

अचानक तबले पर चोट पड़ी ‘तिक धाँ……धाँ……धि……धि……’

उस्ताद ने कहा ‘बेटा थोड़ा उठा कर लेना त्रिताल पर……’ ।
इसके बाद उस्ताद की अंगुलियाँ वीणा के तारों से उलझ गई । पहले पहल तो स्वर बहुत धीमे उठने लगे । उस्ताद शास्त्रीय पद्धति पर बजा रहे थे । इसी तरह आधा पहर बीत गया, मेरा आसन हिलने लगा ।

उस्ताद को कम से कम तो मैंने एक बार घूम कर देखा……
बरबस सोचना पड़ा कि क्या यही कला है ? लेकिन जहाँआरा तो इस तरह लीन बैठी थी जैसे कोई मुग्ध हरिणी संगीत को मुग्ध भाव से सुन रही हो ।

इसके बाद ही तबले पर करारी चोट पड़ी । अब तक तबला धीरे धीरे बज रहा था । इधर वीणा पर भी स्वर तेज होता दिखाई दिया ।

कन्दील के मन्द प्रकाश में मैंने देखा कि उस्ताद का चेहरा लाल होता जा रहा है । वह लड़का अहमद घुटनों में सिर रखे सुन रहा था । संगीत सुन कर मैं तो झूम गया । मेरे मुँह से निकल पड़ा, ‘वाह……’ ।

शाहजादी ने मुग्ध भाव से मेरी ओर देखा । उस्ताद ने अपनी अंगुलियाँ वीणा की तारों से हटा लीं ।

वीणा के स्वरों में जब जादू-सा भरता गया तो उनकी कला में पूर्ण निखार आ गया । उस निखार में मेरे उस प्रश्न का पूरा-पूरा उत्तर था जहाँ मैंने अपने आप से प्रश्न किया था कि शाहजादी आखिर उस्ताद को क्यों इतना आदर दे रही हैं ?' इतने में ही मुर्गे ने बाँग दी । मैंने बाहर देखा, सुबह होने के लक्षण साफ-साफ दिखाई पड़ रहे थे । सारी रात की एक ही बैठक थी, सिर्फ एक ही राग बजाया गया ।

‘उस्ताद ये तो सबेरा हो रहा है..... ।’ मैंने कहा ।

उस्ताद को जैसे पता ही नहीं था । इधर सारी रात बीत गई उधर उस्ताद के माथे पर शिकन तक नहीं । मुझे आश्चर्य हुआ ।

‘कैसा रहा..... ।’

मैंने पसीना पोंछते हुए कहा, बहुत खूब..... वास्तव में उस्ताद तुम्हारा जवाब नहीं है । स्पष्ट था कि ऐसा वीणावादक मैंने आज तक नहीं देखा था ।

‘मैंने तो कम से कम इसका जोड़ आज तक नहीं देखा ।’

अपने गले का कीमती हार मैं उस्ताद को देने लगा । उस्ताद ने कहा ‘न..... न..... रखिए राजा साहब ये आप लोगों की चीजें हैं । इन्हें खुदा ने आप अमीर लोगों के लिए ही बनाया है । मैं गरीब भला इसे लेकर क्या करूँगा ।’

‘उदय, इसे ये नहीं लेंगे । आज तक एक कौड़ी भी इन्होंने मुझे से पुरस्कार रूप में नहीं ली ।’

मुझे हार वापिस ले लेना पड़ा । उस्ताद ने कहा ‘राजासाहब... चाहता तो आज तक काफी कमा सकता था । लेकिन दरबारों में हुनर की कद्र कहाँ ?’

‘क्यों ? मियाँ तानसेन को अकबर ने ही तो बनाया था ।’ मैंने कहा ।

‘तानसेन !..... जबतक पत्थरों को वह अपना राग सुनाता था

तब तक तो वह ठीक था लेकिन दरबारी गवैया बन कर उसकी आखिर क्या हालत हुई ?.....एक जंगली गवैया बैजू से उसको हार जाना पड़ा ।’

मैंने कहा, ‘मैं आपको इस बात का आश्वासन दिलाता हूँ कि आप मेरे राज्य में चलकर यदि रहेंगे तो आपको ऐसी किसी बात का सामना नहीं करना पड़ेगा जिससे कि आपके हुनर में फर्क आए ।’

‘आपकी मेहरबानी के लिए आपका मैं सौ-सौ बार शुक्रिया अदा करता हूँ । लेकिन यह काम मुझसे न होगा । यदि आप मुझे माफ हो करें तो अच्छा है ।’

जहाँआरा ने कहा ‘अब्बाजान के वक्त मैंने इनकी न जाने कितनी खुशामद की, लेकिन ये कभी तैयार नहीं हुए, उल्टे मुझे इस बात का डर बताते रहे कि इनका नाम बताने से कहीं चले जाएँगे । भला ‘जो व्यक्ति शाहजहाँ के दरबार में गाने से इन्कार कर सकता था उसे मेरी क्या चिन्ता ?’

‘उस्ताद तुम छिपे रुस्तम हो ।’ मैंने कहा ।

‘छिप कर रहना ही पड़ता है । भला क्या करूँ आज हमारा परवर दीगार बादशाह खुद ही मजहब के पीछे गुड़ की मक्खी की तरह चिपका है । तो भला लोगों का क्या ?’

‘आज के ज़माने में इंसानियत रह ही नहीं गई ।’

‘राजा साहब ! इंसान पैदा नहीं होते बनाए जाते हैं । आदमी की यह भारी गलती है कि पैदा होने के साथ ही अपने आप की वह इंसानों में गिनती करने लगता है । इंसान तो सिर्फ उसे ही कहना चाहिए जिसमें इंसानियत हो । हजारों और लाखों में शायद एक के पास यह इंसानियत नाम की चीज़ होती है । आदमी की यह आदत है कि हर वक्ता वह अपनी तारीफ ही करता है । जैसे शेर को देखते ही हम कह देते हैं कि यह शेर है । रहम नाम की उसके पास कोई चीज़ नहीं । बकरी देखते ही आप कह देंगे कि यह एक सीधा सा जानवर है ।

मतलब यह कि इन जानवरों की भी एक एक खास आदत होती है जो कभी नहीं बदलती । इन्हीं पैदाइशी गुणों को लेकर ये पैदा होते । हैं और मर जाते हैं, लेकिन आदमी एक ऐसा है जो जानवर से भी गया बीता है कि उसे पहिचानना मुश्किल है । आदमी कब क्या कर बैठे इसका बिल्कुल भरोसा नहीं । जिन आदतों को लेकर वह पैदा होता है उनमें भी गिरती ही होती जाती है । तरक्की का तो सवाल ही नहीं इंसानियत मेहनत से आती है पैदायश से नहीं । लोगों में इंसानियत आई ही नहीं तो उसके चले जाने का सवाल ही नहीं उठता ।’

यह भाषण सुन कर मुझे पता लगा कि उस्ताद सफल गायक के अतिरिक्त और भी कुछ हैं । जिन्दगी के विगत पचास सालों में उन्होंने जिन्दगी को काफी करीब से देखा था । उनके एक एक शब्द से जीवन का फीका किन्तु कठोर सत्य भाँक रहा था । शाहजादी ने कहा— ।

‘उस्ताद.....अब हम चलते हैं ।

सबेरा हो चुका, था हम उठ खड़े हुए ।

‘देखा उस्ताद को.....’ रास्ते में शाहजादी ने कहा ।

‘उस्ताद में आत्मभिमान तो बहुत ज्यादा है ।’

‘बहुत ज्यादा ।’

‘क्या करेंगे इतना रख कर, उस्ताद उसे बाँट क्यों नहीं देते ?’

जहाँआरा ने हंसकर कहा ‘अभी तो आपने उनका सारा हुनर नहीं देखा ।’

‘इसके लिए मुझे पहले योग्य बनना होगा । यह तो पहली सीढ़ी है ।’

✱

✱

✱

शाहजादी जहाँआरा तो आगरा चली गई । मैं दिल्ली आ गया । रात के प्रथम पहर में जहाँआरा के महल की ओर निसा से मिलने के लिए मैं बढ़ गया । परन्तु मैं उस उस्ताद की ओर से अपना ध्यान नहीं हटा सकता था जिसकी गरीबी रह रह कर मुझे टोच रही थी । जब

मैं उस्ताद के दरवाजे पर जाकर खड़ा हुआ तो मैं जहाँआरा को कोस रहा था । परन्तु मेरी अपेक्षा शाहजादी ने दुनिया कहीं अधिक देखी थी । हीरे की परख जौहरी ही करता है । आदमी को पहचानने में तो वह एक ही थी । उसने ही उस्ताद को ढूँढकर निकला था । उस्ताद की दरिद्रता और भावुकता पर मुझे दया आ गई ।

सीकरी में मैंने अपने आसूँ पोंछ लिए । राज्य में मजहब के नाम पर साल भर फकीर मुफ्त की खैरात लेते थे । साधारण भोजन तो उनकी फकीरी शान के खिलाफ था । वे अफीम खाते थे । इतने अत्याचारों के बावजूद भी मैंने गंगा के किनारे निठल्ले और ढोंगी साधुओं की कतार की कतार देखी थी । और देखा था मेहनत करके कमाने वाले इस दरिद्र कलाकार को भी । हजार बार चाहा कि उसे अपने राज्य में ले चलूँ लेकिन जब वहाँ जहाँ आरा को ही उसके दरवाजे तक चल कर जाना पड़ता था तो भला मेरी क्या बिसात ?

उस्ताद की बीणा बहुत ही सुन्दर थी । उसके चमकते तार अब भी मेरे सामने चमक रहे थे ।

निसा से उस उस्ताद की मैंने चर्चा की । ' जानती हूँ उन्हें..... बुआ तो उनकी तारीफ करती नहीं थकती । ' निसा ने कहा ।

'लेकिन उनकी गरीबी तो मुझसे देखी नहीं गई । '

सुन कर निसागंभीर होकर नीचे देखने लगी । बाद में उसने अचानक सिर उठाकर एक विश्वास के साथ मेरी आंखों में देखते हुए कहा 'उदय, हम लोग इस ढंग से पले हैं कि असली दुनिया हमने देखी ही नहीं है । हमारे चारों ओर इतने नौकर चाकर और खुशामदी रहते हैं कि हम दुनिया का सही पता लगा ही नहीं पाते । कभी तो मैं सोचती हूँ दुनिया में सच, रहम आदि नाम की कोई चीज भी है या नहीं । या सिर्फ ये दुनिया से बचने के तरीके भर हैं । दुनिया है क्या ? मार-पीट, जुल्म, गरीबी और तकलीफ का दूसरा नाम । अपने लिए दूसरे को तकलीफ दो । इस चार दिनों की जिन्दगी में कौन किसका है ? सबको अपनी अपनी पड़ी है ।

अपने-अपने मतलब के लिए एक दूसरे का गला घोंटा जाता है । इंसा-नियत की नजर में जो बुरा है वह सब करो तब दुनिया में गुजर होगी ; बुआने दुनिया को अपने तजुबों से अच्छी तरह से देखा है, इसलिए उनकी शायरी में दर्द है । उनके साथ रहने की वजह से ही उन्हें समझने का मुझे मौका मिला है ।'

इस बात को आज मैं समझ सका कि इस स्त्री में भी जगत और जीवन का यथार्थ ज्ञान कूट-कूट कर समाया है । कमल के पत्ते पर जिस तहर गंदा पानी गिर कर तुरन्त बह जाता है उसे ठहरने के लिए बिल्कुल मौका नहीं मिलता उसी तरह इस स्त्री पर औरंगजेब की कलुषित और दूषित मनोवृत्तियों का बिल्कुल प्रभाव नहीं पड़ा था । जहाँआरा एक प्रकार से स्वतंत्र सी थी । औरंगजेब को पता था कि उसकी सल्तनत को जहाँआरा से कोई हानि नहीं इसलिए उस पर कोई निगरानी नहीं थी । निसा उसी की छाया में पल रही थी ।

*

*

*

उस दिन मैं निसा की चित्रशाला में खड़ा था । निसा की अपेक्षा उसे जहाँआरा की चित्रशाला ही कहना ठीक होगा, क्योंकि अधिकतर चित्र जहाँआरा ने ही एकत्रित किए थे । अब इस ओर जहाँआरा का उत्साह क्षीण पड़ गया था, इसलिए इसका उत्तराधिकार निसा ने संभाल लिया था । कहना होगा कि निसा इसके लिए सर्वथा उपयुक्त थी । उसकी चित्रशाला में वर्तमान युग के कई श्रेष्ठतम मौलिक चित्र तो थे ही साथ ही अजंता के सुन्दरतम चित्रों की अनुकृतियाँ भी थीं । मौर्य और गुप्तकालीन चित्रों की अनुकृतियों के अतिरिक्त वर्तमान राजस्थानी और मुगल कलाम के भी मौलिक चित्र वहाँ थे । पहाड़ी कलम के भी दो एक चित्र टगे थे ।

आज तक यहाँ आने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ था । वहाँ निसा के साथ अकेला मैं ही था । एक चित्र में एक एक युग की संस्कृति

और कला का इतिहास सजीव था । ये चित्र देखकर समझ नहीं आया कि निसा की तारीफ के लिए क्या कहूँ ?

उसने पूछा, 'इनमें सबसे पुरानी तस्वीरें भला कौन सी हैं।'

'ये अजन्ता के चित्रों की अनुकृतियाँ ही तुम्हारी चित्रशाला में सब से प्राचीन प्रतीत होती हैं।' अजन्ता की गुफाओं में ही विक्रम स० से एक दो सदी पूर्व के तथा चौथी से सातवीं सदी तक के चित्र हैं। ये चित्र मुख्यतः बौद्ध धर्म के ही विषय हैं। इनमें बुद्ध की जीवन घटनाएँ, मातृ-पोषक-जातक, विश्वांतरजातक, षड्दंत जातक, अरुजातक, हंस जातक तथा १२ जातकों में वर्णित गौतम बुद्ध की पूर्व जन्म कथाएँ, धार्मिक इतिहास, राजकीय तथा लौकिक चित्र हैं।'

'लेकिन इसके अलावा—बागीचे, जंगल, राजदरबार घोड़े-हाथी की भी तो तस्वीरें हैं।'

मैंने कहा 'हां हैं तो।' वहाँ से हटकर हम दूसरे चित्रों की ओर बढ़े। उसने कहा 'गुप्तों के वक्त हिंदुस्तानी चित्रकला में गिरावट शुरू हो गई।''

'हां.....अजन्ता की कोमल और मृदुल शैली में उस समय स्थायित्व आने लगा था। उसमें जकड़बंदी शुरू हो गई थी। आँख शून्य की ओर जाने लगी, नाक नुकीली हो गई। आठवीं सदी तक तो रेखाओं में सजीवता है किंतु उसके बाद ह्वास ही है।'

'परन्तु मैं तो देखती हूँ कि पालों के समय उनकी सत्तनत में जो तस्वीरें बनीं उनमें यह बात नहीं है। बिहार, बंगाल और नेपाल से जो तस्वीरें मुझे मिलीं उनमें ऊँचा हुनर है। उनका रंग, लकीरों की बनावट और उसके मोड़ आदि में अजन्ता की छाया साफ-साफ जाहिर है।' कह कर उसने एक पालवंशीय चित्र की ओर संकेत किया और उसका वर्ण विधान आदि मुझे बताने लगी।

'लेकिन यह परम्परा पालवंशीय राजाओं के बाद नहीं मिलती। नेपाल और तिब्बत में हिंदुओं और बौद्धों के नीचे अवश्य यह किसी न

किसी रूप में सुरक्षित रही। पठानों के समय तो इस देश में एक प्रकार से चित्रकला तो पतन ही हो गया था। इस अर्धसभ्य जाति को चित्रकला से भला क्या ?

‘लेकिन इसकी फिर से पैदाइश सोलहवीं सदी के आखिरी सालों में अकबर के हाथों तो हुई।’

‘हाँ यह कहा जा सकता है कि कला का पुनरोत्थान उस समय अवश्य हुआ। यह पुराने और नये रूपों का संगम था। क्योंकि आप लोगों या मुगलों के दरबार में शाहंशाह अकबर से पहले के जो चित्र हैं वे पूर्णतः ईरानी हैं। मुगल कलम तो शुद्ध भारतीय है। अकबर और जहाँगीर के समय न जाने कितने विदेशी चित्रकार उनके दरबार में थे। जिस चित्रकला का बीज अकबर के समय में पड़ा इसका पूर्ण विकास जहाँगीर के समय हुआ। इस चित्रकला के सबसे अच्छे नमूने अकबर नामा और बाबरनामा में हैं।

अकबर के समय चित्रों में तो भारतीयता कूट-कूट कर भरी है। लेकिन आकृतियाँ, वर्ण विधान और नक्काशी में कहीं-कहीं ईरानी परंपरा भी मिलती है। इन चित्रों के विषय स्वर्ग, पाताल, दानवलोक, परी, तिलिस्म ऐयारी आदि हैं। भारत में अजन्ता की चित्रकला के बाद ऐसा ज्वलंत रूप बीच के युग में देखने में नहीं आया।’

‘आप अगरचे याने जहाँगीर के वक्त की तस्वीरें देखेंगे तो आपको उनमें यह बात नहीं मिलेगी। वे तस्वीरों का भारी शौक रखते थे। लेकिन उन पर ईरानी कलम का बहुत ज्यादा असर था इसीलिए उस वक्त की तस्वीरों में नफासत और बारीकी बहुत है। सारी तस्वीरों में ही बादशाहों के मजमून हैं लेकिन कुदरत से मुहब्बत होने की वजह से उन्होंने फूलों, जानवरों आदि की भी सुन्दर तस्वीरें बनवाईं।’

‘इन चित्रों में निस्संदेह प्रकृति निरीक्षण उत्तम कोटि का हुआ है और सुकुमारता भी है किंतु जहाँगीर में अकबर की मर्मज्ञता का सर्वथा अभाव था।’

सुनकर निसा मौन रही, फिर वह एक दूसरे चित्र के सामने आकर खड़ी हो गई। यह शाहजहाँ के समय का था। इसमें नफासत और बारीकी की पराकाष्ठा हो गई थी। उसने कहा, 'दादा का ध्यान तस्वीरों की बजाए मकबरे और मीनारों बनवाने का था लेकिन मुगल कलम की सबसे ज्यादा तरक्की उन्हीं के वक्त हुई।'।

'परन्तु इनमें मौलिकता की अपेक्षा सादृश्य बहुत है। ये सब शाही शान के अंग मात्र हैं। चित्रकार के व्यक्तित्व की उन पर कोई छाप नहीं। ऐसा लगता है कि जैसे ये आदेश और आज्ञा पाकर तैयार किये गये हैं। सिर्फ दरबारी दृश्य ही हैं। देखकर जी ऊबने लगता है। और अब तो इन चित्रों का रिवाज ही मिटता जा रहा है। आलमगीर औरंगजेब का युग तो शायद मुगल कलम को मिटा कर ही दम लेना चाहता है।'

इसके बाद निसा वर्तमान युग के चित्रों की ओर मुड़ी और राज-पूत कलम के एक चित्र की ओर देखकर कहने लगी—

'असल में देखा जाये तो यह वक्त की बदनसीबी है। जिन चित्रकारों को हमारे बुजुर्गों ने खून-पसीना बहाकर किसी तरह इकट्ठा किया था अब वे शाही बेइज्जती की वजह से दिल्ली छोड़-छोड़कर इधर-उधर अन्य राज दरबारों में बस रहे हैं, और उनके मुताबिक ही अलग-अलग ढंग चल पड़ेंगे।'

'चल क्या पड़ेंगे, ये कहो कि चल पड़े हैं। ऐसे चित्रों में सबसे प्रमुख राजस्थानी कलम है। इसके कुछ निश्चित दृश्य अकबरी हम्जनामा में देखे जा सकते हैं। यह शैली राजस्थान में पूरी तरह से विकसित हो रही है। इसका केन्द्र मेवाड़ है। ऐसे चित्रों के मुख्य विषय नागमाला, नायिका-भेद, कृष्णलीला, बारहमासा आदि हैं। यह शैली परम्परावादी और अलंकारपूर्ण है। यह हिंदू शैली ही है।'

'इधर एक और कलम बढ़ रही है.....वह है काँगड़ा या पहाड़ी कलम।'

‘वह राजपूत और मुगल शैली का समन्वय ही है ।’ अचानक निसा मुड़कर मेरे चित्रों की ओर आई, उसने पूछा,

‘आप किस कलम को पसंद करते हैं ।’

‘कलम को पसन्द करना एक बात है और चित्र बनाना दूसरी । अकबरी शैली मुझे ज्यादा पसन्द है किंतु प्रकृति निरीक्षण और सुकुमारता का मोह मैं नहीं छोड़ सका ।’

इसके बाद निसा चित्रशाला की खुली खिड़की से आकाश की ओर देखने लगी । उसने कहा ‘चाहे कुछ भी हो—चाहे वह कोई भी शैली हो या कलम, एक बात सच है कि ये तस्वीरें लोगों की रोजमर्रा की जिंदगी की तस्वीरें नहीं है । बड़े लोगों—बादशाहों आदि का ही चित्रण करती हैं ।’

‘आप ठीक कहती हैं । ये जन-जीवन का प्रतिनिधित्व बिल्कुल नहीं करती ।’

आज मुझे पता लगा कि निसा भावुक है तो जानी और विद्वान भी । यमुना पर नौकाविहार करते समय उसकी भावना की चरम सीमा को मैंने देखा था और काँप गया था । आज देखा था उसकी ज्ञान गरिमा को । चित्रकला सम्बन्धी उसके ज्ञान की गहराई को देख कर मैं अवाक रह गया । उसकी चित्रशाला के समक्ष मेरी चित्रशाला बंगले झँकती थी । चित्रशाला आखिर थी भी क्या.....मेरे चित्रों का संग्रह मात्र । निसा की महानता का यह नया स्वरूप था ।

वह कितनी महान है.....कितनी बड़ी हैं.....कितनी अच्छी है । मैं यही सोचता चला आ रहा था कि उसने अचानक कहा, ‘क्या सोच रहे हो ।’

‘यही कि आपको भगवान ने इतना अच्छा क्यों बनाया ?’

सुनकर उसका मुँह लाल हो गया ।

जहाँग़ारा के निमंत्रण पर मैं और निसा आगरा पहुँचे । उस दिन रात्रि का प्रथम पहर समप्त हो रहा था । आकाश में चंद्र नहीं था । तारों का धीमा-धीमा प्रकाश चारों ओर फैल रहा था । शाम को हम यमुना के किनारे-किनारे घूमते हुए काफी दूर निकल गए थे ।

पैदल लौटते हुए देर हो जाने की आशंका थी इसलिए पालकी वालों को हमने पहले ही लौटा दिया था । मेरी दृष्टि अकस्मात् यमुना की ओर उठ गई । दूर धीवरों की छोटी-छोटी नावें कतार से लगी थीं कुछ दीपक टिमटिमा रहे थे । एक धीवर वंशी बजा रहा था । रात्रि की निस्तब्धता में उस चंद्रहीन रात में वंशीरव बहुत ही सुहावना प्रतीत हो रहा था ।

‘घाट पर चलें, वहां से नावें कर लेगे ।’ मैंने कहा ।

निसा को मेरी सम्मति पसंद आ गई । हम घाट की ओर मुड़े, मैं ठिठक गया । याद आया कि रास्ता तो ताजमहल के पीछे से होगा, और उस भाग में निसा के साथ नौकाविहार करने से मैं डरता था । उस दिन का दृश्य अचानक मेरे समक्ष घूम गया जब कि निशा मेरे निश्चल हाथों पर अपना सिर रखे रो रही थी ।

परन्तु निसा समझदार थी । उसने मेरी ओर देखकर कहा, ‘तुम मलके आला जहाँग़ारा के साथ बैठ जाना ।’ मैंने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । ताजमहल यहाँ से काफी दूर था लेकिन उसकी सफेद मीनारें चाँदनी में हल्की तौर से चमक रही थीं ।

हम घाट पर जैसे ही पहुँचे तो धीवरों में कुछ हलचल हुई । तीन चार धीवर बैठे हुक्का पी रहे थे । दूर पत्थर पर बैठा एक काला सा लड़का वंशी बजा रहा था । उसका ध्यान भंग हुआ और वह हमारी ओर चला आया ।

‘कहिए सरकार.....हुकुम.....।’

‘हमें किले के पास पहुँचा दो ।’

‘उस तरफ जाना मना है । आप लोग कौन हैं ?’

‘हम लोग किले के ही आदमी हैं ।’

धीवर मेरी ओर एकटक देखने लगे । जहाँआरा तो पर्दा नहीं करती थी लेकिन निसा ने भी आज अपना पर्दा हटा रखा था ।

‘चलो तो.....’ जोर देकर मैंने कहा ।

धीवर तैयार हो गया । हम नावों पर सवार होकर दुर्ग की ओर मुड़े ।

जेबुन्निसा से इस बार जब मैं मिलने गया तो अपने साथ एक चित्र लेता गया ।

‘किसकी तस्वीर है यह ?’ उसका पहला और सीधा सा सवाल था ।

‘जसकोट की कुलदेवी का... पुजारिन का.....’

‘देवी ! यह...तो औरत है ।’

‘हाँ यह स्त्री ही है ?’ कहकर अचानक मैं यह सोचने लगा कि निसा न जाने क्या कहेगी ? पूछेगी कि इससे मेरा क्या सम्बन्ध है ? यह चित्र भला मैं क्यों लाया ? अचानक उसने पूछा ।

‘इसका नाम क्या है ?’

‘कुमुदनी देवी.....यह हमारे राज्य की कुलदेवी है । लोग इसका सम्मान करते हैं ।’

‘यह तो बहुत ही हसीन नजर आती है ।’

‘हाँ यह सुन्दर है । इसका सौंदर्य मानवीय नहीं स्वर्गिक है ।’

‘तुम उसे पूजते हो ।’

‘उसे तो कोई नहीं पूजता इसलिये मेरे पूजने का प्रश्न ही नहीं उठता । पूजा तो लोग देवी की करते हैं । वह तो उसकी पुजारिन मात्र है ।...मैं उसे सिर्फ उपहार ही चढ़ाकर लौट आता हूँ ।’

‘तुम्हारा वैसे उससे क्या रिश्ता है ?’ यह कहकर गंभीर हो निसा मेरा मुँह देखने लगी । मैं सोच नहीं सका, मैंने कहा ‘व्यक्तिगत मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं ।’ रुककर मैंने फिर कहा ‘मैं तो उसे कुमुद

के ही नाम से पुकारता हूँ । उससे मिलने का मैंने एक बार प्रयास भी किया किंतु उसने अस्वीकार कर दिया ।' कहकर मैं चुप हो गया ।

कुमुद का सम्पूर्ण विवरण मैं निसा को नहीं देना चाहता था । वैसे भी अस्वीकृति मिलने पर कुमुद से मिलने मैं कभी नहीं गया, क्योंकि मुझे क्रोध आ गया । एक दिन अचानक धूमते-धूमते घोड़े पर मैं उसी पहाड़ी की तराई की ओर निकल गया । अचानक उससे भेंट हो गई । उस ने अभिवादन किया । मुझे आश्चर्य हुआ । उसने कहा—

‘अपने राजा को सिर तो भुकाना चाहिये न ।’

मैं घोड़े पर था, उतर पड़ा, खड़ा उसे देखता रहा ।

‘शायद आप नाराज हैं ?’ उसने कहा ।

‘नहीं तो.....।’

‘तो आप मेरे निवासस्थल पर आते क्यों नहीं ?’

‘आपसे जब भेंट होती ही नहीं तो आने से क्या लाभ ?’

‘मेरी भूल क्षमा करें तो आया करें...आज तो भेंट हो ही गई ।’

कुमुद अप्रत्याशित रूप से हँसी थी इसलिए उस पर मुझे आश्चर्य हो रहा था । उसे हँसते मैंने देखा ही न था । इसके बाद परिचय घनिष्ठ होता रहा । मैं उससे मिलता रहा...

मेरा ध्यान भंग करते हुए निसा ने कहा ‘वह देवी है ।’

‘हां वह देवी है ।’ सुनकर वह हँस पड़ी । मैं मर्माहत हो उठा, मैंने कहा—

‘वह देवी है स्त्री के रूप में ।’

‘यदि वह देवी होकर एक औरत है तो उसकी कीमत बढ़ नहीं जाती । यदि औरत होकर देवी है तो बेशक यह उसका बड़प्पन है ।’

उसकी मुखाकृति पर व्यंग की रेखाएँ थीं । किसी दिन वह मेरी महानता पर आदर को लेकर मौन थी किंतु आज शायद मेरी नादानता पर मन ही मन हँस रही थी ।

औरंगजेब के दिल्ली में न होने के कारण स्थानीय शासन की बाग-डोर उस समय आजमशाह के हाथ में थी । जहाँआरा ने एक बार पुनः उस्ताद से मिलने के लिए मुझसे कहा । मैं तैयार हो गया ।

फतहपुर पहुँचने के बाद मैं घोड़े पर सवार होकर उस्ताद के घर पहुँचा और शाहजादी के आगमन की उन्हें सूचना दी । शाहजादी पालकी काफी दूर छोड़ आई थीं । साथ उनके एक बाँदी ।

उस समय रात हो रही थी । उस्ताद ने वीणा पर अँगुलियां चलाईं । एँद्रजालिक स्वर गूँज उठे । बाहर स्वच्छ चाँदनी छाई थी । एक प्रहर के पश्चात बाहर घोड़े की टाप सुनाई दी । दूर वृक्ष से बधा मेरा घोड़ा हिनहिना उठता था । देखते ही देखते एक लम्बा सा तगड़ा आदमी हमारे पास अंदर आ गया । शराब की दुर्गन्ध उसके पास से आ रही थी । वह कोई शाही मनसबदार था । साँवला सा तगड़ा । वह मुसलमान था । कटी हुई दाढ़ी, चढ़ी हुई आँखें उसकी आकृति को भयानक बना रहे थे ।

‘क्यों उस्ताद ! मालूम है न कि सल्तनत में...गाने.....बजाने का जनाजा निकल चुका है ?’

‘मालूम है...लेकिन आपकी तारीफ...आप कैसे आए ?’

‘मैं इस परगने का मालिक हूँ और बादशाह के हुक्म की तामील करने आया हूँ ।’

‘कैसा हुक्म ?’

‘यही कि तुम अपना बाजा मेरे हवाले कर दो ।’

‘क्या ?...’ उस्ताद भड़क उठे ।

‘है तुममें ताकत ?’

‘ताकत’ कह कर उस मनसबदार ने म्यान से तलवार निकाल ली ।

‘खाँ साहब...एक बात है...क्यों लाल-पीले हो रहे हो ।’ अब तक मैं पूरी तरह से खड़ा हो चुका था ।

‘तुमको मालूम है कि सल्तनत में गाने-बजाने की पाबंदी है ।’ खाँ

साहब ने मेरी ओर घूम कर कहा ।

‘जी पता है...आपको क्या कहना है ?’

‘इस परगने के मालिक के नाते यह देखना मेरा काम है कि शाह हुक्म की तामील बराबर होती है या नहीं ।’

‘लेकिन आप इतना अकड़ क्यों रहे हैं ?’

‘तू कौन है यह पूछने वाला ।’

‘मैं.....’ । व्यंग से मैंने कहा ।

‘हां तू...काफिर है...हिन्दू है....’

‘जी...हां...’

‘और तू घोड़े पर चढ़ कर आया.....बाहर तेरा ही घोड़ा बँधा है ।’

‘जी...हां...’

‘और जानता है कि शाही हुक्म के मुताबिक हिन्दू घोड़े पर नहीं चढ़ सकते ।’

‘मालूम है ।’

‘फिर क्यों चढ़ा घोड़े पर ?’

‘अपनी इच्छा से ।’

‘इतनी हिमाकत ।’ खाँ साहब को मैंने ऊपर से नीचे तक देखा ।

खाँ साहब ने समय न नष्ट करते हुए वीणा पर एक भरपूर हाथ मारा । भन ...न...आवाज़ हुई । सारी तारें कट गईं । दोनों तूँबे अलग हो गए । मुझसे यह न देखा गया । जिस गरीब ने अपनी खून की बूँदों से वीणा की एक-एक तार को कसा था वे सब तारें कट कटकर एक दूसरे से उलझ गईं । जहाँआरा तो देखती ही रह गई ।

‘हरामज़ादे...उल्लू की औलाद...तेरी सात पुश्त भूखी मरेंगी...।’
उस्ताद ने कहा ।

‘तेरा ये हीसला ।’ खाँ साहब ने कहा ।

खाँ साहब !हीसला देखने जरा बाहर आइए । यह जगह ठीक नहीं ।

बाहर अच्छी चाँदनी रात है...वहीं आपके सवाल का जवाब दूँगा
गाने-बजाने का तो सल्तनत में जनाजा निकला ही है...आपका ही
जनाजा बस बाकी रह गया है ।' मैंने अत्यन्त शांत स्वर में कहा ।

'चल बे देखता हूँ...तेरी कूबत...' कहते हुए खाँ साहब मिर भुका
कर उस्ताद के दरवाजे से बाहर हुए । मैं भी बाहर आया ।

उस्ताद चिल्ला उठे, 'खुदा के वास्ते मेरे दरवाजे पर खून मत
गिराओ ।'

'चल...बे...' खाँ साहब गरजे ।

मैंने अपना घोड़ा खोला और उस पर सवार हो गया । खाँ साहब
की बढ़िया सी काबुली घोड़ी थी । रक्काब पर पैर रखकर खाँ साहब उस
पर चढ़े । पहले तलवार को उन्होंने हवा में उठाया ।

'यहाँ खून गिराने से कोई फायदा नहीं, थोड़ा आगे हो चलें ।' मैंने
कहा ।

'मंजूर ।'

हम मुहल्ले से काफी दूर आ गए थे ।

'ले...ले...चरकटे...' । मुझ पर वार करते हुए खाँ साहब ने
कहा । मैंने ढाल पर वार को सम्हाल लिया । वह वार अत्यन्त
जोर से पड़ा था इसलिए मेरा घोड़ा पीछे के पैरों पर ठिठक कर जोर
से हिनहिना उठा ।

मैं सम्हाल कर खाँ साहब का ढँग देखने लगा । मैं समझ गया कि
खाँ मँजा हुआ सवार और योद्धा है ।

उसकी तलवार बिजली की तरह चमक उठती थी । उसके हरएक
वार को सफलता पूर्वक मैं विफल कर देता था ।

'ले सम्हाल...दड़ियल...' मैंने कह कर उसके कंधे पर वार
किया लेकिन उसने सफलता पूर्वक सम्हाल कर पैतरा बदला और मुझ
पर पीछे से वार किया । वह मेरे शिरस्त्राण पर पड़ा । गरदन में मोच
सी आने को हुई ।

मैंने घोड़े को ऐड़ लगाई । अचानक खाँ ने मेरे पास आकर मारने के लिए पूरा हाथ उठाया । उसकी गरदन का भाग खुला ।

मैंने उसमें सीधी तलवार भोंक दी ।.....

आ.....आ...बोलकर उसकी लाश घोड़े से गिर गई । हाथ हवा में ही रुका रह गया । खाँ साहब के ही कपड़ों से मैंने तलवार पोंछ कर अपनी म्यान में रख ली ।

घोड़ा दौड़ाते हुए मैं मुहल्ले की ओर आया । भीड़ में जहाँआरा खड़ी उसी तरह रास्ता देख रही थी । वह गंभीर थी उसने पूछा—

‘क्या हुआ ?’

‘खाँ साहब मारे गए ।’

‘या खुदा.....’ सिर थामकर उस्ताद जमीन पर बैठ गए ।

‘अब चलो यहाँ से ।’

मैंने अपना घोड़ा मोड़ा और उतर पड़ा । जहाँआरा के साथ मैं पैदल चलने लगा । आधी रात हो रही थी ।

‘तुमने ठीक नहीं किया ।’ रास्ते में जहाँआरा ने मुझसे कहा ।

क्यों ?’

‘यह काम इतना सस्ता नहीं है ।’

‘मतलब ।’

‘अब सिपाहियों को पता लगेगा । मारने वालों की तलाश की जाएगी । उस समय हम लोगों का बचना खतरे से खाली नहीं है । इस सल्तनत में रहम और अवलमंदी नाम की कोई चीज नहीं है । अब तुम्हारा यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं है ।’

‘आप अपनी चिंता तो न करें आपको मैं सकुशल दिल्ली पहुँचा दूँगा ।’

‘ऐसी गलती मत करना । तुम दिल्ली चलो मैं आगरा ही रह जाती हूँ । यह बात उतनी सहज नहीं है जितनी कि तुमने समझ रखी है । सीकरी तक साथ चलो वहाँ से अलग ही दिल्ली चले जाना । साथ-साथ

जाने से हाकिमों को शक हो जाएगा ।” मुझे जहाँआरा के धैर्य पर आश्चर्य हुआ, मैंने कहा “यह सब देखकर आप विचलित नहीं हुई ।

‘ये सब खून खराबे देखते और सुनते तो बाल सफेद हो गए हैं ।’

ये वही स्त्री थी जिसने अपने बाप और भाइयों की मृत्यु को अपनी आँखों के सामने देखा था ।

*

*

*

दूसरे दिन जब मैं जहाँआरा के महल में गया तो प्रहरी मुझे घूर रहा था । मुझे कुछ अजीब सा लगा । उससे मैंने कुछ नहीं कहा । सोचा, शाहजादी से अनेकों विद्वान अक्सर मिलने आया करते हैं क्या यह सबको ऐसे ही घूरता है ? शायद यह सोच रहा हो कि रात को शाहजादी के महल में क्या करता हूँ ? खैर मैं आगे बढ़ा । उस समय रात्री का प्रथम प्रहर था ।

शाहजादी एक आसंदी पर उदास बैठी थी । मैंने कहा “निसा.... ।”

‘कौन उदय !’

‘हाँ उदय ही.....परन्तु आज उदास क्यों हो ?’

‘उदय, तूम यहाँ मत आया करो ।’

‘अच्छा नहीं आऊँगा ।’ कह कर जैसे ही मैं मुड़ने लगा वैसे ही उसने मेरा हाथ पकड़ कर कहा “तुमने एक शाही मनसबदार को मारा है ।”

‘हाँ.....वह सब आप मलकेआला जहाँआरा से पूछ सकती हैं ।’

‘खैर यह सब तो उन्होंने मुझे बता दिया था । वह मशहूर ५ हजारी मनसबदार था ।’

निसा की आँखों की भाषा समझते मुझे देर न लगी । कभी-कभी आँखों की भाषा शब्दों की अपेक्षा तीव्र होती है ।

‘निसा सच जानों मैंने उसे मारा नहीं उसने ही अपनी मौत को बुलाया था ।’

‘वह सरदार नशे में था.....न.....’

‘हाँ वह नशे में ही था । उसका मैं ख्याल करता.....उसने उस्ताद की इज्जत पर हमला किया । उसने अन्याय किया । यदि मैं

कुछ नहीं करता तो मेरी बेइज्जती थी । मैं बिना कपड़ों के घूम सकता हूँ, भूखा रह सकता हूँ लेकिन इज्जत की मौत बेइज्जती की जिंदगी से लाख दर्जे ज्यादा पसंद करता हूँ ।’

‘भाई जान आजमशाह यहाँ आए थे । उन्हें इतना पता लग गया कि बुआ उस समय वहाँ हाजिर थी । उन्होंने कहा कि “बादशाह की गैर हाजिरी में ही यह सब हो रहा है उनके आने पर मैं पूरा-पूरा बदला लूँगा । मैंने उनसे कहा कि “इन सारी बातों का मुझे कुछ भी पता नहीं है । उस समय सारे महल में उनकी ही आवाज सुनाई दे रही थी । सब बाँदियाँ डर कर सिमट गई थीं । संगमरमर के फर्श पर मेरे आँसू गिर पड़े । तब से मैं ऐसे ही बैठी हूँ ।’

मुझे क्रोध आ रहा था । मैं बैठा सामने दीवार को देख रहा था । मन में अनेकों तूफान उठ रहे थे ।

‘मैं इसका बदला लूँगा ।’ मैं बड़बड़ा उठा ।

‘उदय, लोहा जब लाल होता है तब उस पर मारा जाता है अभी किससे बदला लोगे और कैसे बदला लोगे ?’……अभी तुम जसकोट लौट जाओ ।’

‘दो एक दिन में मैं अवश्य चला जाऊँगा ।’

‘जाने से पहले मिल अवश्य लेना ।’

इसके बाद मौन वातावरण रहा यह वक्त ही ऐसा है ।

मैंने कुछ नहीं कहा । मैं डेरे पर लौट आया

किसी समय मैं जेबुनिसा के निकट होकर भी उससे दूर था आज दूर जाकर भी निकट होने जा रहा था ।

*

*

*

उस मुगल सरदार को मैंने मार तो डाला किन्तु इस क्षणिक विजय ने मेरी आँखें खोल दी । अब पता लगा कि यहाँ से निकल जाना कितना कठिन था । शाही फरमान भी निकला ही जाता था ।

वह प्रहरी……

उसका ख्याल आया। उसने आते जाते मुझे देखा था। बाँदियों से उसने पता लगाया होगा। जाने से पहले उसे भी देखूँगा। फिर औरंगजेब का ख्याल आया। जिसका हृदय रेगिस्तान की तरह सूखा और गर्म था। संभवतः रेगिस्तान की रेत भी उससे ठंडी थी।

वहीं पर जेबुनिसा और जहाँआरा जैसे कलाकार भी थे।

आलमगीर.....।'

उसकी एक दृष्टि अनेकों को बना सकती थी, अनेकों को बिगाड़ सकती थी। उससे बदला तो मुझे लेना था लेकिन साँप के बिल में अँगुली करने से क्या लाभ?

दूसरे दिन मैंने प्रस्थान की पूरी तैयारी करली। जाने से पहले रात्रि के द्वितीय याम के प्रारंभ होने से पहले मैं निसा से मिलने जहाँ-आरा के महल की ओर बढ़ा।

द्वार पर प्रहरी ने कहा 'आगे कदम नहीं रखना।'

'कौन.....प्रहरी.....क्या बात है?'

'तुम्हारी गिरफ्तारी का फरमान निकल चुका है।.....आगे कदम मत रखाना.....तुम मेरे पंजे में हो।'

'प्रहरी.....' समस्या को बढ़ने से पहले ही मैं रोक देना चाहता था। प्रहरी को मैंने वहीं समाप्त कर दिया।

इसके बाद मैं हंस पड़ा 'ह.....ह.....ह.....ह.....।'

वह हंसी पागलों की थी। आँधी और तूफान से भी भयंकर। निसा सुनती तो शायद ममहित हो जाती।

उस दिन अमावस्या की रात्रि थी। द्वितीय प्रहर बीत रहा था। चारों ओर तारों का मन्द प्रकाश फैला था। धीरे सन्नाटा छाया था। दूर हल्के-हल्के गीदड़ों के स्वर रह-रह कर सुनाई दे जाते थे।

'महल से कोई बाहर आता हुआ दिखाई दिया।

वह शाहजादी थी। वह अन्दर जाने लगी।

'शाहजादी.....'

‘कौन.....?’

‘मैं उदय..... । आज ही मैं जा रहा हूँ ।’

महल के सामने ही उस चन्द्रहीन रात में निसा मेरे अत्यन्त निकट खड़ी थी । उसकी गरम साँसों के स्वर सुनाई देते थे । मुगल महलों की शिल्पकला उस रात में सिर उठाकर भी शांत थी । सुप्त निशा के घोर सन्नाटे में निसा का आंचल हवा के साथ उड़-उड़ जाता था । वह बार बार उसे सम्हालती थी ।

‘उदय.....अभी तुम हँसे थे ।’

‘हाँ, ...मैंने एक और खून किया ।’

‘किसका ?’ निसा ने मेरा हाथ पकड़ लिया और उत्सुकता से पूछा ।

‘प्रहरी को मैंने मार डाला ।’

‘क्यों ?’

‘क्योंकि वह मुझे बादशाह के हवाले कर रहा था ।’

निसा ने एक ठंडी सांस ली । उसकी सघन पलकें गहन रात्रि में तारों की ओर उठ कर कुछ दूँढने का विफल प्रयास कर रही थीं । उसका चेहरा भय से सफेद हो रहा था, आँसू तो प्रायः सूख ही चुके थे । उसके हाथ भी ठंडे थे । उसका महल रात्री में राक्षस की तरह सिर उठा कर खड़ा था । महल में भी सन्नाटा छाया था । बाहर केवल हम दोनों ही खड़े थे ।

‘महल के पिछले हिस्से में आ जाओ ।’ इसके पीछे-पीछे मैं महल के पिछले हिस्से—उद्यान में चला आया । फूलों की महक आ रही थी । फिर भी आज सूना लग रहा था ।

‘आज जाओगे ।’ धीमे स्वरों में उसने पूछा ।

‘हाँ ।’

‘तारों के प्रकाश में उसके आँसू स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे ।’

‘मैं आज ही खाना हो जाऊंगा । चारों ओर मुगल सल्तनत है, न जाने भाग्य में क्या है ?’

‘कहो तो कुछ सवार साथ करा देती हूँ ।’

‘नहीं इससे तो पकड़े जाने की संभावना और बढ़ जाएगी, और बात के पता लगने पर व्यर्थ तुम पर विपत्ति आ गी ।’

‘उदय खिलवाड़ करने के लिए वक्त नहीं है, कहो तो सवार साथ करा देती हूँ ।’

‘तुम कैसी बातें करती हो । अभी तक के तुम्हारे उपकार क्या कम रहे हैं ? आशीर्वाद दो कि अपना मार्ग सकुशल तय कर लूँ । मार्ग में पकड़ा गया तो क्या छुड़ा सकोगी ?’

‘पकड़े गए तो मरने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है । मेरी ओर से उम्मीद करने की भूल कभी मत करना । मेरा और मलके आला जहाँ-आरा का प्यार किसी को बचा सकता तो दाराशिकोह और शाहजहाँ को रोते-राते न मरना पड़ता ।’

इतने में ही बाँदी ने जया नामक एक रमणी के आने की सूचना दी ।

वह आई । उसने कहा, ‘मैं आगरा से आ रही हूँ । जहाँआरा नहीं आ सकेंगी ।’

‘ठीक है ।’ निसा ने कहा । ‘तुम महल में चलो मैं आ रही हूँ ।’ सुन कर वह रमणी वैसे ही वापिस मुड़ गई ।

‘जा रहे हो……।’

‘हाँ ।’ मेरे स्वर्णों में उदासी थी ।

‘वो उस्ताद उस दिन से न जाने कहाँ चले गए ?’ निसा ने बात बदलते हुए कहा । उस्ताद का नाम सुन कर मुझे कुछ सोचना पड़ा । मैंने कहा ‘आखिर उन्हें भी प्राणों का मोह है ।’

‘देवी एक कष्ट करोगी ।’ मैंने कहा ।

‘ये तकल्लुफ अपने पास रखो । जो कहना है सीधी तरह से कहो ।’

मेरे पास एक गट्ठर था । उसे निसा को देते हुए मैंने कहा 'मैंने अपने भ्रमण के सिलसिले में काफी साहित्यिक और कलात्मक सामग्री एकत्रित की है । विशेष कर चित्र । मेरा तो भविष्य संदेहास्पद है परन्तु मैं इन निधि को खतरे में नहीं रखना चाहता । मैं नहीं चाहता कि यह खो जाए । इसके लिए मैंने अपना सारा खून पसीना एक कर डाला है । कुछ ग्रन्थ और कुछ चित्र, ये ही मेरी अर्जित सम्पत्ति हैं । मुझे मृत्यु का भय नहीं किन्तु इस सामग्री को मैं नष्ट नहीं होने देना चाहता मैं रास्ते में पकड़ा गया तो इसका न जाने क्या हाल होगा ? मैं तो मारा जाऊँगा किन्तु संसार की एक निधि व्यर्थ चली जाएगी । मैं नश्वर हूँ किन्तु यह अमर है । इसे संभाल कर रखो । इससे उप-युक्त स्थान मुझे तो कोई प्रतीत नहीं होता ।' यह कह कर मैं निसा का मुँह देखने लगा ।

'तो तुम्हारी कमाई की शोहरत मुझे लेनी होगी ।'

'निसा' खिलवाड़ मत करो । यह मेरी, नहीं इस वस्तु के भविष्य का सवाल है । यह मेरी बपौती नहीं है । कला और साहित्य की चीज है । इस पर सबका अधिकार है ।' मेरे चेहरे पर उतावलेपन की रेखाएँ खिच रही थीं ।

'यह महल तुम्हारा है जगह तुम्हारी है मुझ पर भी.....' 'अचानक वह रुक गई । उसने गट्ठर मेरे हाथ से ले लिया और कहा 'चिन्ता मत करना ।'

'इसे सुरक्षित रखना और मौका पाते ही जसकोट भेज देना ।'

'ठीक है ।'

फिर काफी देर मौनता रही । मैं और निसा निश्चल भाव से खड़े थे ।

यामिनी की सघन कालिमा के साथ घोर नीरवता मुगल नगरी पर छाई थी । 'देवी बिदा दो ।'

'यह मेरी बदकिस्मती रही उदय' कि जो मेरे पास आया उस पर

किसी न किसी प्रकार की आफत आई ।’

‘तुम्हें तो निसा न जाने कहाँ का व्यर्थ भ्रम हो गया है ।’

सुनकर निसा की आँखें भर आईं । उसने कहा, ‘उदय मौका मिलने पर जसकोट अवश्य देखूँगी ।……महान् होकर भी……तुम नादान ही रहे उदय……?’

इसके बाद उसने मेरे दोनों हाथ अपने दोनों हाथों में में दबा कर उन पर अपना सिर रख दिया । उसके ठंडे हाथ और गरम-गरम आँसू मेरे हाथों पर गिर रहे थे ।

अर्ध-रात्रि की भयंकर कालिमा……निसा के आँसू……सबको छोड़कर मैं चला आया ।

मैं चल तो आगे रहा था किन्तु हृदय पीछे की ओर था । मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि निसा उसी तरह खड़ी सूनी आँखों से मुझे जाता देख रही है । उसका दिल करता था कि दौड़कर मेरा रास्ता रोक ले लेकिन बाहरी परिस्थितियों ने उसे जकड़ रखा था । उसकी स्मृति मेरे समक्ष साकार हो उठती थी ।

पवन के झोंकों में उसके स्वर मुझे लहराते हुए सुनाई दे रहे थे ।

मुगल अट्टलिकाओं का ऐश्वर्य पीछे रह गया । वन-प्रान्तर भाग, विजन पथ……उस पर मैं बढ़ा जा रहा था । स्मृति की लहरों ने हृदय में प्रलय मचा रखा था । तलवार लेकर यमुना तट पर मैं बढ़ा जा रहा ।

*

*

*

हमारा दल चल पड़ा ।……

जसकोट की ओर

उसी समय मुझे जेबुनिसा के साथ आगरा का प्रसंग याद हो आया । उस दिन वह मेरे कितने निकट थी, जब कि मेरे निश्चल हाथों पर सिर रख कर वह रो रही थी ।

मुझे अपने पिता की स्मृति हो आई । अपने पिता का मुझे कोई स्मरण नहीं था । जब कभी भी मैंने इसके विषय में माँ से पूछताछ की थी तो इसका उत्तर मुझे सदैव गीली आँखों से ही मिला था ।

इसलिए मैंने कभी जोर नहीं दिया ।

ससार में जिसके माँ-बाप नहीं होते वे वास्तव में अनाथ होते हैं । छुटपन में वे अपना निर्वाह नहीं कर सकते और बड़े होकर सदैव एक अभाव को महसूस करते रहते हैं ।

जहाँआरा का भाई-बहिन.....माँ.....बाप कोई भी तो नहीं था । वह धनवान किन्तु अनाथ थी ।

मैं निसा के जिवन में शायद उसकी इच्छा के बिना प्रवेश करना चाहता था और उसकी इच्छा के बिना ही उसके जीवन से निकल भी गया ! मेरा राज्य दक्षिण में था । निसा ने एक बार कहा था 'उदय, तुम्हारा यह उन्नत मस्तक, चमकती आँखें मेरे लिए काफी हैं ।'

तरुणाई की तरंगों में विकसित अपने मस्तिष्क को तृप्ति देने के लिए ही मैं दिल्ली आदि ऐतिहासिक क्षेत्रों की ओर मुड़ा था ।

मेरे राज्य के बीच से गोदावरी सर्पाकार रूप से बहती थी । पहाड़ों की तराई और हरीतिमा के पुंज में बसा हुआ यह राज्य अपनी नैसर्गिक सुन्दरता के लिए अद्वितीय था । राज्य की लघुता उसकी कुशलता में समा गई थी । राज्य में एक से एक शिल्पी और चित्रकार थे ।

हमारा दल दिल्ली से तो बाहर आ चुका था । मैं वैसे मानसिक घात-प्रतिघातों से क्षुब्ध हुआ जा रहा था । निसा और जहाँआरा की संगति से मेरे फारसी ज्ञान में अभिवृद्धि हुई थी । कई भाषाओं के साथ ही साथ मैंने फारसी भी सीखी । मुगल इमारतों में आज भी सौंदर्य और कला नाम की कोई वस्तु थी । लेकिन शाहजहाँ की वह स्थापत्य कला जिसे उसने अपने खून से तैयार किया था आज सो चुकी थी । औरंगजेब के शासन में सबको सिर धुनना पड़ता था ।

अकबर की वह शासनसत्ता जिस में हिन्दू और मुसलमान, हिन्दू और मुसलमान न हो कर भारतीय हो चुके थे, आज सो चुकी थी। लुप्त प्रायः थी। शाहजहाँ कि विलासिता अपना दम तोड़ चुकी थी।

वहाँ था औरंगजेब..... ।

जिसका दिल सूख चुका था या था ही नहीं। हृदय पिघल कर क्रूरता में समा गया था। जिस दिन दिल्ली की दीवारों में शाहजहाँ और दारा की आत्मएँ चीख उठी थीं उस दिन औरंगजेब के अत्याचार अपनी सुप्तावस्था से जागकर विनाश की ओर सफलता पूर्वक बढ़ गए थे।

मुगलकाल की कला के निसा और जहाँआरा दो जगमगाते रत्न थे, उदाहरण थे। ये दोनों अपने युग से काफी आगे दोड़ रही थीं। जहाँआरा तो फारसी की महान साहित्यकार थी।

वहाँ जीवन और विनाश में अन्तर नहीं था। प्रतिहिंसा और अत्याचार खुलकर खेलते थे।

और जेबुन्निसा...जिसने मेरी अर्जित सम्पत्ति को सुरक्षित रखने का वादा किया था।

✱

✱

✱

रात्रि का अन्तिम प्रहर उषा के मन्द बहने वाले समीर के साथ बह गया। सुरभित कलिका ने दिवसराज के साथ ही साथ अपने पंखों को खोला।

‘राजन्, क्या आज भी चलना होगा? एक सामंत ने पूछा।

‘हाँ, अभी हमको चलना ही होगा।’ हम दिल्ली से काफी दूर नहीं हैं। एक सप्ताह तो कम से कम रुकना मूर्खता है।’

आन्तरिक हलचल के परिणामस्वरूप मैं अस्वस्थता का अनुभव कर रहा था।

हमारा दल एक विशाल पेड़ के नीचे ठहरा था। जलपान के

पश्चात् ही मैंने धोड़े कसने की आज्ञा दी । अनुचरों सहित हमारा दल चल पड़ा ।

सूर्य की किरणों धरती को प्रताडित कर रही थीं । ग्रीष्म की भयानकता के कारण चारों ओर सन्नाटा छाया था । खेतों में सिर्फ दो एक किसान ही दिखाई पड़ जाते थे ।

*

*

*

अश्वरोहियों का दल संतप्त हो चुका था । हमें सिर्फ बढ़ना ही था और हम बढ़े जा रहे थे ।

एक विशाल वट वृक्ष के नीचे हमने अपना डेरा डाल दिया । संध्या के अस्तंगत सूर्य की किरणें पृथ्वी से अपने पंखों को समेट रही थीं । हमारे पास ही शमशान था किन्तु हमने ध्यान नहीं दिया । थकावट अधिक थी इसलिए रात होते-होते मैं सो गया । एक के बाद एक स्थान लेने वाली विचार श्रंखलाएँ टूट सी गईं ।

अर्ध-रात्रि की गहृत कालिमा में मेरी नीद खुल गई । धरणी के विशाल वक्ष पर रजनी ने अपनी चादर तान दी । रात्रि की वह कालिमा किसी का दिल हिला देने के लिए काफी थी ।

क्षितिज पर बादल भी उमड़ आए थे । बिजली भी रह-रह कर कौंध उठती थी । जंगली जानवरों के दूर से आने वाले फीके स्वर सुनाई दे जाते थे । सियारों के स्वर रात की निस्तब्धता को चीर उठते थे ।

मैंने देखा.....

मुझे आश्चर्य हुआ.....

पहले तो अपने पर विश्वास ही न हुआ । मैंने देखा कि शमशान से हटकर काफी दूर एक दीपक जल रहा है । दीपक का प्रकाश कभी-कभी हवा की कमी के कारण तेज हो उठता और वही दीपक हवा की अधिकता के कारण बुझने सा लगता । जिस समय उसकी लौ प्रखर हो उठती तो आसपास का कुछ भाग भी दृष्टग्त हो जाता । और जब वह

टिमटिमाने लगता तो ऐसा प्रतीत होता कि इस को बुझ जाने में अब कोई कसर नहीं है । काफी देर तक यह काम चलता रहा । हवा की प्रखरता का उस पर पूर्ण रूप से प्रभाव पड़ता था ।

इस दीपक के मन्द प्रकाश में मुझे किसी की काली छाया दिखी । मैं काफी देर तक उसे आश्चर्यान्वित हो देखता रहा । मुझे अपने पर विश्वास ही न हुआ । आखिर वह कौन है ? दीपक की लौ के तीव्र होते ही वह मूर्ति कुछ-कुछ स्पष्ट दिखाई पड़ती ।

अचानक बिजली चमकी और उसके क्षणिक प्रकाश में मैंने उस मूर्ति को अच्छी तरह से देखा । विद्युत् के प्रकाश के मिट जाने पर भी रात्रि की गहिरा कालिमा में उस मूर्ति की रूप रेखा दिखाई सी पड़ती थी, क्यों कि दीपक का मन्द प्रकाश उस पर पड़ रहा था ।

अर्ध-रात्रि के घोर सन्नाटे में भला कौन और क्यों दीपक जला रहा है ? हवा के तीव्र झोंकों के साथ वह दीपक जब बुझने लगता तो वह व्यक्ति अपने आँचल से ओट कर उसे जलाए रखता । दीपक के प्रकाश में उसका चेहरा दिखाई सा पड़ता । वह दीपक किसी की समाधि पर जल रहा था ।

सहसा फिर प्रश्न वही उठा कि वह व्यक्ति कौन है ? बुद्धि तो परिचय के अभाव में उत्तर देने में असमर्थ थी । मैंने तलवार सम्हाली और उठ खड़ा हुआ । उस ओर मैं अन्यमनस्क भाव से बढ़ गया । मैंने सोचा कि वह प्रेत ही होगा क्यों कि किसी आदमी का इस निर्जन रात्रि को वनप्रांतर भाग में आना तो असंभव सा था । ठिठक कर भी मैं इस और बढ़ता ही गया ।

उस जगह पर पहुँचने पर तो मुझे और आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह मूर्ति तो मनुष्य की ही थी । चारों ओर गहिरा कालिमा छाई थी । इसलिए उस मनुष्य का चेहरा साफ-साफ तो नहीं दिखाई पड़ता था ।

‘रात्रि के निविड़तन घोर तिमिर में कौन……?’ मैंने पूछा ।

अपने शब्दों को दुहराने के पश्चात मैंने कहा ‘मनुष्य या प्रेत ।’

वह मुझे टुकुर-टुकुर देख रहा था किन्तु मौन था ।

‘क्यों बोलते क्यों नहीं ?’ मैंने फिर कहा ।

‘हाँ प्रेत.....जीवित प्रेत ।’ एक मन्द स्वर अर्धरात्रि की निर्जनता में लीन हो गया, वह मुझे एक-टक देख रहा था ।

‘जीवित प्रेत..... ।’ मैं हंस पड़ा । क्योंकि उस उत्तर में दृढ़ता के साथ विचित्रता भी थी ।

‘क्यों हंसते हो ?.....’ शायद मेरी दशा पर ।’ उसने तीक्ष्ण स्वरों में कहा ।

‘मैं हंसता हूँ तुमको या तुम्हारी दशा को देखकर नहीं बल्कि जीवित प्रेत सुनकर.....’

‘हर किसी का एक समय होता है ।’ इसके बाद एक ठंडी सांस लेकर उसने पुनः कहा—

‘मेरा स्वरूप जीवित प्रेत सा है क्यों कि इसके पीछे एक लम्बी कहानी है । जो हंसकर मुझे छल जाया करती है ।’ उसकी आँखों से पानी गिर पड़ा । यह मुझे उसी समय पता लगा जबकि उसने आँखें पोंछीं ।

मैं अप्रतिभ सा हो गया । मैंने कहा “तुम रो क्यों रहे हो.....बड़े अद्भुत हो ।’

‘मैं अद्भुत हूँ वह चीख उठा । फिर नतमस्तक होकर समाधि पर काफी देर पड़ा रहा । उस समय शान्त किन्तु एक अजीब सा वातावरण था । चारों ओर निर्जनता और नीरवता का साम्राज्य था । उसका आँचल हवा में उड़ रहा था । वह स्वयं, उसके कार्य, उसके ढंग मेरे लिए तो सब कुछ अद्भुत था ।

‘विचित्र जीव..... है.....’ परन्तु उसने सुना नहीं ।

उसने कहा “जीवन के क्रम में पहुँच कर बस इस स्थिति पर पहुँच सका हूँ कि कोई भी बरबस पूछ उठता है कि मैं भूत हूँ या मनुष्य । संसार को कैसे समझाऊँ कि प्रेत के रूप में मनुष्य ही हूँ ।’ दीपक के

मन्द प्रकाश में संसार के प्रति किया गया उसके द्वारा व्यंग स्पष्ट था ।

मैं वैसे तो कुछ काँप सा गया था, मैंने कहा “मित्र.....आधी रात.....में यहाँ कौन और क्यों आया यह तो एक सीधा सा सवाल है ।’

दीपक के चेहरे में परिलक्षित व्यंग की रेखाएँ और अधिक स्पष्ट हो गई । ठीक तरह से तो मैं कह नहीं सकता लेकिन शायद उसका व्यंग मेरी ही ओर था ।

अपने प्रश्न को दुहराने के बाद मैंने कहा “मैंने जो कुछ पूछा वह तो किसी भी अनजान के लिए एक स्वभाविक सा ही प्रश्न होगा ।’

‘आपका कसूर नहीं.....यह परिस्थितियों का ही कसूर है.....आदमी से वक्त जो न कराले सो थोड़ा है ।’ वह मनुष्य अब तक सीधा तन कर लड़ा हो चुका था । उसने कहा “खैर आपके प्रश्न पर मुझे कोई आपत्ति नहीं ।’ मुझे लगा कि वह मनुष्य मुझे समझने की कोशिश कर रहा है ।

उसका ऊँचा शरीर, बलिष्ठ कंधे, उन्नत मस्तक को देखकर मैं उसकी ओर बरबस आकर्षित हो गया । किन्तु उसकी उस व्यंगात्मक मुस्कराहट को भला मैं कैसे भूलता ? इसलिए उसके प्रति एक तिरस्कार का भाव मुझमें बना ही था ।

‘विचित्र जीव हो तुम.....’

‘विचित्र तो हूँ..... मेरा हर एक स्वरूप आपको विचित्र लग रहा है । किन्तु विश्वास मानिए कि मैं एक मनुष्य ही हूँ जिसमें एक मनुष्य बोलता है । किसी के भी चरणों में मैंने अपना सब कुछ अर्पित किया था । आज वह संसार में नहीं है, उसी की समाधि पर दीपक जलाने आया था । इसी तरह रोज दीपक जला जाता हूँ.....मुझे आन्तरिक शांति मिलती है ।’

‘इस ‘किसी’ को स्पष्ट करते तो ठीक होता ।’

‘यह रहस्यात्मक है । एक पल में, एक घड़ी में यह नहीं बताया जा सकता है । इसके लिए पर्याप्त समय चाहिए और अवसर भी……’

‘तो क्या यह अवसर नहीं है ।’

‘नहीं ।’

‘हर रोज इसी तरह दीपक जलाते हो ?’

‘हाँ ……हर रोज ।’

‘लेकिन आधी रात में ही क्यों ?’

‘क्योंकि उसका स्वर्गवास इसी समय हुआ था ।’

मैं समझ गया कि यह व्यक्ति दुःखः और तकलियों को लेकर अपने जीवन की गाड़ी को खींच रहा है । यह कुछ नहीं बताएगा ।

इससे व्यक्तिगत प्रश्न न करना ही ठीक है । मैं उसे एकटक देखता रहा ।

483/M195 H 3100

मैंने कहा ‘तुम्हारा शुभनाम……तारीफ……निवास……कुछ तो पता लगे ।’

‘निवास ! नाम !! तारीफ !!!’ वह हंस पड़ा । उसने कहा, ‘ये सब बड़े आदमियों की बातें हैं । संसार मुझे सागर सिंह के नाम से पुकारता है । निवास……पेड़ की छाया ……तारीफ—जिसने दो पैसे दिए उसके लिए तलवार चला दी…… कई युद्धों में अवश्य लड़ चुका हूँ ।’

‘अब क्या करते हो ?’

‘विपन्नावस्था में हूँ……किसी तरह दिन बिता रहा हूँ…… ।’

‘सैनिक का कार्य करोगे ।’

‘सहर्ष ।’

‘तो आओ मेरे पीछे-पीछे…… ।’

*

*

*

सागर……

उस अंधेरी रात में उससे परिचय हुआ……

और आज उसे फाँसी होने जा रही है । कितना अंतर है..... उस दिन के और आज के सागर में..... सोचता हूँ तो कलेजा ठंडा होने लगता है । कुमुद का वाक्य बरबस याद हो आया कि 'ऐसे देश-द्रोहियों की यही सजा है ।'

जसकोट का नमक खा कर... उसने मेरे विरुद्ध ही विद्रोह किया । वह अवसरवादी है जिसे अपने जीवन में आनंद की ही चिंता है । अवसर आने पर वह सिवाय अपने फायदे के किसी की चिंता नहीं करता । वह मदिराभक्त है । उसे जहाँ कहीं मदिरा मिलती है वहीं जाता है । वह मदिरा का भक्त अवश्य है किंतु सुन्दरी का नहीं । उसकी इस विशेषताके कारण ही मैं उसकी ओर विशेष रूप से खिंचा था आज तक उसने मुझे अपना पूरा परिचय नहीं दिया । मैं तो सिर्फ इतना ही जानता हूँ कि वह एक राजपूत है और लड़ना जानता है, अच्छी तरह से लड़ना । उसके व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप करने की मैंने कभी कोशिश नहीं की । राज्य में भी उसे कोई ठीक तरह से नहीं समझ सका था ।

'समझने की आवश्यकता भी क्या ?... सागर विशाल... गहरा और गंभीर होता है; कभी अपनी सीमा को नहीं तोड़ता ।'

जब कभी मैं उसके व्यक्तिगत जीवन की ओर संकेत भी करने लगता तो मुझे ऐसा प्रतीत होता जैसे कि वह रो देगा ।

मैं चुप होकर उसे सहानुभूति देता और उसका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करता ।

वह मदिरा भक्त था..... गरीब था..... किंतु ईमानदार था... आलसी नहीं था ।

*

*

*

मेरे पीछे-पीछे वह आ तो रहा था लेकिन लगता था जैसे उसकी मौनता ही सजीव हो । उसने सब कुछ कह दिया हो । उसकी मौनता वैसे संज्ञाहीन नहीं थी । उसने कहा—

'मुझे कहां ले जाया जा रहा है ? क्या मैं जान सकता हूँ ?'

‘तुम चलते आओ...पूछना फिर...’

‘फिर भी...’

‘मैं किसी राज्य का अधिपति हूँ उसकी सेना में तुम्हें स्थान दिया जायेगा ।’

‘किसी को स्पष्ट करें तो ठीक होगा ।’

‘वह रहस्यात्मक है । तुम्हीं ने तो कहा था’ एक अपरिचित को विदेशी राज्य में अपना पूर्ण परिचय दे देना खतरे से खाली नहीं था ।

न जाने क्यों उस पर मुझे आस्था हो गई थी । हालांकि वह मेरे लिए नया था । उससे मेरा कोई विगत सम्बन्ध नहीं था । फिर भी उससे मिलकर मैं काफी घनिष्टता का अनुभव कर रहा था ।

संदेह का पजर उस घनिष्टता में दबकर भी प्राणहीन नहीं हुआ था संभवतः इसीलिए मैं सतर्क और सशक्त था ।

‘मैं तुम पर विश्वास तो कर रहा हूँ लेकिन तुमसे किसी को हानि नहीं पहुँचेगी ?’

‘इस अनिश्चित प्रश्न का निश्चित उत्तर भला कैसे दूँ ?’

‘क्या यह अनिश्चित प्रश्न है ?’

‘इसका उत्तर तो भविष्य ही दे सकेगा । हाँ मदिरा में मेरा जीवन है लेकिन उससे किसी को हानि नहीं पहुँचेगी ।’ हाथी की तरह उसकी ओर अपना पूरा शरीर घुमाकर मैंने देखा । वह पर्वत की तरह अचल था । उस पर दृढ़ता के चिन्ह स्पष्ट थे । मैंने कहा ‘चले आओ...’

प्रातः ही प्राची ने अपना पट खोल दिया । क्षितिज पर कुमकुम बिखर गया । सूर्य की किरणों का मन्द हास उन्हें समेटता हुआ चला गया । जीवन का उदय और मृत्यु का अवसान एक ही साथ, एक ही समय प्राची पर हुआ । मेरी आँखें तो खुल चुकी थीं उनमें नींद नहीं थी । सागर की आँखों में कौतूहल था । उस दिन हमारे दिल के साथ एक नया मनुष्य था । सबको प्रातःकाल मैंने सागर का परिचय दिया ।

थोड़े से समय में ही वह अद्भूत मनुष्य सबसे हिलमिल गया । यह तो उसे पता ही लग गया था कि मैं किसी राज्य का नरेश हूँ इसलिये वह मुझे आदर देता था ।

हमारा दल जसकोट की ओर बढ़ा जा रहा था । आज हमारा पांचवाँ दिन था । वह अपना घोड़ा बढ़ाकर मेरे पास आया । संध्या की इस अनुपम वेला में दल के मध्यस्थ हमारे अश्व जसकोट की ओर अग्रसर हो रहे थे ।

सागर ने कहा, 'राजन ! जीवन क्या है ?'

'जीवन ! मिलने वाली असंख्य ठोकरीयों का एक नाम है ।'

सागर के मुख पर हास्य की अस्फुट रेखाएँ दौड़ गईं । उसने कहा, 'राजन, मेरा जीवन एक उन्माद है । मादकता उसकी प्राणदायिनी शक्ति है । और अन्तिम जीवन इसके सिवाय है भी क्या ?'

'तुम्हारा विषय तो सामान्य जीवन से सम्बन्धित था । व्यक्तिगत जीवन से नहीं । उन्माद जीवन के कई क्षणोंमें निस्संदेह सुन्दर होता है । किंतु उन्माद या पागलपन ही तो जीवन नहीं है । और भी कुछ है । उन्नति का वह कर्मक्षेत्र है ।'

'उन्नति के अतिरिक्त वह अवनति का भी तो कर्मक्षेत्र है । उन्नति और अवनति के बीच ही मानव जीवन की सम्पूर्णता अपूर्णता में समा कर रह जाती है । जीवन की यह अपूर्णता मादकता या उन्माद से ही सरस होती है । यही तो जीवन है ।'

'उन्माद जीवन नहीं है बल्कि उमका एक अंग मात्र है । उन्माद में इतनी पूर्णता कहाँ कि जीवन की व्यावहारिकता के साथ वह एकाकार हो सके ।'

'मेरे तो जीवन का सार ही उन्माद है । उन्नत जीवन की लहरों में मैंने जीना सीखा है ।'

'संसार के अपवाद नियम नहीं हो जाते, सागर !'

'उसके चेहरे पर चिंता की स्पष्ट रेखाएँ दिखाई पड़ रही थीं

संभवतः उसने मेरे शब्दों पर ध्यान नहीं दिया था ।

दल बढ़ा जा रहा था एक नवीन चेतना और उल्लास उसके साथ था ।

*

*

*

प्रातःकाल का मन्द समीर रुक-रुक कर बह उठता था । उसकी उत्फुल्ल अवस्था में प्रकृति का मन्द हास स्पष्ट रूप से लक्षित हो रहा था । अलौकिक-से उस वातावरण में एक दिव्य उल्लास था । चेतना की नवीन तरंगों में विकसित कलिका विश्व दर्शन प्रथम बार ही कर रही थी । वातावरण और प्रगति का यह अद्भुत समन्वय मानवीय चेतना में हलका-सा स्पंदन अवश्य पैदा कर देता था ।

प्रातः के सूर्य की किरणों उस स्वर्णिम महल के कमरों से टकराकर हजारों सूर्यों को जन्म दे रही थीं । महल के स्वर्णमंडित कलश स्वर्गीय आभा को लेकर दमक रहे थे । चारों ओर एक छोटा-सा सरोवर था उसी में यह महल स्थित था ।

‘हम कहाँ हैं...?’

‘जसकोट के राजमहल के समक्ष ।’

‘जसकोट का राजमहल !’ सागर ने रुककर फिर कहा ‘ओह ! शिल्पियों की कला का अद्भुत नमूना । विलासिता और उन्माद का सौन्दर्य तो मैंने देखा ही था । मुगल इमारतों में निवास करने वाले भारतीय एवं फारसी शिल्प को पहिचानने का भी अवसर आया था किंतु यह तो कुछ और ही है ।’

‘सागर...!’

‘क्या ?’

‘हम जसकोट में हैं ?’

‘पता है राजन् ! पता नहीं कि इतिहास इसे सुरक्षित रख सकेगा या नहीं । काश, नश्वरता न होती ।’

गंभीर होकर मैंने कहा 'इतिहास शायद ही इसे सुरक्षित रख सके । इतिहास के चौड़े रास्ते के पास जसकोट के समान न जाने कितनी पगडंडियाँ हैं । शायद इतिहासकार की दृष्टि उस पर न पड़े ।'

'इस बात को भौतिकवादी इतिहासकार भले ही भूल जाएँ किन्तु भावनामय कलाकार कैसे भूल सकता है ?'

'जसकोट को किसी ने अपनी लेखनी में नहीं उतारा है । मैं अपने व्यक्तिगत संस्मरण अवश्य लिखता हूँ । उसमें जसकोट को अवश्य स्थान मिला है किन्तु आने वाली पीढ़ी उसे सुरक्षित रख सकेगी या नहीं...' कह नहीं सकता ।'

'क्यों ?'

'अरे हमारा जीवन ही क्या है ? आए दिन सिर पर एक न एक युद्ध खड़ा ही रहता है । इस समय दक्षिण का इतिहास सिर्फ लूटमार का इतिहास ही तो है ।'

मागर ने कहा, 'राजन् ! भले ही यह सौंदर्य अमर न हो किन्तु इस की स्मृति अवश्य ही अमर रहेगी । ...महल चाहे खंडहर ही क्यों न हो जाए किन्तु उसकी भग्न दीवारें इतिहास के फटते पन्नों में भी कहीं न कहीं इस स्वर्णिम सौंदर्य को सुरक्षित रख सकेंगी...' आने वाली पीढ़ी...' और वह रुक गया ।

'मुगलों की क्रूरता से यह सुरक्षा रह सका तो भले ही इतिहास में इसे जगह मिल जाए अन्यथा नहीं ।'

'खैर भविष्य को तो भविष्य ही जानता है हम तो उसका अनुमान ही कर सकते हैं ।'

इसके बाद हमने अपने अश्व दुर्ग की ओर मोड़ लिए ।

*

*

*

राज्य भर में मेरे सकुशल आगमन पर एक उल्लास था । अपने अधिपति के आगमन से समस्त प्रजा प्रसन्न थी । नगरिकों ने अपने

अधिपति का स्वागत खुले हृदय से किया । कलावंतों ने अपनी कला का प्रदर्शन किया । राज्य में चारों ओर ही नवीन चेतना थी । सैनिकों ने भी अपना कौशल दिखाया था ।

सागर भी सब से परिचित हो चुका था । सेना में उसे महत्त्वपूर्ण पद दे दिया गया । सेनापति के सहायकों में वह था । अपनी योग्यता और व्यक्तित्व की छाप उसने मुझ पर डाल दी थी । दूर पहाड़ी की तराई में एक सुरभ्य से भवन में उसे स्थान दे दिया गया । यह व्यक्ति एकांत और निर्जनता का ही भक्त था । जिस वस्तु की उसे आवश्यकता होती उसकी व्यवस्था हो ही जाती । उसकी विलासिता भी विचित्र सी थी । उसका अपना एक दृष्टि कोण था, एक विचार धारा थी और उसके प्रति वह वफादार था । जसकोट को उसकी आवश्यकता थी तो सिर्फ इतनी ही कि वह एक कुशल योद्धा था । अपनी योग्यता और व्यक्तित्व की उसने मुझ पर छाप डाल दी थी ।

उसके आचरणों और व्यवहारों से उसे मैंने बहुत कुछ समझ लिया था ।

*

*

*

और कुमुद !...कुमुदनी देवी !!

जिसका कुछ परिचय मैंने निसा को दिया था । इसके विषय में निसा को कौतूहल अवश्य हुआ था । उसका चित्र देख कर वह गम्भीर हो उठी थी और हँस भी पड़ी थी लेकिन इस हँसी में व्यंग था । फिर उसने व्यंग से ही कहा था 'वह देवी है ।'

नगर से दूर वन-प्रांतिर भाग में एक सरोवर के बीच श्वेत संगमरमर का एक छोटा-सा अत्यन्त सुन्दर भवन था । सरोवर के चारों ओर संगमरमर लगा हुआ था । भवन के समक्ष ही देवी की मूर्ति थी । वह प्रतिमा मैंने ही बनवा दी थी । समस्त प्रजा उसकी ही पूजा करती थी । मैं स्वयं नहीं जानता था कि उस प्रतिमा में आखिर लोगों ने किस देवी का प्रतिबिम्ब आरोपित किया था ? परन्तु लोगों का झुकाव उस

ओर होने के कारण मुझे भी अपना भुकाव उस ओर रखना पड़ता था । उस प्रतिमा को बनवाने में इसीलिए ही मैंने योगदान दिया था ।

उसे जसकोट की कुल देवी माना जाता था । लोगों का ऐसा विश्वास था कि राज्य के वैभव एवं भाग्य की रक्षा वही करती हैं । उसे साक्षात् देवी माना जाता । उसकी प्रतिष्ठा की कमी नहीं थी । उस देवी का भार था कुमुद पर । यही उसकी पुजारिन, पंडा या दासी सबकुछ थी इसीलिए लोग उसे भी अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे । लोगों का ऐसा विश्वास था कि देवी को जो भी करवाना होता है वह कुमुद के जरिए ही करवाती है इसलिए वह भी देवी ही है ।

इस भवन को जाने का मार्ग मूर्ति के पीछे से था । कुमुद का अलौकिक सौंदर्य देखकर यह मान लेना पड़ता था कि वह किसी देवी से कम नहीं है । उसका स्वर्गिक सौंदर्य अपने समक्ष ज्योत्स्ना के स्निग्ध प्रकाश को भी फाका कर सकता था । उसके सौंदर्य के समक्ष तो सरोवर के तट पर क्रीड़ित राका भी फीकी-सी ही लगती थी । उसकी दीप्ति अपने साथ बरबस इस विश्वास का निरूपण कर देती थी कि नारी भी मानव सृष्टि में सौंदर्य के समन्वय से देवी ही है ।

उपहारों की उसके पास कमी न थी । द्रव्य की उसके पास कमी न थी किन्तु वह सीधी और सरल सी एक स्त्री थी । निसा की भादकता उममें नहीं थी । निसा की उदासीनता उसमें नहीं थी । सौंदर्य की वह प्रतिमा गाढ़े के कपड़ों में अपना कार्य किया करती थी । लोगों के दुःखों में हिस्सा बँटाकर यथायोग्य वह उनकी सहायता करती थी ।

उसके पूर्व इतिहास का लोगों को कुछ भी परिचय नहीं था । मैं काफी प्रयास और बारबार की असफलता के बावजूद भी केवल इसी निर्णय पर पहुँचा था कि—कई वर्ष पहले उस स्थान पर एक महर्षि रहा करते थे । अपने तपोबल की प्रबलतावश जसकोट के समस्त लोगों का आदर उन्हें प्राप्त था । अपने व्यक्तित्व एवं प्रतिभा से लोगों को उन्होंने प्रभावित कर रखा था महर्षि सद्गृहस्थ थे । उनकी कन्या थी

जिसका नाम कुमुदनी देवी था । उसे मैं कुमुद कहा करता था । लोगों को महर्षि ने कन्या का परिचय सदैव देवी के रूप में ही दिया । महर्षि ने अपने जीवनकाल में ही उस संगमरमर के भवन का निर्माण करवाया था । उस भवन में शिल्पियों के हस्तकौशल से कला साकार हो उठी थी । तरुणावस्था में ही उस कन्या को छोड़कर परलोक सिधारे थे ।

सिंहासनारूढ़ होते ही मैंने लोगों के अनुरोध पर देवी की प्रतिमा बनवा दी थी । शिल्पियों ने उस पर एक वर्ष पसीना बहाया था ।

कुमुद से मिलने का वैसा विशेष अवसर तो प्राप्त नहीं हुआ था । मैं सिर्फ उपहार चढ़ा कर लौट आता था । एक दिन उपहार चढ़ाकर मैं खड़ा सरोवर की छोटी-छोटी मछलियों को देख रहा था । वे एक पल को ऊपर आत और आकर फिर अन्दर चली जातीं । सरोवर में काफी मछलियाँ थीं क्योंकि उन्हें कोई पकड़ता नहीं था । प्रातःकाल का समय था । भव्य भवन का प्रतिबिम्ब पानी में पड़ रहा था ।

मैं कुमुद के पास आता अवश्य; किन्तु उपहार चढ़ाकर लौट जाता । उससे बातें करने में मुझे सकोच का अनुभव होता । उसने मुझे कई बार एकटक देखा था किन्तु मैं उसे कैसे एकटक देख सकता था ।

मैंने पीछे मुड़कर देखा.....कुमुद खड़ी थी ।

‘आज इतनी देर से यहाँ कैसे खड़े हो ?’ कुमुद ने पुछा ।

‘मछलियों को देख रहा था—उनकी जलक्रीड़ा सुन्दर लग रही है ।’

‘मैंने समझा शायद मुझसे विशेष कार्य हो ।’

‘नहीं ऐसी कोई बात नहीं थी ।’ वातावरण मौन रहा उसने कहा,
‘राजन ! भावनाहीन कर्त्तव्य किस काम का ?’

‘मैं विश्वास के साथ अपना कार्य करता हूँ ।’

‘मुझमें आपका विश्वास है ।’

‘आपका आशय मैं समझा नहीं ।’

‘क्या इतने भोले है आप ?’ परिस्थिति साफ उत्तर माँग रही थी । मैंने कुमुद को एक बार अच्छी तरह से देखा । समझ नहीं सका कि क्या यही कुमुद है जो मुझे एकटक देखकर ही मौन रह जाती है । इसकी औपचारिकता न जाने आज कहाँ चली गई ? मैं हतप्रभ-सा हो गया । वह काफी आगे बढ़ आई थी । उसकी निकटतावश उसकी गर्म साँस का हल्का-हल्का स्वर मुझे स्पष्ट सुनाई दे रहा था । मेरा मुख विवर्ण-सा हो रहा था । उसकी आँखों में स्थिर भाव से देखने की मेरी शक्ति नहीं थी । उसने पूछा—

‘क्या अस्वस्थ हो ?’

‘नहीं……तो……ठीक तो हूँ……।’ लगता आसमान था कि लाली हट कर जैसे उसके गालों पर आ गई हो । उसके गाल लाल हो रहे थे किन्तु आँखों में एक दृढ़ विश्वास था । मेरे शरीर में ऊपर से नीचे तक सिहरन-सी दौड़ गई । एक क्षण को मैं पत्ते की तरह हिल उठा । उसके पार्थिव सौंदर्य को देखने का आज जी भर के मौका मिला था ।

‘अन्दर आ कर बैठो……अपनी यात्रा के कुछ संस्मरण सुनाओ । समय कट जाएगा……आज मन उदास है ।’

‘फिर कभी……।’

उसने मुस्करा कर कहा ‘देखती हूँ यहाँ से कैसे जाते हो ?’ मेरे हृदय की स्थिति कुछ अजीब सी थी । जिसके लिए कितने दिन मैंने यों ही बिता दिए आज वही सत्य बन कर मेरे समक्ष आ गया ।

उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और घसीटते हुए अपने भवन की ओर ले चली । मेरे शरीर में बिजली सी दौड़ गई ।

इससे पहले ऐसा मौका कभी नहीं आया था । आज औपचारिकता की सीमा तोड़कर उसके हृदय का बाँध टूट सा गया था । आज मुझे प्रतीत हुआ कि इस नारी के पास भी एक ऐसी वस्तु है जिसे हृदय की संज्ञा दी जा सकती है । कई तरह की विचार तरंगों में बहता हुआ अन्यमनस्क भाव से इसके पीछे-पीछे जा रहा था ।

स्मरण हो आया निसा का, जबकि निसा मेरे निश्चल हाथों पर अपना सिर रखकर रोई थी। उस दिन मुझे पता लगा था कि नारी कितनी ही महान क्यों न हो किंतु मूल रूप में नारी ही है और उसका मूल्य उसके नारीत्व में ही है। इसी नारीत्व के दर्शन मुझे आज कुमुद में पहली बार हो रहे थे। मेरे निकट वह आ तो रही थी किंतु... मेरे समक्ष निसा का चित्र घूम कर रह गया।

ऐसा ही कुछ-कुछ उस दिन कुमुद के संसर्ग से मैंने महसूस किया। उसके सौंदर्य को मैं देखता ही रहा और उसमें खो गया। ऐश्वर्य और प्रतिभा के ढेर के नीचे मैंने सौंदर्य की चिनगारियों को निसा के महल में सुलगते देखा था। और देखा था अब कुमुद को। कुमुद से उसकी तुलना व्यर्थ सी जान पड़ती थी। कुमुद का सौंदर्य स्वर्गिक था, दैविक था..... निसा और कुमुद.....

सोचता हूँ, तुलना करता हूँ और उतना ही उलझता जाता हूँ। कितनों से ही सुनता आया हूँ कि नारी और पुरुष दोनों ही एक दूसरे के लिये समस्या ही हैं। वैसे नारी तत्त्वज्ञान का विवेचन तो मैं नहीं किया करता था। किंतु निसा के बाद कुमुद से मिलकर निसा अवश्य मेरे मन में एक प्रश्नवाचक चिन्ह बन बैठी थी।

दिल्ली में मैंने मुगलों के अन्तिम प्रहर के ढलते सूर्य को देखा था, और उसमें पाया था निसा को। उसका जीवन स्वयं कविता था। उसने जीवन में बहुत कुछ देखा था। उसकी उम्र मुझसे कुछ माह अधिक ही थी। वह जहाँआरा के संसर्ग में रही थी। उसका मानसिक विकास जहाँआरा की पाठशाला में हुआ था। अपनी आँखों के सामने उसने अपने चचेरे भाइयों, चाचा तथा अन्य सगे-सम्बन्धियों को मरते देखा था और यह किया था स्वयं उसके बाप औरंगजेब ने।.....

अपने चाचा दाराशिकोह को जब उसने काला मुँह कर गधे पर बैठ दिल्ली की सड़कों से गुजरते देखा तो उसकी आत्मा चीख उठी थी। वह खुल कर रो उठी थी। लेकिन उसका दर्द बढ़ता ही गया और आँसुओं ने सूखकर उसके चेहरे पर एक भीषण

उदासी का रूप ले लिया । आठ साल तक आगरे के किले में जब उसने जहाँआरा के साथ अपने दादा शाहजहाँ के आँसू थामे थे, शाहजहाँ निशा की गोद में बच्चों की तरह सिर रख रो पड़ता था । उसका सौंदर्य.....उसका यौवन बिना प्यास बुझाए एक अत्यन्त गभीर स्वरूप धारण कर बैठा था ।

कुमुद.....

अबोध अल्हड़ यौवन के क्षणों में उसने देखा ही क्या था ? मन्दिर के पास ही उस सगमरमर के श्वेत भवन में उसका निवास था । आश्रम का सारा भार एक प्रौढ़ ब्रह्मचारी शिष्य पर था । वह शांत, धीर गम्भीर पुरुष था । सन्तोषी जीव था । आश्रम में अन्य सेवक भी थे । लोग उसे राघव महाराज कहा करते थे । एक तरह से कुमुद का वह संरक्षक था किंतु वह कुमुद को बहुत आदर देता था । वह महाराष्ट्र का ब्राह्मण, कोंकणस्थ था....वह भी चितपावन । कुमुद का सौंदर्य निशा की भाँति उदासी नहीं लिए था । विचारों का तारतम्य टूटा.....

‘शायद कुछ सोच रहे हो ।’ कुमुद ने कहा ।

‘नहीं ।’

‘झूठ मत बोलो....यात्रा के संस्मरण सुनाये नहीं ।’

मुझे झुकना ही पड़ा मैंने उसे सब कुछ बताया और निशा का भी परिचय दिया । निशा ने जब उसके सौंदर्य की प्रशंसा की थी तो उस प्रसंग का भी मैंने उल्लेख किया । कुमुद के गाल लाल हो उठे । कानों पर तो ऐसी लाली दौड़ गई जैसे कि किसी ने उन्हें मसल दिया हो । उसने कहा—

‘हृदय....तुम्हारे....’

अपना नाम सुन कर....आप से तुम्हारे....की प्रगति को देख मेरे हृदय की धड़कन बढ़ सी गई । कुछ गंभीर सी होकर कुमुद ने कहा, ‘राजन ! तुम्हारा जीवन अनुरागमय है, अतएव सुखी है ।’

‘जीवन का वास्तविक सुख तो ऋषि मुनि विराग में ही बताते हैं।’

‘भूल है यह।’

‘संसार में इतने उत्थान-पतन देखने के बाद मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि विराग में ही सुख है। जीवन और जगत के प्रति अनुराग बढ़ाने से तो दुख ही बढ़ता है। जीवन से अलग होकर ही सुख प्राप्त होता है।’

‘राजन ! अनुराग की दूसरी अवस्था का नाम ही विराग है। और जहाँ तक जीवन और जगत के प्रति अनुराग का प्रश्न है उसमें दुःख का आना आवश्यक है क्योंकि साथ ही सुख भी तो आता ही है। जीवन और जगत की उपेक्षा तो पलायन हो गया, कायरता हो गई, यदि यही विराग है तो वह भीषण स्वार्थ है। मरने की अपेक्षा अच्छी तरह से जीना बहुत कठिन है। सीधी बात तो यह है कि मनुष्य जिस स्थिति में रहता है उसका ज्ञान उसे बाद में होता है। तुम समझते हो कि मैं सखी हूँ और मैं समझती हूँ कि तुम।’

दर्शन पर तर्क की विवेचना करने में वहाँ नहीं आया था, मैं तो आया था कुमुद से दिल बहलाने। कुमुद ने मेरी ओर देखा। उसके स्वर भारी से हो रहे थे। उसी समय आज्ञा पाकर सागर सिंह आया।

सागरसिंह राजपूत था। उसके बाप दादा मुगल सेनाओं में अच्छे पदों पर रह चुके थे। स्वयं वह शाहजहाँ की सेना में एक अच्छे पद पर था। सामूगढ़ की प्रसिद्ध लड़ाई में वह दाराशिकोह की ओर से मुराद और औरंगजेब की सगठित सेनाओं से लड़ा था। दारा की पराजय के बाद वह विपन्नावस्था में अपने दिन व्यतीत करता रहा। उस समय उसके साथ उसकी पत्नी ही एक मात्र सहारा बनकर रही। जब सागर का जीवन तृप्ति चाहता था तब ही उस पर भयानक प्रहार हुआ। सौंदर्य की इस प्रतिमा सागर की पत्नी ने सागर को हर कदम पर

सहायता दी। भूख, थकावट, गरीबी से चूर उसका शरीर सागर का साथ न दे सका, परिणामस्वरूप सागर पर वज्र गिरा उसकी पत्नी की मृत्यु हो गई।

उस दिन जब मैंने उसे अँधेरी रात में दिल्ली से जसकोट के मार्ग में निर्जन शून्य वन प्रांतर भाग में दीपक जलाते देखा था उस समय वह अपनी पत्नी की समाधि पर ही दीपक जला रहा था।

पत्नी के इस अभाव ने उसे शांत और गंभीर बना दिया था। स्त्रियों से उसे विरक्ति सी हो गई थी। जीवन के शून्य अंश को उसने मदिरा से पूरा किया। वह मदिरा भक्त था यही उसका अपराध था। जीवन की उदासी को इसीसे दूर करता था।

हाँ.....तो उस दिन कुमुद से उसका मैंने परिचय कराया..... सागर ने जैसे कुमुद की ओर देखा ही नहीं उसने कहा—‘राजन ! सुनते हो।’

‘क्या ?’

‘मिर्जा राजा जयसिंह को औरंगजेब ने दक्षिण का सूबेदार बना दिया है। शिवाजी के विरुद्ध वह मोर्चा लेने आ रहा है, दक्षिण की सारी सत्ता उसके हाथ में है।...जसकोट को वह नहीं छोड़ेगा।’

‘सुना तो मैंने भी है...।’

‘उस समय उसका एक-एक किले और एक-एक राज्य पर आक्रमण होगा। शिवाजी का तो बहाना है वास्तव में तो उसे आलमगीर की दक्षिण विजय की महत्वाकांक्षा को पूरा करना है।’

कुमुद ने कहा ‘जसकोट की विजयश्री को कोई नहीं छीन सकता।’

‘यह कैसे ?’ सागर ने पूछा।

‘जसकोट की कुलदेवी उसकी रक्षा करती है।’ सागर सुनकर व्यंगात्मक रूप में हँस पड़ा। कुमुद हतप्रभ सी हुई। मैंने इस बात को महसूस किया, सागर ने कहा ‘इन देवी देवताओं ने ही भारत की रक्षा

की होती तो यवन उसे पदाक्रांत न करते ।'

‘मेरा आशय जसकोट से है ।’

‘जसकोट भारत के बाहर नहीं है ।’

कुमुद ने सागर को ऊपर से नीचे तक देखा और फिर मेरी ओर देख कर व्यंगात्मक रूप से हँस उठी । परिस्थिति की गंभीरता को समझकर मैंने इस बात का विषय ही बदल दिया क्योंकि कुमुद और सागर दोनों की ही मुझे आवश्यकता थी । उसके पश्चात् सागर साहित में चला आया ।

उस दिन भोज के लिए कुमुद को मैंने राजमहल में आमन्त्रित किया था । भोज के पश्चात् महल के पार्श्व भाग में हम बैठे थे । सामने ही सरोवर का जल लहरा रहा था । पतझड़ का मौसम था । रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त ही हुआ था । चाँदनी का समस्त शृंगार समेटकर रात्रि हँस रही थी । भाड़ों के सूखे पत्ते हवा से संगमरमर के फर्श पर आ रहे थे । दो एक पत्ते मेरे पैरों से टकराकर रुक गए । मैंने उन्हें देखा । उनके पीलेपन को देखता रहा...बाहर उनके उड़ने की खड़-खड़ आवाज को सुनता रहा । ‘कुमुद, वैराग्य में भी एक अजीब सी शांति है ।’

‘शांति.....! हाँ होती है किंतु ऐसी कि जिसे देख अकर्मण्यता भी सिर धुनती है ।’

‘आखिर वह भी तो साधना ही है ।’

‘साधना.....वैराग्य आदि समस्त नीरस चीजें हैं । यह सब कुछ धर्म के लिए किया जाता है और धर्म का अर्थ है कर्तव्य । वैराग्य के नाम से संसार की इतनी भारी उपेक्षा...आखिर क्यों...सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए ही न...क्या वह जीवन है । नरक की भयानक यातनाएँ भी शायद उससे अच्छी हैं ।’

‘हाँ.....कुछ ऐसा ही है ।’ मैंने एक गहरी साँस लेकर कहा ।

‘अपने ही कार्य को ईमानदारी से एवं अत्युत्तम रूप से करना किसी पूजा या तपस्या से कम नहीं ।’

कुमुद में आज मुझे ऐसी नारी के दर्शन हुये जिसकी जीवन और जगत के प्रति गहरी आस्था थी ।

इस स्त्री का अध्ययन गंभीर था । उपहार ग्रहण करने के अतिरिक्त अध्ययन और मनन करने के सिवाय उसने किया ही क्या था ? उसने मेरी ओर देखा, उस पर आत्मीयता के भाव थे । आज वह मेरे काफी निकट थी.....।

मैं ठिठका...निसा का स्मरण हो आया ।...फिर भी कुमुद को समझने में असमर्थ था...कुछ ऐसा ही । इस रमणी में जो प्रभुत्व की भावना थी उससे मेरा ममत्व चोट खाकर आहत हो उठता था । आज पहली दफा वह मेरे महल में आई थी । दिल्ली से आने के पश्चात उससे कुछ आत्मीयता सी हो गई थी । उसने पूछा—

‘विराग का विचार आज कैसे उठा था ?’

‘वैराग्य’...उस सूखे पत्ते ने इस प्रश्न को पैदा किया था ।’

‘वैराग्य का आशय है पलायन ।’

उसके बाद कुमुद चली गई, किन्तु मैं उसके काफी निकट आ चुका था । उसके पीछे समुदाय का आदर था, अतएव उसकी ओर बढ़ने से मैं जंसे झिझकता था । समय नाजुक था, भय था कि कहीं लोग न नाराज हो उठें । सारा दक्षिण मराठों और मुगलों की सेनाओं द्वारा रौंदा जा रहा था । ऐसे भीषण समय में मैंने अपने राज्य में अमन चैन रखा था । उस समय सैनिक का अर्थ था डाकू या अत्याचारी । इस सैनिक वृत्ति के सिवाय लोगों के पास जीविका का कोई साधन भी न था । इसी समय जयसिंह के नेतृत्व में औरंगजेब के आक्रमण प्रारंभ होने वाले थे । मैं एक क्षण को विचलित हो उठा । राज्य की स्थिति पर विचार करते-करते मस्तक भारी हो गया ।

*

*

*

शिवाजी के पास मैंने राजदूत भेजा किन्तु कुछ परिणाम न निकला, स्वयं उसकी सलतनत खतरे में थी । स्पष्ट था कि यदि जसकोट पर

आक्रमण हुआ तो सामना अकेले ही करना होगा। राज्य के मंत्रियों और सामंतों को बुलाकर मैंने काफी विचार विनिमय किया परन्तु बाहर से किसी प्रकार की सहायता की आशा करना व्यर्थ सा ही रहा। बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्य अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने में लगे हुए थे। दोनों ही राज्यों के शासक सिया थे और औरंगजेब कट्टर सुन्नी था। वह छोड़ने वाला तो नहीं था किसी न किसी बहाने वह दोनों राज्यों को आत्मसात कर जाना चाहता था।

चिंतापूर्ण समाचार रोज मुझे मिल रहे थे। जसकोट के गुप्तचर अपने कार्य में व्यस्त थे। वह समय मेरे लिए काफी चिंताजनक रहता था। चिंता की गहरी रेखाओं में मैं उलझा रहता था। कमलनाल में जैसे किसी का पैर उलझ कर सुलझ नहीं सकता। वही हाल मेरा था। जसकोट के भविष्य का भग्न स्वरूप मेरे समक्ष एक बार उपस्थित सा हो जाता। मैं सिहर सा उठता। मानस तरंगों पर घात-प्रतिघात होते रहते.....दिखता कि शाही फौजें पीछे हट रही हैं और जसकोट की विजय हो रही है।

उसके विपरीत ही दूसरा चित्र खिंच भी जाता, उत्पीड़न, शोषण प्रत्यावर्तन के बीच मैं यह देखता कि जसकोट की स्वतंत्रता श्मशानवत् हो रही है, जसकोट की कला के नमूने धूलि-धूसरित हो रहे हैं। जसकोट की वह कला जिसे देखकर मनुष्यों पर भी अविश्वास हो जाता था आज जलती सी दिखाई पड़ती थी। सागर ने मेरे विचार को भंग किया।

‘राजन् आज अस्वस्थ हैं कुछ?’ सागर ने कहा

‘नहीं.....किन्तु जसकोट के भविष्य का स्मरण आते ही मौन हो जाना पड़ता है। कहाँ शाही फौजें और कहाँ हमारे सिर्फ २०-२२ हजार सैनिक’ मैं एक गहरी साँस लेकर सागर की ओर देखने लगा। उसने मुस्करा कर जैसे मेरा वजन हल्का करते हुए कहा ‘राजन्, चींटी हाथी को मार देती है फिर हम तो चींटियों से बढ़ कर हैं।’ मुझे हंसी आ

गई । मैंने कहा, 'सागर चींटियों को हाथी पूरी तरह से मार तो सकता नहीं किन्तु बुरी तरह से अवश्य कुचल देता है । जसकोट की भी यही दशा है ।'

'राजन्, इसका क्या आशय कि जसकोट अपना सिर टेक दे ? नहीं यह नहीं होगा ।'

'हम सिर तो टेकेंगे नहीं, अंतिम सांस तक लड़ेंगे, फिर भी कुछ कहा नहीं जा सकता ।' रुक कर मैंने फिर कहा, 'कुमुद को भी तो विजयश्री की पूर्ण आशा है ।'

'कुमुद और उसकी देवी' सागर ठहाका मार कर हंस पड़ा, उसने कहा, 'राजन् जसकोट की रक्षा तो खून देकर करनी होगी ।' रहा कुमुद का प्रश्न.....धृष्टता क्षमा हो तो सिर्फ इतना ही कहूँगा कि कुमुद आपके सर्वथा योग्य है । इससे अधिक उसका महत्व नहीं । व्यर्थ ही लोगों ने बकवास लगा रखी है ।'

'सागर तुमने उस महर्षि का प्रताप नहीं देखा जिसकी कि वह पुत्री है । जब तक वे जीवित रहे जसकोट के प्रति उनके समस्त वचन सत्य रहे।'।'

'...था' और 'है' में अंतर है राजन् ।'

कुछ देर सोचने के बाद मैंने कहा, 'सागर युद्ध टल जाए तो ठीक होगा । मैं नहीं चाहता कि व्यर्थ ही युद्ध हो और धन-जन की हानि हो । यह युद्ध.....भयानक युद्ध धन और जन की हानि के पश्चात अपनी स्मृति के रूप में निरीह बच्चों और विधवाओं का क्रन्दन ही छोड़ जाएगा । हमारी भले ही विजय हो किन्तु ध्वंस के बाद क्या शेष रहेगा ? ये कला के नमूने कहाँ जाएँगे ? उसकी भव्य कलात्मकता का क्या होगा ? मैं नहीं चाहता कि जसकोट के वे भवन जिनको देखकर ईर्ष्या भी हाथ मलती है भग्न खंडहरों के रूप में अपनी कहानी सुनाएँ सागर यह विजय और पराजय.....का खेल कैसा.....? कोई रास्ता ढूँढ़ो.....जिससे कि यह युद्ध टल जाय ।' इसके बाद

ही मेरा चेहरा विवर्ण सा हो गया ।

सागर ने कहा, 'राजन् युद्ध ही एक मात्र उपाय है । वही हमारी स्वतंत्रता का एक मात्र रक्षक है । पराधीन होने की अपेक्षा जसकोट को शमशान बना देना ही अच्छा है । एक-एक सैनिक को अपना सिर दे देना होगा । हमारा अस्तित्व चाहे इतिहास के पन्नों में ही मिट जाए परन्तु हम पराधीन नहीं रहेंगे । हम युद्ध करेंगे भले ही मारे क्यों न जाएँ । हमारा जीवन होगा सम्मान से पूरा । उस सम्मान की जीते जी रक्षा न कर सके तो मर कर करेंगे ।' सागर मौन हो गया । मुझे अब तक ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कि मृत्यु के स्वर सुन रहा हूँ । उहका चेहरा लाल हो उठा था, और हत्की सी सिहरन भी उसके शरीर में थी ।

'सागर युद्धों से आँखों में आँसू तो आए हैं परन्तु कितने ओठों पर मुस्कान आई है ?'

'राजन् ! सागर पराधीन रह कर हँसने की अपेक्षा स्वाधीन होकर रोना ही पसंद करेगा । वह मुस्कान कैसी जिसमें पराधीनता का अभिशाप छिपा हो ! वह मुस्कान कैसी जो अपने अधिकारों की रक्षा करने में समर्थ नहीं ! इससे तो वो आँसू लाख-लाख दर्ज अच्छे हैं जिनमें स्वतंत्रता की रक्षा करने की ताकत है ।' इसके बाद सागर पागलों की तरह मेरी ओर देखने लगा । मैंने सागर को पैनी दृष्टि से देखते हुए कहा, 'कोई उपाय निकालना ही होगा जिससे हमारी स्वतंत्रता भी बनी रहे और यह युद्ध भी टल जाए ।'

'उपाय ? राजन्, ईंट का जवाब पत्थर से देना होगा । हमारा खीलता खून आज भी सो नहीं गया है ।' मैंने अपने शब्दों पर जोर देते हुए कहा, 'सागर उतावनी मत करो कुछ सोच समझकर जवाब दो ।'

'सागर ने हर बात का उत्तर सोच समझकर ही दिया है ।'

'राजन्, सिवाय युद्ध के और कोई राह नहीं है । यह बात दूसरी है कि हमें यह सोचना होगा कि युद्ध किस ढंग से किया जाए जिससे

कम से कम हानि हो और विजय हो । यदि पराजय भी हो तो कम से कम भविष्य के लिए हम अपने आपको सुरक्षित रख सकें ताकि मौका आने पर पुनः लड़ाई कर अपनी विजय श्री को हासिल कर लें ।’

मैंने कहा, ‘खैर युद्ध तो करना ही है किन्तु उससे पहले कुछ न कुछ हो सके तो ठीक होगा ।’ सागर मौन था । मैंने फिर कहा ‘सन्धि करना ही ठीक होगा । बादशाह शायद मान जाए ।’

‘सन्धि.....जीवन और मृत्यु की सन्धि कैसी ? राजन् आपको यह सरासर भूल है । बादशाह क्रूरता और नृशंसता का अवतार है । मृत्यु से सन्धि करने का उपयुक्त स्थल रणक्षेत्र ही है । औरंगजेब के वागज पत्रों से सन्धि नहीं हो सकती ।’

‘खैर, कोशिश करके देखने में कोई हर्ज नहीं । मैं राजदूत भेजने का प्रस्ताव दरबार में रखता हूँ ।’

‘व्यर्थ है...मैंने औरंगजेब को पास से देखा है और मेरा अवलोकन यही उत्तर देता है कि इन तरह के सभी प्रयत्न व्यर्थ हैं ।’

‘तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है सागर ! अपनी ही चलाये जा रहे हो । जो बात मैं कहता हूँ उस पर सोचने की भी तुमको फुर्सत नहीं ।’

सुनकर सागर सहम-सा गया । कुछ गम्भीर हो गया । उसने कहा, ‘राजन् ! आप अपना रास्ता अपनाइये...मैं अपना रास्ता अपनाता हूँ । मेरा रास्ता होगा अपना । उसका राही मैं अकेला हो रहूँगा । मेरे और आपके उद्देश्य एक होंगे ; लेकिन रास्ते बिल्कुल एक-दूसरे के विरोधी ।’

‘मैं समझा नहीं ।’

‘समझने का प्रयत्न भी मत कीजिए ।’

‘पहेलियाँ क्या बुझा रहे हो ? स्पष्ट क्यों नहीं कहते ?’

‘यह तो समय ही बतायेगा, मुझ में इतना साहस कहाँ ?’

‘सागर ! तुमसे यदि मुझे कहीं बिड़ है तो इन्हीं बातों से । न तो

तुमको समय देखने की फुरसत होती है न स्थल । उस दिन कुमुद का मजाक उड़ाने लगे और इस मौके पर जबकि मैं तुम्हारी सलाह माँगता हूँ तो तुम अपनी ही चला रहे हो ।’

‘राजन् ! घृष्टता क्षमा हो ; लेकिन सागर साफ और सच कहना जानता है । दुनिया में उसका है भी कौन जिसके लिए वह ढोंग, बनावट, झूठ, फरेब आदि किया करे ।’

सागर के अकेलेपन ने मुझे गम्भीर बना दिया । मैंने नरम हो कर कहा, ‘सागर ऐसी बातें मत करो । क्या मैं तुम्हारा कोई नहीं ।’

‘आप मेरे सब कुछ हैं लेकिन फिर भी मैं अकेला हूँ । मैं आपके लिए जान दे सकता हूँ लेकिन मेरे लिए कौन अपनी जान देने को तैयार है ।’

‘मरने का आशय जीना नहीं होता राजन् !’

‘सागर ! सामान्य विषय को व्यक्तिगत बना कर मुझे समझ नहीं आता कि तुम्हारा आखिर क्या लाभ होता है । व्यर्थ की चिंताओं में उलझते हो । यह कोरी भावुकता है !’

इसके बाद सागर मुड़ा और तीर की भाँति निकल गया ।

मुझे क्रोध तो आ गया पर चुप रहा । और कोई समय होता तो मैं उसे घृष्टता के लिए दण्ड देता किंतु वक्त नाजुस्त था । युद्ध में उससे काफी काम था । वह चला तो गया किंतु मेरे मस्तिष्क में वह एक अजीब उलझन पैदा कर गया । आखिर मैं सोच नहीं सका कि उसका ‘व्यक्तिगत उपाय’ क्या हो सकता है ? कभी-कभी तो सागर पर सिर्फ मुझे इसलिए ही क्रोध आ जाता कि वह ऐसी समस्या या पहेली का रूप धारण कर लेता जो उलझ कर भी नहीं सुलझती थी और सुलझ कर भी उलझ जाती थी ।

मुझे कुमुद का ख्याल हो आया कि युद्ध में उसका क्या होगा ?

*

*

*

उस दिन मैं सामन्तों के दल के साथ नगर से जा रहा था । नगर

उजड़ रहा था । लोग देहातों की ओर या जंगलों की ओर जा रहे थे । कुछ दुर्ग में आने की तैयारी कर रहे थे । जगह-जगह सैनिकों का जमाव हो रहा था । स्थल-स्थल पर सैनिक चौकियों का आयोजन किया जा रहा था ।

यह तो स्पष्ट हो चुका था कि जयसिंह ने शाही फौजों के साथ दक्षिण रौंदना आरम्भ कर दिया है । शिवाजी ने कितने ही सीमांत किले खाली कर अपने आपको पुरन्दर के किले में चुने हुए सैनिकों के साथ बन्द कर लिया । शिवाजी की हार के रोज नये समाचार आ रहे थे । पुरन्दर के किले पर जयसिंह ने अपनी सारी ताकत बटोर कर चढ़ाई की थी । पुरन्दर का दुर्ग दक्षिण में एक अत्यन्त दुर्गम गढ़ माना जाता था । जब इसकी दीवारें जयसिंह की तोपों के समक्ष जवाब दे रही थीं तो भला मेरी क्या हस्ती हो सकती थी ।

किसी बात की परवाह न करते हुए मैंने गढ़ की बाहरी चहार-दीवारी को मजबूत करवाया । तोपों की नये सिरे से मरम्मत हुई । दो नई तोपें पूर्वी दरवाजे पर लगवाईं क्योंकि वहाँ से मार का क्षेत्र अच्छा पड़ता था, जगह साफ थी । शत्रु के आने में ज्यादा कठिनाई नहीं थी । जितनी शीघ्रता से वहाँ से शत्रु आ सकता था उतनी शीघ्रता से मार भी खा सकता था । बाहर हार जाने के बाद गढ़ ही में रहकर मुगल सेनाओं का सामना किया जा सकता था ।

‘राजन ! जानते हो जीवन कहाँ है ?’ यह प्रश्न सागर का था । जैसे मक्खन में छुरी घुस जाती है वैसे ही प्रतिक्रिया इस प्रश्न से मुझ पर हुई । यह प्रश्न अप्रत्याशित रूप से मेरे समक्ष आया । अपने क्रोध को दबाते हुए सागर से मैंने कहा, ‘मृत्यु सिर पर खड़ी है और एक तुम हो कि यह ढूँढने में व्यस्त हो कि जीवन कहाँ है ?’

‘राजन् ! मृत्यु में ही जीवन है ।’

‘यह कैसा विरोधाभास ?’

‘यही तो सागर बताएगा कि मृत्यु में कैसा जीवन होता है ?’

मैंने कहा, ‘सागर ! जयसिंह की तोपों के समक्ष एक के बाद एक गढ़ अपना सिर टेकते जा रहे हैं । जसकोट का भविष्य अन्धकार बनकर एक प्रश्नवाचक चिह्न बन चुका है । जसकोट के सैनिक न जाने क्या कर सकेंगे ? और तुम हँसते हो...आखिर किस पर और क्यों ? किसके भाग्य पर ?’

‘राजन् ! जसकोट के भविष्य का उपहास करने की घृष्टता भला आपका नमक खा कर मैं क्यों करूँगा ? जसकोट के सैनिकों ने यदि मृत्यु को वरण किया तो संसार की कोई शक्ति उन्हें रोक नहीं सकती । विजय उनकी है भले आज हो या कल ।’

‘सागर ! वृक्षों के पास किले में मैंने बारूद बनवाने की व्यवस्था की है ।’

‘ठीक है...दुर्ग का वह मध्यस्थ भाग है...शत्रु के गोले वहाँ तक नहीं आ सकेंगे ।’

‘कुमुद का क्या होगा ?’

‘यदि उसकी देवी सारे राज्य को बचा सकती है तो क्या स्वयं उसे न बचा सकेगी ?’

‘सागर, तुम उपहास करते हो...उस अज्ञात शक्ति का तुमको पता नहीं ।’

‘अज्ञात शक्ति पर कैसा विश्वास राजन् ? वास्तविकता से पराजित हो कर ही मनुष्य परोक्ष की शरण लेता है । मेरी शक्ति मुझमें है । जसकोट की शक्ति उसके सैनिकों में है । फिर आप किस पर विश्वास करते हैं ?’

‘कुमुद पर मुझे पूर्ण विश्वास है ।’

‘ऐसे मौके पर तो ईश्वर पर भी विश्वास करना भ्रम है । राजन् ! जिस दिन मनुष्य के भाग्य का निर्माण हुआ उसी दिन अपने भाग्य का निर्माता भी वह स्वयं बन गया । मनुष्य के सुखों या दुखों में परमेश्वर

का हाथ नहीं । मनुष्य स्वयं परिस्थितियों का निर्माण कर उसमें हँसता-रोता है ।’

‘सागर, प्रत्यक्ष के अतिरिक्त परोक्ष भी कुछ है ।’

‘मानता हूँ ।... किंतु वह प्रत्यक्ष के लिए ही है । राजन् ! पराजय पहले नहीं आती । उससे पहले आती है कमजोरी ! पराजय तो कमजोरी के बाद आती है ... फिर इस कमजोरी को पास भी क्यों फटकने दिया जाय ?’

‘सागर, युद्ध...’

सागर ने बात काट कर कहा—‘राजन् ! आखिर किया भी क्या जाय ; युद्ध के सिवाय कोई चारा भी तो नहीं । हम युद्धों के परिणामों को देखना नहीं चाहते, परन्तु स्वयं मनुष्य जाति ने उसे अपने हाथ से ही अपने ललाट पर लिखा है उससे छुटकारा कहाँ ?’

‘चाहता हूँ कोई चाल निकल आए जिससे इस अत्याचारी से बचाव हो सके ।’

‘राजन् ! यदि आपकी स्वतन्त्रता में अत्याचार और स्वाभिमान में निर्लज्जता नहीं है तो भला आप पर कौन अत्याचार कर सकता है ?’

‘सागर, मुझे अपनी चिंता नहीं है न ही जान पर खेल जाने वाले सैनिकों की, किंतु इस निरीह प्रजा ने भला क्या अपराध किया है कि परमात्मा उन्हें यह उत्पीड़न, शोषण और अत्याचार देने पर तुला है ।’

‘राजन् ! यही उसका न्याय है । संसार में कोई आता है, कोई जाता है । कौन किसको भला रोक सका है ? दो दिन हम हँस खेल कर दिन गुजार लेते हैं ‘यही क्या थोड़ा है ! युद्ध को आना ही है तो आये । चिंता करने से लाभ क्या ? इस चिंता को आप पर किसी ने लादा तो नहीं ।’

‘मेरी चिंता की तुम्हें क्या ?’

‘राजन् आप भी कैसी बातें करते हैं ? आप क्या सोचते हैं कि

जसकोट आग की लपटों में जले और मेरे लिए वह दीवाली हो ?
आपकी चिंता को दूर करने के लिए तो मुझे चिंता करनी ही होगी ।’

सागर चला गया । पानी पर जब जहाज चलता है तो उसके पीछे पीछे भी एक मार्ग-सा बनता चलता है । वह जहाज के आगे बढ़ते ही मिटता जाता है । सागर के जाते ही विचारों का ऐसा ही एक मार्ग बना और विलुप्त हो गया ।

*

*

*

अनेक उपायों के बावजूद स्पष्ट हो गया कि युद्ध होगा ही । अब प्रश्न युद्ध करने या न करने का नहीं था । प्रश्न था कि युद्ध किस ढंग से किया जाय जिससे सैनिक शक्ति का अधिक ह्रास न हो । यदि परा-जय हो भी तो सैनिक शक्ति न मिट जाय ।

सागर ने अन्य सामन्तों की सलाह से मेरे समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि युद्ध से पहले नृत्य-गान का एक आयोजन हो जिसमें जसकोट के कलाविद् तो अपनी कला का प्रदर्शन करें ही । युद्ध के बाद क्या मालूम क्या होगा ? कौन बचेगा कौन मरेगा, अतएव एक बार मिल कर हँस-खेल लिया जाय कुछ क्षणों के लिए अपने आपको भुला दिया जाय ।

मैंने कहा, ‘सागर ! इस समय में नृत्य गान क्या कहता है ?’

‘राजन् ! कुछ क्षणों के लिए हम अपने आपको भुला सकें तो बुरा नहीं होगा ।’ एक सामन्त ने कहा ।

‘प्रजा पर विपत्ति के पहाड़ टूट रहे हैं ऐसे समय में हमारे इस उत्सव का प्रजा पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? लोग क्या कहेंगे ?’

‘लोगों की बात जाने दीजिए, राजन् उनको अपने जीवन की पड़ी है इसलिए मृत्यु का भय है । हम जिंदगी के लिए छिपने जा नहीं रहे । मौत को आगे रख कर युद्ध कर रहे हैं । हमारे लिए कहाँ का दुःख ?’

उसी सामन्त ने कहा, 'राजन् ! लोगों का कहना मानकर तो राम को सीता का परित्याग भी करना पड़ा था ।'

'युद्ध और यह नृत्यगान...यह विरोधाभास मेरी समझ में नहीं आता ।' मैंने कहा ।

'राजन् ! इस उत्सव से हमारा आशय प्रजा के भाग्य की हँसी करना कदापि नहीं है । यह हमारा अपना पूरा पूरा हक है कि हम अपनी आत्मा को संगीत से भर दें । न बने तो बेसुरी आवाजें ही निकालें । जहाँ लाठी होगी वहाँ वंशी भी होगी—जहाँ रोटो होगी वहाँ कमल भी होगा ।' पहले सामन्त ने कहा ।

और अब सागर ने अपना चोला मेरी ओर हाथी की तरह धुमाया प्रतीत होता था कि जैसे वह अभी तक किसी विचार या चिन्ता में व्यस्त है । उसने कहा, 'राजन् ! जानता हूँ कि समय कैसा है ? उस दिन मृत्यु का संगीत होगा । संगीत की स्वर लहरी में प्रलय घोष सुनाई देगा । राजमहल की असंख्य जगमगाती दीपशिखाओं पर मृत्यु का नृत्य होगा ।...विभावरी भी कपिगी । प्रकृति के जहाँ एक ओर निकृष्टतम रूप दृष्टिगत होते हैं वहाँ फूलों ही ने तो उन्हें सुन्दर बनाया है । मधुमक्खियों ने अपने शुष्क जीवन में शहद से ही तो मधुरता का सूत्रपात किया है ।'

राजमहल में संगीत समारोह का आयोजन हुआ । रात्रि का द्वितीय प्रहर प्रारम्भ हो चुका था । असंख्य दीपशिखाओं से महल आलोकित हो रहा था । महल के पार्श्व भाग में ही सरोवर था । उस सरोवर में महल का स्वर्गिक प्रतिबिम्ब पड़ रहा था । यह विराट आयोजन मैंने अपनी इच्छा से नहीं, अपने लिए नहीं बल्कि सामन्तों की इच्छा से उनके लिए किया था । मेरे मन में अनेकों उलझनें थीं ।

दीवाने आम में सभा सजी थी । समस्त दरबारी उपस्थित थे । प्रतिष्ठित नागरिकों ने भी सभा में भाग लिया था । वीणा की धुन पर संगीत प्रारम्भ हुआ पहले-पहल तो तबले के सम पर धीरे-धीरे ध्रुपद

की लय उठी । सहसा वीणावादक की अँगुलियाँ विद्युत् की तरह अपना कार्य करने लगीं ।

सागर तो खो सा गया । सागर की आँखों में उस दिन स्पष्ट मृत्यु का आभास था । उसकी चमकती आँखों में उस दिन स्पष्ट मृत्यु का हास दिखा । सागर के लिए शायद यह एक ऐसा अवसर था जबकि उसकी चेतना को आनन्द मग्न होने का बहुत दिनों के बाद अवसर प्राप्त हुआ था । उसने मेरी ओर मुड़कर कहा, 'राजन् ! जिस तरह अन्दर जगमगाहट है और बाहर अँधेरा संभवतः उसी तरह जसकोट का भविष्य है ।' उसने मदिरा पी रखी थी । अन्य सामान्त तो नृत्यबाला से मदिरा लेकर पीते । वह कोने ही में पड़ा अपने हाथ से ही सुराही उँडेलता और पीकर मस्त हो जाता । नृत्यबाला ने जब दो एक बार उसकी ओर मदिरा देने के लिए हाथ बढ़ाया तो उसने अस्वीकार कर दिया ।

गीत की मधुर ध्वनि उठी—गीत का भाव था:—

'देव मुझे शरण चाहिए ।' विशाल वृक्ष से सरिता ने कहा ।

'कैसी शरण ?' विशाल वृक्ष ने कहा ।

'मुझे अपने चरणों के पास से बहने की आज्ञा दीजिए ।' सरिता ने कहा ।

विशाल वट वृक्ष ने सरिता को अपने चरणों के पास से बहने की आज्ञा दे दी ।

थोड़े दिनों बाद—

सरिता वृक्ष की जड़ों की सब मिट्टी बहाकर ले गई और वृक्ष सरिता में गिर गया । गिरते-गिरते उस वृक्ष ने देखा कि सरिता एक ऐसे ही अन्य विशाल वृक्ष से शरण माँग रही है ।

गीत सुनकर मैं चौंका । सागर के चेहरे पर भी बल पड़ गए किंतु जैसे थोड़ी देर सोचकर पुनः वह आराम से बैठ गया । मुझे ऐसे लगा

जैसे कि सागर ने गीत पर अवश्य सोचा था और वह सोचकर खिन्न भी हुआ था किंतु फिर भी संभल कर आराम से बैठ गया ।

संगीत के सम पर नृत्य हो रहा था । नर्तकी का सौंदर्य और उसकी नृत्यकला एक दूसरे से मिल से गए थे । रात्रि का तृतीय प्रहर बीता । बाहर गजर सुनाई दिया । एक ऊँची आसन्दी पर मैं बैठा था । सागर ने मदिरा का पात्र मेरी ओर बढ़ाया मैंने अस्वीकार कर दिया । वीणा वादक पागल सा हुआ जा रहा था । धुन धीरे-धीरे उठ रही थी... । ध्रुपद की । सब मस्त थे । कोई ऊँघ रहा था ।

इतने ही में प्रहरी ने सूचना दी कि अतिथिगृह में कोई स्त्री मुझसे मिलना चाहती है । मुझे आश्चर्य हुआ किंतु मैं अतिथिगृह की ओर बढ़ा ।

वहाँ दो एक आदमियों के साथ कोई रमणी सुसज्जित पोशाक में खड़ी थी । उसे बैठने का मैंने संकेत दिया । संकेत पाकर उसके अनुचर भी बाहर चले गये । सौंदर्य की उस प्रतिमा ने मुझे देखकर आँखें बन्द कर लीं ।

मैंने उससे आने का कारण पूछा ।

‘आप हैं जसकोट के अधिपति ?’ उसने पूछा ।

‘जी हाँ !’ उसकी धृष्टता पर मुझे क्रोध तो आया किंतु मैं छोटा-सा उत्तर देकर ही चुप रहा ।

‘मुझे शाहजादी जेबुन्निसा ने भेजा है । शायद आप उनसे दिल्ली में मिले थे ।’

‘जी हाँ दिल्ली में उनसे भेंट हुई थी ।’ मेरा सारा क्रोध निसा का नाम सुनकर धुल गया ।

‘आपको स्मरण होगा कि उस समय धरोहर के रूप में रखने को आपने शाहजादी को कुछ दिया था ।’

‘हाँ स्मरण तो है । भला उसे कैसे भूल सकता हूँ ?’

‘बस उसे ही लौटाने आई हूँ । आपने स्वयं शाहजादी से कहा था कि समय पाकर वह वस्तु आपको लौटा दी जाए ।’ यह कह कर उसने अनुचर से वह गठुर अन्दर मंगवाया और मेरे समक्ष रख दिया । यह

वही समस्त सामग्री थी जो निसा को मैंने संरक्षण के लिए दिल्ली से चलते समय दी थी ।

उस रमणी के प्रति मेरे हृदय में श्रद्धा उमड़ आई । मैंने कहा 'आपने उस समय मुझ पर कृपा की जबकि स्वयं जसकोट का भविष्य अन्धकारमय है । ये वस्तुएँ शाहजादी के पास रहतीं तो कोई हानि नहीं थी ।'

'ऐसे समय में भी आपके यहाँ नृत्यगान हो रहा है ?'

'इस नृत्यगान के लिए यदि शांति का समय हम देखने जायेंगे तो शांति मिलेगी ही कहाँ ? सारा दक्षिण तो वर्षों से युद्धों में व्यस्त है ।'

'लेकिन जसकोट के लिए दक्षिण के और हिस्सों से हालत नाजुक है ।'

'हाँ जसकोट की कला अपना अन्तिम प्रदर्शन कर शायद इसके बाद मौन हो जाना चाहती है । ... यह मृत्यु का संगीत ही है ।'

'मृत्यु का संगीत कैसा ?'

'जो हो रहा है ।'

मौन रहने के पश्चात् मैंने उससे पूछा 'आप अपना परिचय दे देतीं तो ठीक होता ।'

'मेरा नाम जयकुमारी है । किंतु लोग जया के नाम से ही पुकारते हैं । निसा के साथ रहती हूँ । वैसे तो मैं मलके आलम जहाँआरा के साथ रही हूँ । उनकी मेहरबानियों की मैं एहसानमन्द हूँ । दोनों की जिंदगी एक दूसरे से मिल चुकी है ।'

'यह कैसे ?'

'दोनों अनाथ हैं, एक दूसरे को पाकर सनाथ हो गई है ।'

सुनकर मैं हँस पड़ा । मौन रहने के बाद उसने कहा 'इजाजत हो तो आपकी फौज के बारे में कुछ कहूँ ।'

'मतलब ?'

‘कुछ बातें हैं जिनका मालूम न होना आपके लिए खतरे से खाली नहीं है । लेकिन इससे पहले कि मैं कुछ कहूँ मैं आपसे आज्ञा ले लेना चाहती हूँ ।’

‘सहर्ष कहो जो कुछ भी कहना है ।’

‘आपके सैनिक ही आपको धोखा दे रहे हैं ।’

‘आपका आग्रह !’

‘आपका एक प्रतिष्ठित सामंत और सागरसिंह शाही फौजों से मिल गए हैं ।’

‘सागरसिंह ?’ मैं चौंक उठा ।

‘हाँ सागरसिंह.....’ उसने अपने शब्दों पर जोर देते हुए कहा ।

‘आपको कैसे पता ?’

‘मैं शाही फौजों के साथ आई हूँ ।’

शाही फौजों के साथ यह रमणी.....सागरसिंह का विद्रोह..... सब बातें मेरे समक्ष एकदम घूम गईं । मैं मतलब नहीं समझ सका..... मैं सिर थामकर बैठ गया । मैंने सागरसिंह को बुला भेजा । उत्तर मिला कि वह समारोह में नहीं है । मेरा क्रोध भड़क उठा । उस रमणी को मैंने धन्यवाद दिया और मिलते रहने को कहा । उसने मुझे स्वयं शाही फौजों के गुप्त भेद बताने का आश्वासन दिया था । थोड़े समय में ही वह आत्मीय हो उठी थी वह शायद इसलिए कि मैं निसा के काफी करीब आ चुका था । और वह जाहाँआरा के समीप थी ।

मैं समारोह की ओर मुड़ा । दरबारी ऊँच रहे थे । नृत्य-वालाएँ मदिरा से चूर बेमुध पड़ी थीं और तथा-कथित प्रतिष्ठित सामंत भी वहाँ न था । वीणा वादक पागल सा हुआ जा रहा था । वीणा पर उसकी अँगुलियाँ एन्द्रजालिक स्वरों को जन्म दे रही थीं । मैं गरज उठा..... ‘बन्द करो यह सब.....’

दरबार में सन्नाटा सा सा छा गया । जो होश में थे वे उठकर मेरा मुँह देखने लगे । मैंने कहा ‘सागर शाही फौज से मिल

गया है ।' तभी एक सामंत धीरे से बोल उठा 'इसीलिए धीरे से खिसक गया ।'

मैंने आज्ञा दी 'अश्व तैयार हों ।'

प्रहरियों ने अभिवादन सहित आज्ञा का पालन किया ।

प्रभात हो रहा था । मेरे मस्तक पर स्वेदकण स्पष्ट थे । जिस आशा और उत्साह के साथ यह समारोह प्रारंभ हुआ था उसी निराशा और निरुत्साह के साथ समाप्त होने लगा । कालिमा की धुँधली चादर संसार पर तनी हुई थी । वीणा वादक पागल की तरह अभी भी अपनी धुन में मस्त था जैसे कुछ हुआ ही न हो । मैंने चिल्लाकर कहा 'गायन बंद करो ।' गायक सहम गया । मैंने फिर कहा 'सभा तो सारी विसर्जित हो गई, तुम किसको अपना गाना सुना रहे हो ।'

'अपने आप को ।'

'बंद करो अपना गायन ।'

नृत्य धूम की गंध मंद पड़ गई थी । नृत्य-बालाएँ थककर चूर हो शांत पड़ी थीं । सारा वातावरण अस्त-व्यस्त था । गायक ने अपनी वीणा सम्हाली । ऐंद्रजालिक । स्वरो को जन्म देने वाली उसकी अंगुलियाँ शांत हो गई थीं । सुवासित गंध से पूरित वातावरण उसी तरह उड़ गया जैसे कागज का महल गिर जाता है ।

आज्ञा पाते ही अश्व तैयार हो गए । सागर के निवास की ओर मैं सामंतों के एक दल के साथ अग्रसर हुआ । प्रातःकाल के धुँधले प्रकाश को चीरकर हमारे अश्व बढ़े जा रहे थे ।

सागर के निवास पर पहुँचने पर पता लगा कि वह वहाँ पर नहीं है । प्रहरी ने मुझे एक पत्र दिया जो सागर मेरे नाम छोड़ गया था । प्रहरी ने बताया कि सागर उत्तर की ओर घोड़े पर गया है । कुछ अश्वारोहियों को उस ओर भेज मैं वापिस आ गया ।

सागर.....

आखिर विद्रोह उसने किया ही, वह शाही फौजों का नमक खाकर

ही बड़ा हुआ था । उनसे मिल गया तो कौनसी नई बात हुई । संसार में जिस पर दया करो खतरे की आशंका वहीं से होती है । मैंने गहरी साँस ली परिस्थिति साफ-साफ उत्तर माँग रही थी । आज मुझे संसार का साफ-साफ पता लगा । जो सागर मेरे साथ आत्मीय होकर मेरी ही तरफ की बातें करता था उसने मुझसे मुंह मोड़ने में कोई कसर नहीं उठा रखी । स्थिति कमजोर होने से कौन नहीं फायदा उठाता ? पुनः मुझे रमणी का स्मरण हो आया.....

सागर का पत्र मैंने खोला.....पत्र इस प्रकार था :-

श्रद्धेय राजन्,

मैंने विद्रोह किया है । मैं शाही फौजों से मिल चुका हूँ । मेरे साथ एक सामंत भी है सामंत का अवश्य मुझे खेद है । अपना नहीं । मेरी आत्मा कहती है कि जसकोट की विजयश्री अमर है । मेरे विद्रोह से आप क्रोध प्रकट कर अपने सामंत और मुझे गाली दें यह मेरी प्रगाढ़ अभिलाषा है । इससे सबको अच्छी तरह पता लग जाए कि सागर बागी है, उसके जाने से जसकोट का भविष्य अधिक सुरक्षित होगा । मुझे दो वस्तुओं की आवश्यकता है एक मदिरा दूसरी जसकोट की विजय श्री । आप डटकर युद्ध कीजिए मेरी यही प्रगाढ़ इच्छा है लेकिन अब तो मैं शाही फौज का एक सैनिक हूँ ।

आपका ही

सागर

पत्र पढ़कर मेरा खून खौल उठा । पत्र में ही अच्छा विरोधाभास था । एक ओर तो लिखता है कि जसकोट की विजयश्री अमर है, दूसरी ओर अपने को शाही फौज का सैनिक बताता है । पत्र रख कर मैंने एक गहरी साँस ली । एक के बाद एक कैसी आफतें आती हैं यह इसका पहला उदाहरण था । वेदांत के दर्शन में आज मुझे साकारता दृष्टिगत हो रही थी । संसार क्या है ? इसका आभास आज होने लगा

था । जिस व्यक्ति को विपन्नावस्था में मैंने सहारा दिया । जिसके साथ इतना सद्ब्यहार किया उसीकी यह हालत ? यदि उसे मेरा साथ न देना था तो नहीं देता परन्तु शाही फौज से मिलने का आखिर क्या प्रयोजन था । इस कृतघ्नता से भला वह क्षणिक लाभ उठा कर क्या करेगा ? सोचते सोचते विचार शृंखला टूट गई ।

*

*

*

मिर्जा राजा जयसिंह की चाल सफल हुई । सारा दक्षिण उसके सम्मुख सिर झुकाता चला जा रहा था । उसकी नीति थी साम, दाम दंड और भेद । शाही छत्र के नीचे लाने के लिए वह सारे दक्षिण पर दूट पड़ा था । बीजापुर और गोलकुण्डा के कई राज दरबारियों को उसने रिश्वत देकर अपनी ओर मिलाना प्रारंभ कर दिया था । उसका रण-कौशल भी विख्यात था । शिवाजी ने पुरन्दर के किले में उसके सामने हाथ टेक दिए थे । विवश होकर शिवाजी को संधि के लिए प्रस्तुत होना पड़ा था । पुरन्दर के किले में शिवाजी ने अपने आपको सीमित तो कर लिया किन्तु जयसिंह की तोपों के समक्ष पुरन्दर की दीवारों ने दम तोड़ दिया । मराठे सैनिक जान पर खेल कर लड़े थे किन्तु जिस दिन गढ़ के छठवें दरवाजे पर जयसिंह का कब्जा हो गया और शिवाजी के सर्वोत्तम आठ सौ मराठे सैनिक खेत रहे, उस दिन शिवाजी जैसा योद्धा संधि के लिए प्रस्तुत हो गया । जयसिंह ने कूट नीति से कार्य लिया । शिवाजी दिल्ली जाने को भी तैयार हो गया । बीजापुर और गोलकुण्डा उसकी शक्ति के बाहर थे इसलिए उन पर समय बरबाद न कर वह अन्य छोटे छोटे राज्यों की ओर मुड़ा । जसकोट उसका पहला शिकार था । यहाँ उसने कूटनीति से कार्य लिया और रिश्वत देकर सागर और सामंत को अपनी ओर कर लिया । जयसिंह राजपूत था सागर राजपूत था.....बस फिर क्या था ? सागर भला किसका रास्ता देखता और क्यों ?

सागर को अपनी ओर कर लेने के बाद जयसिंह ने पैगाम भिज-

वाया कि मैं बादशाह की आधीनता स्वीकार कर लूँ। इसी में मेरा भला है। मैंने संधि के लिए लिखा। मैंने स्पष्ट लिखा कि बादशाह से मैं वैसा ही संबंध रखूँगा जैसे एक स्वतंत्र राजा दूसरे स्वतंत्र राजा से रखता है। हाँ आवश्यकता पड़ने पर मैं सैनिक सहायता करने के लिए भी तैयार हूँ। जयसिंह ने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और शाही फौजों के साज जसकोट की ओर कूच करने की सूचना दे दी.....।
युद्ध निश्चित था.....।'

*

*

*

उस रमणी का स्मरण हो आया जिमने आकर समारोह भग कर दिया था। गर्जन के द्रुततालों पर जंसे चपला का क्षणिक नर्तन हो उठता है वैसे ही जया की स्मृति मेरे समक्ष एकबारगी कौंध गई। उस रमणी ने ऐसा समाचार दिया जिसका कि स्वप्न में भी विश्वास न था। जहाँप्रारा के साथ शायद उसे दो बार मैंने देखा था।

दूसरे दिन वह रमणी पुनः मुझसे मिली।

मैंने कहा, 'सागरसिंह ने वास्तव में विद्रोह किया है।'।

इसके बाद वातावरण शांत रहा। मैंने फिर कहा, 'यदि आप अपना सम्पूर्ण परिचय देने का कष्ट करें तो ठीक होगा।'।

उसने उत्तर दिया, 'मेरे पिता का नाम जयनाथ था। शाहजहाँ के दरबार में वह दो हजारी मनसबदार थे। माता की मृत्यु मेरे बचपन में ही हो गई थी। पिताजी का मुझ पर काफी स्नेह था। किंतु जब मैं दस वर्ष की थी उसी समय काबुल की चढ़ाई में उनकी मृत्यु हो गई। बादशाह को मुझसे काफी सहानुभूति थी। जहाँप्रारा का वरदहस्त मुझे उस समय प्राप्त हुआ। शाही हरम में ही मेरा पालन-पोषण हुआ। आगरा के किले में जब औरंगजेब ने शाहजहाँ पर चढ़ाई की थी उस समय मैं आगरा के किले में ही थी। इसके बाद शाहजादी ने एक राजपूत सरदार के साथ मेरा विवाह करा दिया। उन्हीं के साथ मैं यहाँ आई

हूँ ।' इसके बाद लज्जा से उसका मुख आरक्त हो उठा ।

जहाँआरा का नाम सुनते ही मुझे निसा का स्मरण हो आया । सहसा उस स्थल को मैं याद कर उठा जबकि जेबुन्निसा मेरे निश्चन हाथों पर अपना सिर रख कर रोती रही थी । उसी मार्ग से शाहजहाँ का शव ताजमहल ले जाया गया था । मैंने पूछा, 'शाही फौज के साथ आप कैसे आई ? स्त्रियों को आना तो मना है ।'

'मना है..... ? उसने व्यंग से कहा । अमीर उमरावों के साथ तो वेश्याएँ तक आई हैं ।'

'अच्छा !'

'हाँ, अब वह शाही सेना नहीं रह गई । अब तो वह आदिमियों का जमाव मात्र है । दारा से लड़ने के बाद औरंगजेब की सारी शक्ति मिट सी गई है । शाही फौज में अब न तो कोई संगठन है और न कोई नियम ही । महीनों सैनिकों को वेतन ही नहीं मिलता । लेकिन किसी युद्ध में जाने से पहले जयसिंह ६ माह का अग्रिम वेतन सैनिकों को देने का प्रबंध करा देता है । जसकोट की ओर जो सैनिक मुख्य फौजों से आगे भेजे गए हैं उन्हें तो ६ माह का अग्रिम वेतन मिल चुका है ।'

जयसिंह ने मुख्य फौज को रास्ता बताने एवं राह का उचित प्रबंध करने के लिए ही पहले दो हजार सैनिक भेज दिए थे । राज्य की सीमा पर ये पड़े थे । जया उन्हीं सैनिकों के साथ आई थी । स्वयं उसके पति उस आगे भेजी हुई सेना में थे ।

युद्ध की बातें सुनते-सुनते और सोचते-सोचते मैं तो तंग आ गया । विषय बदलते हुए मैंने कहा, 'निसा ने गट्टर आपको कैसे दिया ?'

'शाही फौज दिल्ली से कूच करने की तैयारी कर रही थी । शाहजादी ने सोचा कि फौज के साथ ही यह संपत्ति आपके पास पहुँचा देनी चाहिए । उनका इरादा था कि हर हालत में आपकी चीज आपको मिल जाए । आखिर उनका बोझ हलका करने में उनको मैंने

मदद दी । मेरा प्रस्ताव सुन कर उनका रंग पीला सा पड़ गया, उन्होंने कहा, 'जया तुम यह काम कैसे करोगी ?'

मैंने कहा; 'आप मेरी दुर्बलता देखकर यह बातें कर रही हैं क्योंकि मैं स्त्री हूँ.....कमजोर हूँ.....यही न । आप मेरा विश्वास रखिए ।'

'निसा की तो हँसी फूट पड़ी । उसमें शक छिपा था उसको मैं समझ तो गई लेकिन मैंने उन्हें बताया नहीं । अपने पर मुझे विश्वास था ।'

'इसके बाद मैं शाहजादी के साथ महल के ऊपरी भाग में एक कमरे में गई । उन्होंने एक गठुर आलमारी से निकाल कर मेरे हाथ दिया । उसके बाद अपनी चालाकी और अपने साहस से मैं यहाँ तक आई ।'

'याने आप तलवार की धार पर आई हैं ।'

'तलवार की धार.....स्त्री के प्रेम के सम्मुख वह कुछ नहीं है । प्रेम नामक वस्तु स्त्री का सबसे कीमती धन है । उसके सामने बड़े-बड़े राजा महाराजा और बादशाह तक सिर झुकाते हैं ।' जया के प्रति इस माहम और कार्य के लिए मैंने कृतज्ञता प्रगट की । उसने फिर कहा, 'निसा ने बार-बार मुझमें अनुरोध किया था और उन्हें मैंने पूर्ण आश्वासन भी दिया था । इसके बाद शाहजादी ने स्वर्ण मुद्राओं की एक थैली मेरे हाथ पर लाकर रख दी । मैंने अस्वीकार कर दिया तो उसका गला भर आया । मुझे मजूर करना ही पड़ा । वह उस समय पत्तियों की तरह काँप रही थी ।' निसा की अपने प्रति यह आस्था देख मैं खिल सा गया ।

'निसा के गीले आँसू मैं आज भी नहीं भूल सकी हूँ ।' इसके बाद शाही फौज की उसने काफी बातें बताईं और जाने की आज्ञा चाही ।

'मैं आपको भला कैसे आज्ञा दे सकता हूँ ।'

'यह आप शब्द का अधिकार आप मेरे ही पास रहने दीजिए मेरे लिए इसका प्रयोग मत कीजिए ।'

'क्यों ?'

‘इसका भी भला कोई जवाब है ।’

‘जैसी तुम्हारी इच्छा ।’

‘अब मैं यहाँ न आ सकूँगी ।’

‘क्यों ?’

‘हमारी फौज आपकी सीमा तक आ चुकी है । स्वयं जयसिंह ने इस ओर कूच कर दिया है । इस बात का भेद खुल जाएगा । आवश्यक समाचार किसी न किसी तरह मैं आपके पास भिजवाती रहूँगी ।’

‘जैसी तुम्हारी इच्छा……देखो युद्ध के बाद जीवित रहा तो भेंट होगी ।’

उसका हृदय पिघल गया । उसने कहा ‘ऐसी बातें मत कीजिए ईश्वर सब की रक्षा करता है ।’

इसके बाद वह रमणी दीपशिखाओं के प्रकाश को चीरती हुई अपने डेरे की ओर बढ़ गई । जब तक अंधेरे में कालिमा की काली मूर्ति बनकर वह लीन न हो गई मैं उसे देखता ही रहा । उसका नाम मेरे समक्ष गूँज उठा……दो अक्षरों का नाम…… मुझे आनंद मिश्रित आश्चर्य हुआ । किस तरह दिल्ली से यहाँ तक वह अपना कार्य करने आई । मानसिक इच्छा प्रबल हो तो मनुष्य को कार्य करने से कोई शक्ति रोक नहीं सकती । शरीर से भले ही व्यक्ति दुर्बल हो किन्तु मन से उसे सबल होना चाहिए, उसकी इच्छा शक्ति बलवती होनी चाहिए, मानसिक दुर्बल व्यक्ति ही वास्तव में संसार के सबसे दुर्बल व्यक्ति हैं ।

अपनी जगह से उठ कर मैं घुमने लगा……मैंने मुट्ठियाँ कस ली और उन्हें देखा……शांत होकर पुनः बैठ गया ।

✱

✱

✱

जयसिंह शिवाजी को हराकर दिल्ली लौटने की तैयारी कर रहा था किन्तु जसकोट को पराजित किए बिना जाना तो उसकी शान को जैसे कम करता था । बीजापुर की दीवारें उसके आक्रमणों से काँप रही थीं । रणनीति में वह एक मंजा हुआ आदमी था । एक बार स्वयं बादशाह

की मुझे इतनी चिंता नहीं थी जितनी कि जयसिंह की। यह व्यक्ति अपने जीवन में कभी पराजित नहीं हुआ था। औरंगजेब के दरबार में सिर्फ दो राजपूत राजाओं को ही स्थान मिला था एक था जोधपुर का जसवंतसिंह दूसरा था आमेर का जयसिंह। जयसिंह की योग्यताओं पर मुग्ध होकर ही औरंगजेब मरीखे हिन्दुओं से नफरत करने वाले शासक ने एक हिन्दू को दक्षिण का सूवेदार बनाया था।

दक्षिण की भी उस समय अजीब हालत थी। किसान भूखे मरते थे। साधू और फकीर ऐश करते थे। किसानों के लिए न तो मराठों में ही अंतर था और न मुसलमानों में ही। उनके लिए तो दोनों ही लुटेरे थे। आकाश से सिर उठा कर बातें करने वाले किलों ने औरंगजेब की सेनाओं के समक्ष अपना दम तोड़ दिया था। बीजापुर और गोलकुण्डा के अतिरिक्त एकदम दक्षिण का भाग ही केवल सुरक्षित था।

अकबर का ही खून औरंगजेब में था।

अकबर को हिन्दुओं ने कहा मुसलमान और मुसलमानों ने कहा हिन्दू। किसी ने समझने की कोशिश नहीं की.....आखिर वह कौन था। उसने यह सब क्यों किया? क्या उसे किसी पागल कुत्ते ने काटा था? पर भला सोचने की किसको फुरसत? कोई समझ न सका कि वह वास्तविक रूप में मनुष्य था और उसका खून लेकर ही औरंगजेब आखिर क्या कर रहा था?

सारा देश चिल्ला उठा था। मजहब के नाम पर सारा देश त्राहि-त्राहि कर उठा था।

*

*

*

जयसिंह ने सेना का जो दस्ता आगे भेजा था उस पर एक रात को जसकोट की फौज की एक टुकड़ी ने हमला कर दिया। हमारे सैनिक शाही दस्ते से आघे भी नहीं थे। वह शाही दस्ता संभल नहीं सका। उनकी पराजय हो गई। उनके सैनिक भाग खड़े हुए। हमारे हाथ काफी सामान लगा।

इसके बाद मैंने सोचा कि जयसिंह के पास राजदूत भेज कर पुनः सन्धि की बात की जाय । राजदूत भेजा । जयसिंह से वह खुले दरबार में मिला । उसकी शाही फौज के अग्रिम दस्ते की पराजय के कारण जयसिंह का क्रोध बढ़ गया । राजदूत की निर्भीकता ने आग में घी का काम किया । उसने पूछा, 'तुम्हारे देश में अदब नाम की कोई चीज है या नहीं ?'

‘अकिंचन से कौनसी भूल हुई ?’

‘गुस्ताखी करने के बाद ये भी नहीं पता कि तुमने क्या किया ?’

राजदूत मौन रहा । उसकी आँखों में प्रश्नवाचक चिह्न-सा था । उसने कहा, ‘हमारे अधिपति ने युद्ध से होने वाले दुष्परिणामों को टालने के लिए सन्धि का प्रस्ताव भेजा है ।’

‘जब मैंने सन्धि के लिए लिखा तो हमारे राजदूत को तुम्हारे अधिपति ने क्यों लौटा दिया ?’

‘वह सन्धि-प्रस्ताव कहाँ था ? आप तो उस प्रस्ताव द्वारा हमें पराधीन बनाना चाहते थे ।’

‘तो क्या अब अपनी पराजय को बचाने के लिए सन्धि का बहाना ले कर आए हो ?’

‘महाराज ! यह आपका भ्रम है ।’

‘जब मैंने सन्धि का प्रस्ताव भेजा था तो तुम्हारा राजा अकड़ रहा था । उसी नशे में उसने हमारी फौजों पर हमला किया....अब जब उस का नतीजा सामने आया तो सन्धि की बातें....’

‘महाराज हमारे अधिपति ने सन्धि का प्रस्ताव पराजय के भय से नहीं भेजा । पराजय हो या विजय इसका मालिक तो ईश्वर है । न उनको और न उनके सैनिकों को ही मरने का भय है ।’

‘राजदूत ! मैं सब समझता हूँ । मेरे बाल घूप में सफेद नहीं हुए ।

‘मेरा आशय सन्धि प्रस्ताव से था आपके बालों से नहीं ।’

‘चुप रहो...बकवास बन्द करो ।’ उसने रुक कर फिर कहा, ‘अहद-नामा सिर्फ एक शर्त पर हो सकता है ।...तुम्हारे राजा को बिला शर्त हमारी आधीनता स्वीकार करनी होगी और हमारे साथ दिल्ली चलना होगा ।’

‘आप शायद मजाक कर रहे हैं ।’

‘मजाक...होश में हो या नहीं ?’

राजदूत क्रोधित हो उठा । वह परिस्थिति को संभालना नहीं जानता था । जयसिंह के हुक्म से उसका वध कर दिया गया ।

सारा ब्यौरा सुनाने के लिए जयसिंह ने अपना राजदूत मेरे पास भेजा । वह कोई मुमलमान था । अनुचरों को छोड़ आजा ले वह दरबार में आया । आते ही उसने सारा वृत्तांत कह सुनाया । दरबारी क्रोध से उबल उठे । एक साथ कई तलवारें उसकी ओर खिंच उठी ।

मैंने दरबारियों को शान्त किया किन्तु वह राजदूत पत्त की तरह काँपने लगा । उसने कहा, ‘राजन्...!’

मैंने कहा, ‘राजदूत ! जिस निर्दयतापूर्वक जयसिंह ने हमारे निरपराध राजदूत का वध किया है, उससे भी अधिक निर्दयतापूर्वक मैं तुम्हारे वध कर सकता हूँ ।’

राजदूत ने जमीन पर सिर टेक दिया और रोने लगा ।

मैंने कहा, ‘मक्खियों के शिकार से शेर का पेट नहीं भरता ।... तुम्हारे वध से जसकोट की विजय नहीं हो सकती ।’

उसने रोते हुए पुनः सिर झुकाया ।

‘नाचीज का कोई कुसूर नहीं है । जहाँपनाह गरीब की जान बख्श दें ।’

‘तुम्हारी जान लेकर मैं करूँगा ही क्या ?’

एक दरबारी ने कहा, ‘राजदूत ! लौट जाओ । जयसिंह से कह देना कि शेर घास नहीं खाता । हमारी तलवारों की सन्धि तुम्हारी ढालों से ही हो सकेगी ।’

राजदूत सहमा-सा था । उसने चारों ओर देखा, फिर कहा, 'अल्ला आपको बरकत देगा ।'

मैंने कहा, 'राजदूत ! जयसिंह से कहना कि ईंट का जवाब पत्थर से मिलेगा ।'

'राजन् ! बादशाह की सल्तनत बड़ी है लेकिन उसका दिल छोटा है । आपकी सल्तनत छोटी है लेकिन दिल बड़ा ।'

'जिस तहजीब और मजहब के नाम पर तुम्हारे बादशाह ने जो अत्याचार किए वे उसके नाम पर इतिहास में कलंक बनकर लगे रहेंगे । मजहब का मतलब ये नहीं है । मजहब भाई की गरदन पर छुरी चलाना, नहीं बल्कि दुश्मन की मौत पर आँसू बहाना सिखाता है ।'

राजदूत ने झुक कर सलाम किया और लौट गया ।

*

*

*

इन सब बातों ने मुझे काफी व्यस्त रखा ।

कुमुद का ध्यान आया.....

उस ओर मैं मुड़ गया !

उसने कहा, 'उदय ! कैसे आये ?' उसके स्वर शांत और संयत थे ।

'यों ही चला आया ।'

'शाही फौजों के क्या हाल हैं ?'

'सीमा पर आक्रमण प्रारम्भ हो गए हैं । हाल ही में एक दस्ते को मार भगाया है ।'

इसके बाद वातावरण शांत रहा । मैंने कहा, 'कुमुद ! शायद यह तुमसे अन्तिम भेंट है ।'

'ऐसी बातें मत करो ।'

'कटु सत्य को कान खोलकर सुनना ही होगा ।'

'नहीं... उदय ! परमेश्वर सबकी रक्षा करता है ।'

मैं व्यंग से हँस पड़ा । वह रमणी मर्माहत-सी हो उठी ।

उसने कहा, 'उदय ! आज तुम्हें क्या हो गया है ?'

मैं फिर हँसा । कुमुद ने उदास स्वर में कहा, 'उदय ! अपने को सम्हालो...ईश्वर पर विश्वास रखो ।'

'ईश्वर...नाम मत लो ।'

'ईश्वर का भी विश्वास नहीं, आज तुम कैसे नास्तिक हुए जा रहे हो ।'

'कुमुद ! सागर ठीक कहता था कि ईश्वर ढोंग है । ...यदि देवी-देवताओं ने ही भारत की रक्षा की होती तो यवन भारत को पदाक्रांत क्यों करते ।'

'सागर का नाम मत लो...वह विद्रोही है, नास्तिक है !'

'ईश्वर पर विश्वास करने का ही तो यह परिणाम है कि मेरी यह दशा हो रही है ।'

'यह तो प्रारम्भ ही है । राज्य की कुलदेवी पर विश्वास रखो ।'

'सब प्रवंचना है ।...ढोंग है ।'

'कुलदेवी पर भी तुम्हें विश्वास नहीं ।'

'मैं कुलदेवी पर विश्वास करता था, अपने लिए नहीं ; इसलिए कि जनता मुझसे नाराज न हो जाए ।'

'ओह ! तो तुम्हारी भक्ति ढोंग थी ।'

'यदि कुलदेवी ढोंग कर सकती है तो क्या मैं उसकी भक्ति का ढोंग नहीं कर सकता ?'

कुमुद उदास हो गई । उसने कहा, 'राजन् ! ईश्वर के लिए ऐसी बातें मत करो ।'

इसके बाद दो अश्रुकण उसके गालों पर से टुलक गए । उसने आँचल से उन्हें पोंछा और सहसा अन्दर को जाने लगी । मैंने आगे बढ़ कर उसके कंधे पकड़ लिए और कहा, 'कहाँ जा रही हो ?'

उसने उत्तर नहीं दिया । उसके आँसुओं का वेग और तीव्र हो उठा । मैंने कहा, 'धुरा मान गई हो, क्यों ?'

‘मुझे छोड़ दो...तुम्हारा दिमाग आज खराब है। तुमसे मुझे बातें नहीं करनी हैं।’

‘अच्छा मत करो बातें...लेकिन मैं एक अत्यन्त आवश्यक कार्य के लिए आया हूँ।’

‘क्या ?’ प्रश्न कर एक अबोध बालक की तरह वह मुझे देखने लगी। आँखों में उदासी और अबोधता और गालों पर सूखे आँसू उसे आकर्षक बना रहे थे।

‘कुमुद...!’

‘क्या है ?’ उसके स्वर में रोष और तीव्रता थी।

‘तुमको पता है न कि हमारी सीमा पर शत्रु की सेनाओं के पड़ाव लग गए हैं।’

‘पता है।’ व्यंग से जैसे उसने अपनी समस्त शक्ति बटोर कर कहा हो।

‘उस समय तुम क्या करोगी ?’

‘जो ईश्वर की इच्छा होगी।’

‘दुर्ग में क्यों नहीं आ जाती...सुरक्षित रहोगी।’

‘वहाँ नहीं जाऊँगी।’

‘क्यों ?’

‘मुझे नहीं जाना। बहस मत करो... नहीं यानी नहीं।’

‘दीवार से सिर मारने से दीवार गिर नहीं पड़ती।’ मैंने मर्महत हो कर कहा।

‘इस विषय में मुझसे बात न करो। मैं जसकोट के दुर्ग में नहीं जाऊँगी।’

‘तो यहाँ रहकर क्या आफत मोल लोगी ?’

‘इसकी चिंता मुझे है।’

‘कुमुद ! यह निरी वाचालता है। स्थिति गम्भीर है, उसपर विचार करो।’

‘विचार करना या न करना मेरा अपना कार्य है । तुम मेरे भला कौन हो यह पूछने वाले ?’

‘इतने मोटे प्रश्न की मुझे तुमसे आशा नहीं थी ।’

‘और मुझे भी यह आशा नहीं थी कि तुम ऐसी बहकी-बहकी बातें करोगे ?’

‘अच्छा, बताओ दुर्ग में आना है या नहीं ।’

‘नहीं ।’

‘पूर्णतः विचार कर लिया ?’

‘हाँ ।’

‘कुमुद ! जब आक्रमण इधर भी होगा तो तुम अपनी रक्षा किस तरह करोगी ?’

उसका चेहरा तमतमा गया । उसने कहा, ‘जिसने अबतक मेरी रक्षा की है आगे भी वही करेगा ।’

यह कहकर उसने जाने के लिए मुँह फेर लिया । मैं बड़बड़ा उठा ‘मूर्ख !’

उसने सुना नहीं । मैंने दो-तीन बार पुनः कहा किंतु वह अपनी ज़िद से हटी नहीं । अन्त समय कह आया, ‘चाहोगी तो दुर्ग में आ जाना दुर्ग के द्वार तुम्हारे लिए सदैव खुले हैं ।’

*

*

*

युद्ध का समय आ चुका था—

कहाँ मूठभेड़ हो जाये पता नहीं ।

एक गोला भी कहीं फटता तो सबके कान खड़े हो जाते ।

इससे पहले कि अपनी समस्त सेना को इधर-उधर लड़ने के लिए भेजा जाय, मैंने अपने मुख्य सेनानायकों को बुलाया ।

दुर्ग में दीवाने खास में हम सब बैठे थे । सबके चेहरे पर गंभीरता, क्रोध और अलौकिक तेज था । सागर और उस सामंत ने धोखा अवश्य दिया था किन्तु उस अभाव की पूर्ति कर ली गई थी । जयसिंह ने काफी

प्रयत्न किया था कि हमारे सामंत या मंत्री उस ओर मिल जाएँ किन्तु उसके समस्त प्रयत्न विफल ही रहे ।

‘सेना को दो हिस्सों में बाँटा जाए । एक भाग तो गढ़ में ही रहे और दूसरा भाग पहाड़ियों में समा जाए । मौका आने पर मुगल फौजों पर आक्रमण करे ।’

‘राजन् सेना का जो भाग बाहर रखा जाएगा उससे तो शक्ति का अपव्यय ही होगा’ एक सेना नायक ने कहा ।

‘कैसे ?’

‘मान लो हम जीत भी जाते हैं तो आखिर क्या होगा ? शत्रु के कुछ भाग पर ही विजय श्री प्राप्त करने से तो काम नहीं चलेगा । और समस्त शाही फौज की गति रोकने का तो विचार भी करना समय नष्ट करना है । मतलब यह कि मौका आने पर हमारी आधी ही गढ़ में सुरक्षित फौज काम आएगी ।’

‘तो फिर क्या किया जाए ?’

‘मेरी तो राय यही है कि शाही फौजों का सामना गढ़ में ही रह कर किया जाए ।’

इसके बाद हम काफी देर तक विचार विनिमय करते रहे । निश्चय किया गया कि सेना का आधा हिस्सा गढ़ में रहेगा और आधा मुगलसेना का सामना करेगा । बाहर के भाग में रहने वाली सेना खुल कर तो मैदान नहीं लेगी किन्तु आक्रमण के लिए हरदम तैयार रहेगी । युद्ध बहुत कुछ मराठों की युद्ध प्रणाली पर होगा ।

निश्चयानुसार सेना को दो भागों में बाँटा गया । एक भाग दुर्ग में रह गया । दूसरे का संचालन मैंने किया । उसका भी चौथाई भाग छोटे-छोटे दस्तों में बट गया । मेरे पास १३ हजार सधे सैनिक थे । समाचार मिला कि उत्तरी मैदान में, स्थित घाटी से एक शाही फौज का बड़ा सा भाग आ रहा है कम से कम तीस हजार सैनिक हैं । पूरा तोपखाना भी साथ है । मुगलों के लड़ने का ढंग मुझे मालूम था किन्तु खुले मैदान

में मैं लोहा नहीं लेना चाहता था । उसी मार्ग पर एक दुर्गम घाटी को मैंने चुना । पहाड़ी के दोनों ओर अपनी सेना छिपा दी ।

तीन दिन तक रास्ता देखते रहे.....किन्तु व्यर्थ चौथे दिन रात की हल्की चाँदनी में कुछ कोलाहल सुनाई दिया और क्षितिज धुंधला सा होने लगा । स्पष्ट था कि धूल उड़ रही है । स्पष्ट हो गया कि शत्रु पक्ष की सेना आ रही है । देखते ही देखते सेना पास आ गई । आगे घुड़ सवार थे । वे निश्चित चले जा रहे थे उसके बाद रसद शुरू हुई ।

अचानक अपने तोपखाने को मैंने आज्ञा दी । गोलों की दाग प्रारंभ हो गई । हम ऊँचाई पर थे । इसलिए हमें लाभ था । घाटी काफी लंबी थी और उसके दोनों छोरों पर घाटी का मेरी तोपों ने मुँह बंद कर दिया था । तीरों की वर्षा भी इस समय शुरू हो गई ।

इस तरह के आक्रमण का इसके लिए शत्रु को न तो पता ही था और न वे तैयार थे । हल्की-हल्की चाँदनी छिटकी हुई थी । घाटी के दोनों ओर दुर्गम उतार था । कोई आगे भाग रहा था और कोई पीछे । घाटी के मुँह पर दोनों ओर तोपों की दाग अत्यंत जोर से हो रही थी । आधी रात तक यह क्रम चलता रहा । आधी रात के बाद शाही फौज की दाग प्रारंभ हुई । परन्तु शत्रु पक्ष को ठीक-ठीक नहीं पता था कि गोले किधर फेंके जाएँ ?

सुबह तक शाही फौज की दशा अस्त व्यस्त हो चुकी थी । घाटी में जो शत्रु थे प्रायः वे सब मारे जा चुके थे । पीछे वाले सबेरा होते-होते मैदान छोड़ चुके थे । घुड़सवारों ने अगले भाग से कुछ कोशिश की थी किन्तु सब बेकार ।

सबेरे के हल्के प्रकाश में घाट में बैठे हुए जसकोट के सैनिक शत्रुपक्ष पर टूट पड़े । रात भर के आक्रमण के बाद इस चढ़ाई ने शत्रु पक्ष का साहस समाप्त कर दिया । तीन घंटे के भीतर भाग्य का निपटारा हो गया । जो सैनिक शत्रुपक्ष की ओर से भागे थे उन्होंने लौट कर फिर कोशिश की लेकिन बेकार दोपहर की कड़कती धूप में उन्होंने मैदान छोड़

दिया । भागने वालों में छुड़सवारों की संख्या ही अधिक थी ।

मैदान हमारे हाथ रहा । शाही तोपखाना हाथ लगा । काफी बंदूकों और रसद भी हमारे हाथ लगी । कैदियों सहित इन सबको गढ़ में पहुँचा दिया गया ।

इसके बाद जसकोट की सेना पुनः टुकड़ियों में विभाजित हो गई । शाही फौज से खुला मैदान लेने की कल्पना ही व्यर्थ थी । शाही फौज के लिए अब यह रास्ता बंद सा था ।

*

*

*

दस पन्द्रह दिन चैन से बीत गए । अचानक गुप्तचरों ने समाचार दिया कि शाही फौज जसकोट के चारों ओर से दस्तों में बंट कर आरही है । यह भी बताया गया कि बीजापुर से शत्रु सैनिक हटा कर जसकोट की ओर मुड़ गए हैं । पराजय का समाचार सुनकर जयसिंह का खून खौल उठा था । पता लगा कि स्वयं वह भी आरहा है । जिस तोपखानेने पुरन्दर के किले से शिवाजी को बाहर निकाल दिया था वही तोपखाना आग बरसाने जसकोट की ओर आ रहा था ।

समझ नहीं आया कि आखिर क्या किया जाए ? पहाड़ी रास्तों पर तो मैंने सैनिक भेजा दिए किन्तु मैदानी रास्तों का कुछ इंतजाम नहीं हो सका । शत्रुपक्ष के उत्तर और पूर्व के दस्ते अधिक मजबूत थे । मैं चाहता था कि इससे पहले वे मिलें उनसे मुठभेड़ ली जाए । उत्तर की ओर सेना का स्वयं मैंने संचालन किया । पूर्व की ओर भी कुछ सैनिक भेजे । जोर उत्तर की ओर ही था ।

उत्तर दस्ते से मेरी मुठभेड़ हो गई । जयसिंह पूर्वी दस्तों के साथ आ रहा था । मुगलों की लड़ाई का तरीका खुले मैदान में क्या था इसका मुझे पता था । इन दस्तों में शत्रुपक्ष के सैनिक अब तक तो सिमर कर आ रहे थे । अब उन्होंने दाएँ बाएँ फैलना शुरू किया । ये बाजुओं की ओर फैल रहे थे । दाएँ बाएँ जसकोट के सैनिक मौके की ताक में अपने स्थान पर बैठे थे । मैंने स्वयं मध्य में आक्रमण किया । आक्रमण

हमारी ओर से ही प्रारंभ हुआ । दोपहर तक युद्ध चलता रहा । जसकोट के सैनिक बुरी तरह छंट रहे थे । हम पूर्णरूप से घिर ही रहे थे कि दाएँ बाएँ से घात में बैठे जसकोट के सैनिकों ने शत्रु पर धावा बोल दिया । बाईं ओर से आक्रमण का वेग प्रचंड था । संध्या तक शाही फौज तितर बितर हो गई ।

रात्रि के द्वितीय प्रहर में अपने विजयी सैनिकों को मैंने प्रयाण का आदेश दिया । सैनिक थके थे किन्तु पूर्वी दस्तों को भी रोकना था । कोई उपाय नहीं था ।

जयसिंह जिस मार्ग से आ रहा था, वहाँ से गोदावरी बह रही थी । निश्चित था कि वह गोदावरी को पार करके ही आएगा । गोदावरी एक स्थल से उथली सी थी फिर भी वहाँ से नाव के बिना नहीं आया जा सकता था । उसी स्थल पर जयसिंह ने अपना पड़ाव डाला और तोपों के मुँह दूसरे किनारे की ओर कर दिए अर्थात् हमारी ओर । तोपों के संरक्षण में नावों का पुल बनना तैयार हुआ । पिछली रात मेरे सैनिकों ने अपना-अपना स्थान ले लिया था । एक चट्टान की आड़ से दो तोपें भी हमने लगा दी थीं । नाव का पुल शाम तक पूरा हो गया । उस पर से शत्रुपक्ष के सैनिकों ने आना प्रारंभ किया ।

पिछले दिन जो सैनिक लड़ चुके थे उन्हें मैंने पीछे रखा । शत्रु पक्ष के जब काफी सैनिक इस ओर आ गए तो हमारी तोपों की दाग सहसा प्रारंभ हुई । हमारे गोले नावों के पुल पर गिर रहे थे । इस ओर जो सैनिक आ गए थे उनसे पहले ही युद्ध छिड़ चुका था । जयसिंह ने अपने तोपखाने को आदेश दिया । धीरे-धीरे शत्रुपक्ष की ओर से दाग तेज होती गई । हमने उनके गोलों की परिधी से इधर हटकर लड़ना प्रारंभ किया । नावों का पुल टुट गया किन्तु हमारी दोनों तोपें बेकार होगई और चट्टान पूरी तरह से उड़ गई । दोनों तोपची मारे गए ।

जयसिंह को गोदावरी पार करने में सफलता नहीं मिली । रात पड़ गई थी । सैनिक थक कर चूर हो गए थे । मैंने उन्हें गढ़ में भेज दिया

और नए भर्ती के सैनिक बुलवाए । परन्तु इन सैनिकों पर पूरा विश्वास नहीं था ।

दूसरे दिन वातावरण शांत रहा । रात्री चन्द्रहीन थी । केवल तारों का प्रकाश ही था । रात्रि के प्रथम प्रहर के बाद शाही तोपों ने सहसा आग उगलना प्रारंभ कर दिया । परिणाम स्वरूप हम उन गोलों की परिधि के बाहर हो गए । प्रभात के समय अपनी पाँच तोपों को किसी प्रकार हमने आगे किया और दाग प्रारंभ की । हमारे गोले निशाने पर पड़े अवश्य किन्तु शाही फौज भी हमारे गोलों की परिधि से पीछे हट चुकी थी । दोनों ओर से यही क्रम चल रहा था कि अधिक से अधिक बचाव के साथ युद्ध किया जाए ।

इसी तरह एक सप्ताह व्यतीत हो गया । मैंने उस ओर का भार कुशल सेना नायकों पर छोड़ा और उन पहाड़ी भागों में मैं आया जहाँ जसकोट के सैनिक थे । नगर की ओर भी मुड़ा । नगर ऊजाड़ पड़ा था । किसी एक घर से कोई स्वर सुनाई दे जाता अन्यथा प्रायः समस्त नागरिक नगर छोड़ चुके थे । कुमुद की ओर मुड़ा किन्तु उसका भवन खाली पड़ा था । महर्षि के शिष्य भी वहाँ नहीं थे । मानसिक वातावरण उलझ सा गया । मेरी सेना की कई टुकड़ियाँ निकटवर्ती वनों में समा चुकी थी । मेरा विचार था कि पराजय भी हुई तो भविष्य के लिए जैसे तैसे कुछ न कुछ सैनिक बच रहने चाहिए ।

जयसिंह ने जब स्थिति पर विचार किया कि तीन स्थानों पर शाही फौज असफल रही है तो उसने सफल छुड़सवारों के साथ मैदानी रास्ता चुना । उसका यह आक्रमण सीधा नगर की ओर था । जयसिंह के इस आक्रमण का आशय था कि मैं उससे खुला मैदान लूँ... नहीं लेता तो नगर पर चढ़ाई थी ।

उसे पकड़ने का एक स्थान बहुत अच्छा था । इससे पहले कि वह मैदानी रास्तों से आता उसे दक्षिणी सीमा की पहाड़ियों में से ही आना

पड़ेगा यह तो निश्चित था । किन्तु पहाड़ियों का मार्ग बहुत दूर था और समय थोड़ा था । फिर भी...

मैंने अपने सफल घुड़सवार चुने और उन्हें प्रयाण की आज्ञा दे दी । तोपखाना भी साथ कर दिया । पहाड़ियों में सैनिक डट गए । मैदानों के उत्तरी भाग से गोदावरी सर्पाकार बहती थी । उसकी ढाल पर पास ही की तराई से यह मार्ग था । सेना को यथास्थान जमाकर मैं शाही फौज का रास्ता देखने लगा ।

मेरा आशय था कि रात में चढ़ाई हो तो अच्छा है । दो तीन दिन मैं ही पता लगा कि दूसरे दिन के प्रथम प्रहर तक शाही घुड़सवार इस स्थान से जाएंगे ।

प्रातःकाल से ही जसकोट के सैनिकों ने गोदावरी के जल में स्नान प्रारम्भ कर दिया था । उनमें एक अदभुत उत्साह था । गंभीर वातावरण था । पता नहीं था कि किसके सिर पर आखिर मौत मंडरा रही है । स्नान के पश्चात् भोजन किया और तैयार हो गए । दोपहर को हमें उलझाने के लिए एक मुगल दस्ता मुख्य सेना के आगे ही आया । उस पर हमने चढ़ाई नहीं की...वे आगे निकल गया । शाम को क्षितिज पर धूल उड़ती दिखाई दी । बात की बात में पहाड़ियों पर से सर्पाकार रूप में शाही घुड़सवार आते दिखाई दिए । साथ तोपखाना था । कोई ६ या ७ हजार उनकी संख्या थी । शाही सैनिकों को हमारा पता चल गया । उन्होंने वहीं पड़ाव डाल दिया । हमने आक्रमण नहीं किया । आधी रात तक तो शत्रुओं को विश्राम करने दिया फिर सहसा मैंने चढ़ाई करने का आदेश दिया । युद्ध तो प्रारम्भ हो गया किन्तु एक या दो घंटों में ही मुझे पता लग गया कि अब टक्कर लेना टेढ़ी खीर है ।

फिर भी हम काफी जमकर लड़ रहे थे । अपनी रीति अनुसार सबेरा होते ही उन्होंने दाएँबाएँ हमें घेरने के लिए फैलना प्रारम्भ किया । हमारे छिपे सैनिकों ने भी अब मैदान लिया । एक पहर दिन चढ़ आया था । मैंने देखा कि कुछ पठान सैनिक हम पर पीछे से आक्रम-

मरण किया चाहते हैं । मैं स्वयं अंगरक्षकों सहित पीछे की ओर घुमा । वहीं से गोदावरी का बहाव एकदम सर्पाकार था । पठानों पर मैंने आक्रमण किया, वे पीछे हट गए ।

दोपहर हो गई थी । मैंने देखा कि जब तक शाही फौज के मध्य भाग पर आक्रमण न किया जाए तो शत्रुपक्ष को विफल नहीं किया जा सकता । मध्य भाग में स्वयं जयसिंह था । अपने अंगरक्षकों और विश्वस्त सैनिकों को लेकर मैंने मध्य भाग पर जोर देना प्रारम्भ किया ।

मेरी शक्ति बढ़ती ही गई और संध्या तक मैं मध्य भाग को चीर कर आगे बढ़ ही गया । जयसिंह के आधीनस्थ औरंगजेब के पुत्र आजम शाह तक पहुँच गया लेकिन उसके हाथी का होदा खाली पड़ा था । मैं लड़ता-लड़ता आगे बढ़ा देखा और देखता ही रह गया । चारों ओर खूा पड़ा था । उस पर घोड़े की जीन बिछी थी । पश्चिम से सूर्य की हल्की-हल्की किरणें आ रही थीं । आजमशाह उस जीन पर बैठा मगरीब की नमाज अदा कर रहा था । दृश्य काफी रोमांचकारी था । देखते ही ही देखते कोलाहल बढ़ गया, और जयसिंह के अंगरक्षकों ने तीव्र एवं प्रचण्ड वेग से उस ओर आक्रमण किया । मैं घिर सा गया ।

ऐसी ही दशा हल्दी घाटी में राणा प्रताप की हुई थी जब कि सलीम पर उनका वार खाली गया था । मैंने चालाकी से काम लिया । अपना घोड़ा पीछे मोड़ा और बच निकला ।

आज का युद्ध सबसे भयंकर था । जयसिंह के विषय में अब तक तो केवल सुनता ही था आज प्रत्यक्ष देखने का अवसर मिला । एक बार सुना था कि ईरान के शाहजादे ने युद्ध में खून पर घोड़े की जीन बिछा कर औरंगजेब को नमाज पढ़ते देखा था और सिर्फ इतना ही देख कर वहीं हाथ टेक दिए थे । वह समझ गया कि ऐसे व्यक्ति से विजय पाना कठिन है ।

रात को अपने सैनिकों को मैंने पीछे हट जाने का आदेश दिया । मुझे अपने सैनिक बचा कर युद्ध करना था । दिन भर मेरा ही हाथ ऊपर था । परन्तु मेरे काफी सैनिक खेत रहे । हमें शत्रु पक्ष का काफी माल हाथ लगा । शत्रु पक्ष का तोपखाना तो बिल्कुल अस्त व्यस्त हो गया था ।

स्पष्ट हो गया था कि आगे युद्ध करना व्यर्थ है क्योंकि रातों रात गुप्तचरों ने समाचार दिया कि पीछे और शत्रु आ रहे हैं । रातों रात मैंने अपने घायल और थके हुए सैनिकों को गढ़ की ओर खाना कर दिया । शेष सैनिकों को ले मैं नगर की ओर बढ़ा । शीघ्रता के कारण हमारी ५ तोपें पीछे ही रह गईं । बहुत सा भारी सामान हमें पीछे छोड़ देना पड़ा ।

स्पष्ट हो गया था कि अब आक्रमण नगर पर होगा । नगर को बचाने के लिए तो सेना थी । शाही फौज की काफी हानि तो हुई थी अब सामना शाही फौज से नहीं जयसिंह से हुआ था । उसकी व्यवस्था उसकी अपनी ही थी । पहले मैंने समझा था कि मुगल अपने तरीके से लड़ेंगे । युद्ध उस तरह प्रारम्भ भी हुआ था किन्तु शीघ्र ही जयसिंह ने युद्ध का तरीका बदल दिया ।

*

*

*

जयसिंह ने जब देखा कि मैंने अपनी सेनाएँ पीछे हटा ली हैं तो उसने बिल्कुल समय नष्ट नहीं किया और नगर की ओर तेजी से प्रयाण कर दिया । रात के समय वैसे दो एक स्थानों पर जयसिंह के पड़ाव पर हमने छुटपुट आक्रमण किए थे किन्तु उसका उद्देश्य केवल शाही फौजों का सामान लूटना मात्र ही था ।

नगर के मुख्य द्वार के पास जयसिंह ने अपनी तोपें गाड़ी । किन्तु नगर द्वार पर हमारी तोपों ने उन्हें पीछे ही रखा । एक माह तक कुछ हलचल नहीं हुई । नगर को घेर कर शाही फौजें पड़ी रहीं । धीरे-धीरे शत्रु पक्ष की सेना बढ़ रही थी क्योंकि इधर-उधर से समस्त शत्रु सैनिक

आकर जमा हो रहे थे ।

युद्ध नगर द्वार पर पागल हाथियों की टक्कर से प्रारम्भ हुआ था । हाथी पागल थे, उनके सिर पर तवे लगे थे । लकड़ी के लट्टे भी उनके सिर से बंधे थे । हमारी तोपें उन पर बराबर आग बरसाती रहीं... किन्तु दरवाजा टुट ही गया ।

शत्रु पक्ष का आक्रमण प्रचंड वेग से मुख्य द्वार पर हुआ । हमारे सैनिक काफी वीरता से लड़ रहे थे । बाहर से मैंने चढ़ाई कर दी । शाही फौज के जो दमते द्वार पर पड़े थे वो दोनों ओर से बुनी तरह से फम गए । उसी ओर नगर के बाहर फैली हुई शत्रु पक्ष की सेनाओं ने दबाव डालना प्रारम्भ किया । तीन दिन और तीन रात युद्ध चलता रहा किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ । शाही फौज को तितर बितर अवश्य कर दिया किन्तु चौथे रोज दक्षिण की ओर एक भारी टुकड़ी आकर शत्रु पक्ष में मिली । सामना करना व्यर्थ था । नगर से बहुत सैनिकों को मैंने निकाल लिया और बाकी नगर में अवशिष्ट जसकोट के सैनिकों को आदेश दिया कि रातों रात वे दुर्ग में पहुँच जाएँ । सबेरा होते-होते हमारी फौज दुर्ग में समा गई ।

*

*

*

प्रकोष्ठ की खिड़की खुली थी...

दुर्ग से मैं चिन्तामग्न खड़ा हो नगर की ओर देख रहा हूँ ।

नगर जल रहा था...धूँआ उठ रहा था । पृष्ठ भूमि में क्षितिज पर प्राची में उषा की लाली छाई थी । उस पृष्ठ भूमि पर जसकोट की गगनचुम्बी इमारतें धू धू कर जल रही थीं ।

दूर एक सामन्त की हवेली...

आग से उसकी अंतिम मंजिल गिरी...

क्या कहूँ...लिखा नहीं जाता...

उत्पीड़न, अत्याचार...प्रताड़न...इसके सिवाय शाही सैनिकों को आता भी क्या था ? आखिर सेना तो औरंगजेब की थी ।

यज्ञ के हवन कुंड में जैसे घी डालने से अधिक आग और धुआँ उठता है उसी तरह प्रकृति के यज्ञ में जसकोट का नगर एक हवन कुण्ड बन चुका था... धुएँ और आग की लपटें उठ रही थीं ।

एक शेर भला दस भेड़ियों से कब तक लड़ता ?

मुझ से देखा नहीं गया, मैंने खिड़की बन्द करवा दी ।

कुमुद...

भला उसकी क्या अवस्था होगी ? शाही फौजों को मैं अच्छी तरह से समझता था । किसी स्त्री के सतीत्व हरण में ये फौजी पूरे दक्ष थे । रात पड़ चुकी थी । किले के पहाड़ की ढाल पर सागौन के झाड़ तपस्वियों की तरह ध्यानस्थ मौन खड़े थे । भीगुरों के स्वर स्पष्ट रूप से सुनाई दे रहे थे लगता था मानो रात बोल रही हो । कुमुद इस समय कहाँ होगी ? व्यर्थ ही उसके समक्ष मैंने उलटी सीधी बातें बक दी थीं यदि जोर देकर प्रेम से कहता तो शायद दुर्ग में आ जाती ।

बुर्ज पर से मैंने देखा... युद्ध से पहले इसी स्थल से अपने नगर को मैंने देखा था जब कि वह दीप शिखाओं और मशालों के प्रकाश में स्वर्गलोक से कम नहीं लगता था लेकिन आज तो श्मशान भी उससे अच्छा था । शाही फौजी घरों में घुस-घुस कर जो नागरिक रह गए थे उन्हें खींच कर बाहर लाकर उन्हें मार रहे थे ।

सहसा मेरा ध्यान नगर में स्थित प्रसिद्ध मंदिरों की ओर गया । मंदिर की समस्त पताकाएँ खोल दी गईं थी । घंटे एक साथ बज रहे थे । घंटों के स्वर तेज होते जा रहे थे । लगता था कि जान बचाने के लिए उस मन्दिर में कई लोग घुस बैठे थे ।

गजनी की चढ़ाई से जब सोमनाथ की दीवारें हिल उठी थीं उस समय कई लोग यह समझ कर मन्दिर में घुस बैठे थे कि देवता उनकी रक्षा करेंगे । महमूद सारा मंदिर रौंद कर चला गया किन्तु स्वर्ग के तेतीस करोड़ देवता कुछ न कर सके ।

उन लोगों पर क्रोध आया जो जान बचाने के लिए मंदिर में

कायरों की भाँति घुस बंठे थे ।

परन्तु जयसिंह ने मन्दिरों को तोड़ने नहीं दिया...

जलते हुए ध्वस्त नगर में वही स्थल ऐसे थे जहाँ मंगालों और दीप शिखाओं का प्रकाश था ।

*

*

*

जसकोट के दुर्ग के चारों ओर शाही फौजों के पड़ाव फैलते गए । जसकोट का दुर्ग काफी दुर्गम था । मुझे पूर्ण विश्वास था कि शाही फौजें उसे नहीं ले सकती । रसद भी मेरे पास दो वर्ष के लिए थी; तोपों पर निशानेबाज तोपची डटे थे । दो दिन तक वातावरण शांत रहा ।

उस समय सूर्य डूब रहा था । मैंने अपने अधीनस्थ सेना नायक की ओर घुम कर कहा, 'नायक सूर्य सायद अपने साथ जसकोट का भाग्य लेकर डूब रहा है ।'

'और कल फिर भाग्य लेकर उदय होगा ।' सेना नायक ने वाक्य पूरा कर दिया ।

शाही तोपखाने ने अभी दाग नहीं प्रारम्भ की थी । गढ़ गोलों की परिधि के बाहर पड़ता था । जयसिंह ने अपना तोपखाना मुख्य द्वार के रास्ते से बढ़ाना प्रारम्भ किया किन्तु मैंने उस पर गोले दागने का आदेश दिया । परिणामस्वरूप वहाँ से वह पीछे हट गया ।

बात वास्तव में यह थी कि जयसिंह को अपनी तोपें रखने को उचित स्थान नहीं प्राप्त होता था । वह चाहता था कि जमीन खोद कर उसकी सतह एक सी कर उस पर दो तोपें रखे और फिर दाग प्रारम्भ करे... किन्तु उसके मजदूरों को जगह बनाने का हम अवसर ही नहीं देते । वे मजदूर एवं अन्य सैनिक हमारी तोपों के शिकार होते ।

इसी समय मेरे कानों में एक कण्ठ गीत की ध्वनि पड़ी । मैं उस ओर मुड़ गया । देखा तो तिलंगा नायक गा रहा है । उसका नाम सुब-रैय्या था । वह शाही फौजों की ओर से कई स्थानों पर लड़ चुका

था। इसलिए मेरी भाषा वह समझता था। उसके साथ कई तिलंगे सैनिक और भी थे। इसे मैंने शाही दस्तों से जब दुर्गम घाटी में पहली मुठभेड़ हुई थी उस समय कैद किया था। उसकी स्वामीभक्ति के कारण उसे मुक्त कर दिया था। वह काफी बहादुर था। नगर की रक्षा करता हुआ वह मेरी ओर से लड़ा था। शत्रु ही उसे एक टुकड़ी का मैंने नायक बना दिया था। मुझे देखकर वह चुप हो गया।

मैंने कहा, 'क्या गाने हो सुबरैय्या ?'

'यों ही अपने देश का एक गीत गा रहा हूँ।'

'गीत तो काफी करुण प्रतीत होता है'

'हाँ.....'

इसके बाद वह फिर उदास सा हो गया। वह प्रीड़ावस्था का था।

'क्यों; बाल बच्चों की याद आ गई।' मैंने पूछा।

'मेरे बाल बच्चे कहाँ ?'

'क्यों ?'

'मेरी शादी ही नहीं हुई तो बच्चे कहाँ से होंगे ?'

'फिर क्यों उदास हो गए थे।'

'यों ही...अपने देश की याद हो आई। ३५ वर्षों से उसका मुँह नहीं देखा। सोचता हूँ मरने के पहले वहाँ अवश्य जाऊँ।'

'क्यों .. ३५ वर्षों से बाहर हो।'

'हाँ....'

'यह कैसे ?'

'जब मेरी उम्र ३५ वर्ष की थी उस समय मेरी माँ बुरी तरह से बीमार पड़ी। पिता जी तो थे नहीं। किसी तरह बर्तन माँज कर या अन्य तरह का काम करके वह अपना और मेरा पेट पालती थी। भगवान से प्रार्थना करने के लिए मैं मंदिर में चला गया। पुजारी ने देखा और हल्ला मचाया। देखते ही देखते तगड़ी देहवाले

तीन-चार पुजारी जमा हो गए । मैं भागने लगा.....एक ने मुझे लात जमाई और पकड़ कर कोने में बैठा दिया । मैं नीच जाति का था, मन्दिर में घुस गया था, यही मेरा अपराध था । माँ के लिए यह.....मैंने किया.....राजन् अन्यथा कभी न करता । पुजारियों ने सलाह की और फिर एक ने शास्त्रानुसार कुछ दंड का विधान दिया ।

‘पहले तो मुझ पर लातों की बौछार की गई । उसके बाद भूखा प्यासा एक दुर्गन्धि-युक्त बंद कोठरी में मुझे रखा । मेरा सिर चक्कर खा रहा था । जब छोड़ा तो घर आकर देखा कि माँ की मृत्यु हो चुकी है । उसके मुँह में पानी डालने वाला तक वहाँ कोई नहीं था.....।

‘उसके बाद भला मेरे लिए दुनियाँ में क्या रह गया था ? तब से मारा मारा घूमता हूँ । बीजापुर की सेना में था । फिर शाही सेना में रहा.....तब से सैनिक हूँ, जो चार पैसे दे देता है उसके लिए तलवार चला देता हूँ ।’ उसको देखकर और उसकी कहानी सुन कर मैं उदास हो गया ।

मैंने कहा, ‘सुबरैय्या यहाँ तुमको उदास होने की आवश्यकता नहीं तुमको यहाँ कोई कष्ट नहीं होगा । जब तुमको अपने देश जाना हो तो चले जाना ।’

वह काफी देर तक उदास रहा ।

उसने फिर कहा, ‘राजन्.....शास्त्रों में लिखा है कि नीच जाति के मनुष्य को भगवान के दर्शन नहीं दिए जा सकते । आपने तो शास्त्र पढ़े होंगे.....।’ यह कह कर वह अबोध बालक सा मेरी ओर देखने लगा ।

‘वेद-शास्त्र, पुराण तो मैंने पढ़े नहीं लेकिन हाँ यह जानता हूँ कि सब मनुष्य बराबर हैं । यदि एक मनुष्य भगवान के दर्शन का अधिकारी है तो दूसरा भी है ।’

‘परन्तु शास्त्रों में ऐसा कहाँ लिखा है ?’

‘शास्त्रों और वेदों में जो कुछ लिखा है सो तो लिखा है ही। बाकि तो इन पुजारियों ने सब अपने मन से गढ़ कर रखा है। ये सब धनवालों, राजाओं और उच्च जातियों के ही गुलाम हैं।’

सुबरैय्या जैसे मुझे आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा हो। मैंने फिर कहा, ‘जब ये मुल्ले और पंडित धर्म और दीन के नाम पर लड़ते हैं तो उनकी बुद्धि पर दया आती है। धर्म का इनके लिए आर्थिक महत्व है। यदि परमात्मा सबका पिता है तो वह क्योंकर चाहेगा कि उसके लड़के आपस में लड़ें?’

सुबरैय्या अब भी मुझे आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था। मुझ पर उसे आश्चर्य हो रहा था। अपने ठिये पर से वह उठा और चला गया काला सा तगड़ा वह आदमी मुझ पर अपनी छााप छोड़ गया। जीवन में कैसे और कितने अवसर आते हैं जब कि हमारी स्मृतियों को जैसे भ्रूक्षोर से देते हैं। विचार करते करते मेरी विचार-शृंखला टूट गई।

*

*

*

दूसरे दिन शाही तोपों की ओर से भी दाग प्रारंभ हुई किन्तु गोले निशाने पर नहीं आ रहे थे। दिन भर मैं तोपचियों को उत्साहित करता रहा। शाम को शाही तोपखाने का निशाना लेकर मैंने गोले दागने प्रारंभ किए। एक प्रहर के बाद उस तिलंगे नायक ने ठिया सम्हाला। रात भर वह ठिए पर बैठा रहा। सबेरे अंधेरे ही मेरी नींद खुल गई

सुबरैय्या की ओर मैं बढ़ा। बारुद के मन्द मन्द लाल प्रकाश में सुबरैया का फोलादी काला चेहरा पसीने से तर चमक रहा था। उसके मुख पर चिंता की रेखाएँ स्पष्ट थी। पी फटते ही मैंने देखा कि सुबरैय्या ने रात भर की गोलों की वर्षा के बाद शाही तोपखाना बिल्कुल उड़ा दिया था।

सुबरैय्या से मैंने कहा, ‘शाबाश.....इसी तरह लड़ते रहे तो शाही फौज का टिकना मुश्किल है।’ वह हँस पड़ा। उसकी हंसी में अविश्वास था उसने कहा, ‘राजन् ! पानी में डंडा मारने से पानी अलग

नहीं हो जाता ।’

‘तुम्हारा आशय ।’

‘शाही फौज की हार या विजय हमारी इस तरह की क्षणिक विजय पर आधारित नहीं ।’

‘अपना कार्य किए जाओ थोड़े थोड़े से ही बड़ी चीज बनती है ।’

उसके बाद दूसरे तोपची ने वह ठिया सम्हाला । उस तिलंगे सैनिक को छुट्टी दे दी । इसके बाद जा जा कर हर तोपची को मैंने उत्साहित करना प्रारम्भ किया ।

परन्तु परिणाम तो विपरीत ही हुआ ।

दोपहर के बाद पूर्वी द्वार पर शाही तोपों का वेग बढ़ गया । संध्या तक बौछार बढ़ती ही गई । दीवार का काफी भाग टूट गया । जयसिंह को तोपें गाड़ने के लिए स्थान मिल गया था । तरुतों पर तोपें रख कर वह गोलाबारी करवाए जा रहा था ।

मैं डर गया..... यदि यही अवस्था रही तो किले की दीवार का बचना कठिन था । पूर्वी फाटक पर एक तोप मैंने और लगवा दी । शाही तोपों का उत्तर देना अत्यंत वेग से प्रारम्भ किया ।

दीवार बनाने का आदेश मैंने कारीगरों को दिया । लेकिन शत्रु-पक्ष के गोले ठीक निशाने पर आ रहे थे अतएव दीवार चुनना असंभव सा था । विशेषकर उस भाग में प्रकाश के कारण निशाना लगाना शत्रु के लिए सहज था । मैंने वहाँ से प्रकाश हटवा दिया । शाही तोपचियों ने समझा कि शायद दीवार बनाने का काम बंद कर दिया गया.... इसलिए गोलों की बौछार धीमी कर दी । कारीगरों ने अंधेरे में ही कार्य करना प्रारम्भ कर दिया ।

सबेरे तक दीवार का बहुत हिस्सा बन गया था । पौ फटते ही वहाँ पर शत्रुपक्ष के गोले अत्यन्त वेग से आकर गिरने लगे । आज का वेग पिछले दिन से तेज था । अपनी ओर से मैंने भी गोलों का वेग तेज करवा दिया । सात दिन तक यह क्रम चलता रहा । रात में कारीगर

दीवार का टूटा भाग बनाते और सुबह हमारी तोपें शत्रु को करारा प्रत्युत्तर देतीं । सातवें दिन शाही तोपों का वह ठिया हमारे गोलों ने बिल्कुल नष्ट कर दिया, वे तोपें भी बेकार हो गईं । बेकार तोपों को जयासिंह ने पीछे खिंचवा लिया ।

उसी दिन आधी रात को सहसा समस्त शाही तोपें मौन हो गई किसी भी ओर से कोई स्वर नहीं सुनाई दे रहा था । बुर्ज पर से मैं दक्षिण की ओर देख रहा था । दुर्ग के नीचे मे ही पहाड़ के चरणों को चूमता हुआ गोदावरी का जल बह रहा था । इस भाग में गोदावरी किले से लग कर ही बहती थी । यहाँ से यदि गोदावरी में देखो तो हृदय में सहसा भय व्याप जाता था । रात चन्द्रहीन थी केवल तारों का प्रकाश था । श्वानों और गीदड़ों के स्वर स्पष्ट रूप से सुनाई दे रहे थे । जसकोट की तोपों से कहीं एकाध गोला छूट जाता अन्यथा सब आराम कर रहे थे ।

शाही तोपों के सहसा बंद हो जाने से मुझे भय मिश्रित सा संदेह हुआ । दुष्ट जब निष्क्रिय बैठना है तो उसकी निष्क्रियता में भविष्य का भारी उल्कापात छिपा रहता है । उमी समय बुर्ज के पहरेदार ने मुझ से कहा, 'राजन् ! आप कुछ देख रहे हैं ।'

'क्या ?'

'नदी की ओर देखिए ।'

मैंने ध्यान से देखा । गोदावरी पर नावों का पुल बनाया जा रहा था । दुर्ग पर पार्श्व भाग से आक्रमण करने की योजना थी । जब पुल बन गया और उस पर काफी सैनिक आ गए तो पार्श्व भाग की तोपों ने अपना कार्य प्रारंभ किया । देखते ही देखते पुल छिन्न-भिन्न हो गया । जो शत्रु सैनिक किसी प्रकार इस ओर आ गए थे उन पर जसकोट की तोपों ने बिजली गिराना शुरू किया । हवा के साथ शत्रुपक्ष के मनुसूबे बह गए । गोदावरी की दूसरी ओर से जसकोट के दुर्ग पर गोले आने शुरू हो गए, जिनका पूरा जवाब दिया गया ।

सबेरा होते होते पुनः पूर्वी दरवाजे पर शाही सेना की दाग प्रारंभ हो गई । उस ठिए को सुबरैय्या सम्भाल रहा था । दिन भर वह गोले चलाता रहा । संध्या को सहसा पूर्वी दरवाजे की मुख्य तोप बन्द पड़ गई । मुझे भय सा लगा । सुबरैय्या को कहीं कुछ हो तो नहीं गया । वह काफी जीवट का आदमी था और इस तरह सहसा नहीं रुक सकता था । देखा तो शाही फौज के गोले ने तोप के उपर की छोटी सी लोहे की खिड़की को बिलकुल उड़ा दिया है । साथ ही दुर्ग-भीत का भी काफी भाग उड़ चुका है ।

उस तिलगे सैनिक का एक कन्धा उड़ चुका था । सिर उसका तोप के पिछले सिरे से टिका था । वह ठिए पर मृत्यु पड़ा था । ठिया मैंने सम्भाला और शत्रुपक्ष का जवाब पूरे वेग से देना प्रारम्भ किया ।

सुबरैय्या की लाश फूँक दी गई।

वह तिलंगा सैनिक मर तो गया लेकिन अपनी एक कर्णिक स्मृति छोड़ गया । उसकी स्मृति मेरे हृदय पर बिजली की तरह कौंध कर शांत हो गई । उसका उदाम चेहरा मेरे सामने घूम गया । वह किसकी ओर से लड़ा और किसकी ओर से मरा वाह रे भाग्य ! संसार को उससे क्या ? और उसे संसार ने क्या ? माँ थी वह भी चल बसी । धर्म के ठेकेदारों ने उसे कैद कर लातें मार कर ही दम लिया था । अपने देश को देखने की अंतिम इच्छा लेकर वह इस संसार से चला ही गया । खिड़की का जो भाग उड़ गया था उसमें से जो हवा आ रही थी उससे सुबरैय्या के तेलहीन सूखे केश इधर उड़ रहे थे ।
 '.....जो चार पैमे देता है.....उन्हीके लिए तलवार चला देता हूँ ।'

*

*

*

आज लड़ते लड़ते पूरे आठ माह हो चुके थे ।

प्रातःकाल से संध्या तक सिवाय बारूद और तोपों की आवाज के कुछ सुनाई नहीं देना था । रात को मैंने अपने सैनिकों को दीवाने-खास

में बुलाया। हम सिर्फ दस ही थे। युद्ध से पहले भी हम इसी तरह से विचार विनियम के लिए मिले थे। उस समय हमारी संख्या १२ थी। हममें से केवल दो दुर्ग के बाहर रह कर पहाड़ियों में छिप गए थे। मौका देखकर वे अपनी लूटपाट करते थे।

लेकिन आज परिस्थिति गंभीर थी। हमारी सेना के काफी तोपची मारे जा चुके थे। हालाँकि रसद बहुत थी किन्तु यदि यही दशा रही तो स्पष्ट हो गया था कि हम अधिक नहीं लड़ सकते। इन आठ महीनों में शाही फौजों में बुरी तरह से कमी हो गई थी। स्वयं रात रात जाग कर जयसिंह युद्ध का संचालन कर रहा था। मैंने सेना नायकों से कहा, 'यदि हम फाटक खोल कर शत्रुपक्ष पर चढ़ाई कर दें तो सफलता तो मिल सकती है।'।

सबके चेहरों पर विषाद की गहरी रेखाएँ थीं। एक सेना नायक ने कहा 'मेरा ऐसा मत है कि सात दिनों तक गोलों की जोरदार वर्षा की जाए फिर सहसा शत्रुपक्ष पर आक्रमण बोल दिया जाए।'।

दूसरे दिन से दूने जोश के साथ गोलों की बौछार प्रारंभ कर दी गई। इसी समय वर्षा ऋतु प्रारंभ हो गई.....।

एक दिन पानी बरस चुका था। जमीन गीली थी। लेकिन आसमान बादलों से बुरी तरह घिरा था। बिजली के प्रकाश में प्रहरी ने देख कर मुझे सूचना दी कि दीवार के पास तीन चार आदमी सुरंग लगाने की कोशिश कर रहे हैं।

फिर बिजली कड़की और अबकी बार शत्रुपक्ष के कई सिर एक साथ दिखाई पड़े। समय नहीं था झटपट रस्से के सहारे मैं सैनिकों सहित नीचे उतरा और उन सैनिकों पर झपट पड़ा।

दो घंटे तक युद्ध चलता रहा.....शत्रु के समस्त सैनिक खेत रहे। उस दिन गढ़ की बचा लिया गया।

उस रात के अन्तिम प्रहर में मैं कुछ सो सका लेकिन सबेरे उसी स्थल पर हलचल सुनाई दी। मैं उस ओर बढ़ा देखा तो रात की

.....सुरंग सफल हो चुकी थी । उस ओर दीवार का काफी भाग उड़ गया था । मुगल सैनिक अन्दर आने का प्रयास कर रहे थे । सारे दुर्ग में हलचल मच गई । सदर फाटक मैंने खुलवा दिया । प्रचंड वेग से उस ओर से जसकोट के सैनिकों ने धावा किया ।

शत्रु इस तरह के आक्रमण के लिए तैयार न थे । दोपहर की चिल-चिलाती धूप में उनके लिए लड़ना मुश्किल हो रहा था । उन्हें पीछे हटने की आज्ञा नहीं थी परन्तु मौत के मुंह में जाने की अपेक्षा उन्होंने हटना ही ठीक समझा । पश्चिम की ओर सिपहसालार का तगड़ा मोर्चा था । मैंने स्वयं उस ओर आक्रमण किया । वह इसके लिए तैयार न था संघ्या होते होते स्पष्ट हो गया कि शत्रु टिकने के नहीं ।

दूसरे दिन सुबह तक शत्रुओं ने मैदान खाली कर दिया ।

दुर्ग पर दीपशिखाओं का प्रकाश आलोकित हो उठा, सारे सैनिक दुर्ग में आ गए । यह विजय बहुत मंहगी थी । सैनिकों को मैंने उचित पुरस्कार बांटे । उस दिन चारों ओर प्रसन्नता थी लेकिन मरुस्थान की हरियाली से सारा मरुस्थल तो हरा नहीं हो जाता ?

इस विजय का मुझे भारी मूल्य चुकाना पड़ा । बहुत से सैनिक मारे गए । मुट्ठी भर सेना रह गई । घायलों की संख्या बढ़ गई । घायलों की हृदय-विदारक दशा को देखना कठिन था । स्त्रियों का क्रंदन हृदय हिला दे रहा था । रात को दीवाने-खास में अपने सेना नायकों को मैंने बुलाया किन्तु क्या देखता हूँ.....?

तीन मारे गए थे । दो के सिर से खून बह रहा था..... एक का दाहिना हाथ बुरी तरह जरूमी था.....लेकिन उनके मुख पर विषाद नहीं था क्योंकि वे विजयी सैनिक थे । उस दिन आठ हजार जसकोट के सैनिक आए थे ।

शाही तोपों का काफी बारूद हमारे हाथ लगा । दोनों ओर से तोपें शांत थीं ।

मुझे भी उस दिन हल्के-हल्के घाव लगे थे । गढ़ की मरम्मत जोरों

से प्रारंभ हुई लेकिन उस दिन मेरे आगे अंगरक्षक मारे गए ।

ध्वस्त जसकोट आज अपनी इमशानवत् अवस्था में विजय का आनन्द उठा रहा था । वह ऐसी विजय थी जिस पर शाही फौज की पराजय भी हंस रही थी । सिर्फ अब मेरे पास ६ हजार सैनिक थे बाकी या तो घायल थे या मारे जा चुके थे ।

*

*

*

इस विजय के पश्चात् पाँच दिनों तक हमारे सैनिकों ने काफी नौद ली ।

परन्तु इन पिछले पाँच दिनों से एक नई चीज देख रहा था । वह थी माँ की अवस्था । उसका रंग सफेद होता जा रहा था और चेहरा मुर्झा रहा था । दिन रात वह गीता ही पढ़ती रहती.....।

‘माँ.....!’ मैंने उसे पुकारा ।

उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से मेरी ओर देखा और मौन रही ।

मैंने कहा, ‘तुम क्यों अन्दर ही अन्दर घुट रही हो । मुझे बताती क्यों नहीं ? मैं क्या तुम्हारा दुश्मन हूँ ?’

उसने फिर कुछ नहीं कहा । उसकी मौनता मेरे लिए उलझन बन गई थी ।

वह शांत रहती और बहुत कम बोलती । राजवैद्य ने बताया कि राजमाता किसी मानसिक कष्ट से पीड़ित रहती हैं ।

गुप्तचरों ने समाचार दिया कि दिल्ली से नये सैनिक आ रहे हैं जो शाही फौजों से शीघ्र ही मिलकर हम पर आक्रमण करेंगे ।

वही क्रम पुनः प्रारम्भ हुआ । शाही तोपों की दाग पुनः प्रारम्भ हुई । मेरा माथा ठनक गया..... आखिर समझ नहीं आता था कि क्या किया जाए ? अपनी इस अवस्था का ज्ञान किसी को नहीं होने दिया । मैं नहीं चाहता था कि मैं अपने विषाद और चिन्ताओं से दूसरों को दुखी करूँ ।

जसकोट की तोपों ने आग बरसानी प्रारम्भ की । बाढ़ तेज थी

लेकिन उसमें जोश नहीं था । शाही फौजों को हमारे इस नवीन जोश पर आश्चर्य अवश्य हुआ होगा,.....लेकिन उन्हें क्या पता था कि दीपक गायद !.....बुझने से पहले जल जाना चाहता है ।

उसी दिन रनिवास के पूजा घर में मैंने अपनी माँ को गीता पढ़ते देखा । वह बिस्तर से उठ कर यहाँ चली आई थी । उसकी आकृति क्षीण होती चली जा रही थी । जाने वह क्यों मुझसे अपना दुख छिपा रही थी । पूजा घर दुर्ग के बाहरी कक्ष में था ।

‘माँ.....’ मेरे स्वरों में भयानकता और ममता थी । वह गीता पढ़ने में तल्लीन थी और उसे समाप्त कर ही उठना चाहती थी । उसके शांत चेहरे पर जैसे मुझे एक दिव्य ज्योति का आभास होता था । मेरे कथन का इस पर प्रभाव नहीं पड़ा और उसने सिर नहीं उठाया ।

पूजा के इस कमरे के पास ही दुर्ग की बाहरी मुख्य दीवार थी । थोड़ी देर में वहाँ गोले आकर गिरने लगे । मैं भयभीत हो उठा...

‘माँ मौत से जान बूझकर क्यों खेलती हो ?’

उसने सिर नहीं उठाया.....एक गोला वहीं.....कुछ दूरी पर आकर पड़ा । परन्तु उस क्षीणकाय माँ के मुख पर कोई भय नहीं ।

लगातार धीमे-धीमे स्वरों में वह गीता पढ़े जा रही थी । मुझे क्रोध आ गया, मैंने सोचा कि जबर्दस्ती इसे उठाकर अन्दर करदूँ । उस ओर मैं बढ़ा किंतु रुक गया ।

उत्तरी दरवाजे की ओर मैं बढ़ा किंतु मेरे पैर उठते न थे । रुक-रुक जाते थे । दुर्भाग्यवश इस पूजा घर की ओर ही शत्रु पक्ष के गोलों की दाग बढ़ रही थी । मेरा हृदय डाँवाडोल स्थिति में था । माँ की ओर मैं फिर मुड़ा ‘सुनती भी हो या वहरी हो गई ।’

उसके सिर पर जूँ तक न रेंगी । वह शांत भाव से अपने पाठ में लीन थी ।

आश्चर्य हुआ.....गीता में आखिर ऐसा क्या था जो मौत के कगार पर जाकर भी उसका पीछा नहीं छोड़ना चाहता था । इस

स्त्री का ईश्वर और धर्म में अगाध विश्वास था । गीता तो सदैव उसके पास रहती थी । इतने में ही मैंने देखा कि गोलों के आघात से पूजा घर की दीवार तड़क गई है । दीवार के गिरते ही छत के गिरने का भय था, और छत के गिरते ही वह कैसे बच सकती थी ?

लेकिन जैसे उसका ध्यान परमात्मा में था उसी तरह उसने अपनी अक्ल भी शायद परमात्मा के पास जमा करा दी थी । दीपशिखा के प्रकाश में माँ का विश्वास अपनी जड़ें छोड़ना नहीं चाहता था । गोलों की बौछार बढ़ती ही जा रही थी ।

मैंने कहा, 'माँ ! दीवार गिरने ही वाली है ।'

उसे उठाने के लिए मैं आगे बढ़ा किंतु धीमे-धीमे स्वरों में वह गीता पढ़े ही जा रही थी । इतने में ही एक गोला वहाँ आकर गिरा । मेरा धैर्य टूट गया । उसे उठाने में जबरदस्ती बढ़ा.....दीवार हिल उठी थी । उसने मेरी ओर देखा, उसकी आँखों में अगाध विश्वास, दृढ़ता और निर्भयता थी । उसने स्पष्ट और धीमे स्वरों में कहा 'बेटा जब तक सारी गीता समाप्त नहीं हो जाती मैं नहीं उठूँगी ।' इसके बाद पुनः वह अपने कार्य में लग गई ।

'जब किसी के सिर पर मौत आती है तो भला कौन क्या कर सकता है ?'

*

*

*

मैंने सदर दरवाजे की तोप सम्हाली परन्तु मेरा मन उस ओर नहीं लग रहा था । गीता के धीमे-धीमे स्वर जैसे मेरे समक्ष गूँज से रहे थे । उसी समय उस दरार का स्मरण हो आया जो कि दीवार में पड़ गई थी.....

दरार क्या थी ?.....जिदगी में मौत की लकीर थी ।

दीवार....की दरार.....

माँ की निर्भयता.....आश्चर्य हो रहा था ।

समझ नहीं पाया कि आखिर उसकी इस निर्भयता में कौन सी

बहादुरी थी ? साँप के बिल में उँगली डालने में भला कैसा साहस ?

जाकर देखा तो आसन जमाए वह पाठ करे ही जा रही है । मैंने माथा ठोक लिया । परमात्मा का हाथ कोई नहीं पकड़ सकता । मैं आकर सो गया ।

सबेरे अपने सेना नायकों को मैंने जमा किया, वे सिर्फ चार ही थे । समस्त सेना वा ये ही संचालन कर रहे थे । भारी करुणा का भाव सबमें समाया था । सलाह करने के बाद हम पुनः छुट गए । वातें करने का समय नहीं था, शाही सेनाओं का वेग दिन प्रति दिन तीव्र होता जा रहा था । न तो मेरे पास अधिक बारूद ही रह गया था और न ही कुशल तोपची । सैनिक भी थोड़े से ही थे । उधर शाही फौज में नया जोश था । उसी दिन राजवैद्य दोपहर को मुझसे मिला । उसने कहा 'राजन् बहुत दिनों से आपसे मैं बात करना चाहता था ।'

'कहिये ।'

'राजमाता की हालत चिंताजनक है ।'

'वह तो मैं देख रहा हूँ ।'

'.....'

'उपाय कीजिए ।'

'मैंने आपको कई बार पहले कहा था ।'

'यहाँ तो स्वयं मेरे प्राण संकट में हैं तो भला मैं किसकी चिंता करता । आप तो देख ही रहे हैं कि एक साल में मैंने कितना आराम किया है ? फिर यह तो आपको देखना था ।'

'मैं तो देखता था किंतु राजमाता तो मेरी उपेक्षा करती रही हैं ।
...उनका रोग भयानक है ...बचना असंभव है ।'

'ऐं.....' मेरा सिर चक्कर खा गया ।

'राजन् आपको मेरी सहायता करनी होगी ।'

'कैसे ?'

'उन्हें कोई मानसिक पीड़ा सता रही है ।'

‘.....।’

‘उन्हें कोई मानसिक पीड़ा सता रही है। आप ही उनके सबसे अधिक आत्मीय हैं आपको ही वे बताएँगी।’

‘गीता से उसे फुरसत मिले तो मुझसे वह बात करे न।’

‘नहीं राजन् ! कुछ उपाय करना ही होगा।’

‘आप उनके मानसिक क्लेश का निवारण कीजिए . . .।’

राजवैद्य को आश्वासन देकर मैं तोपों की ओर बढ़ गया।

सेना नायकों से मिला।

मैं ने आखिर गीता समाप्त हो कर डाली। पूजा घर की दीवार तड़क गई लेकिन गिरी नहीं। वह दरार ऐसी प्रतीत होती थी मानो कि काले बादलों में बिजली की रेखा हो अन्तर केवल यही था कि दीवार सफेद थी बादल काले होते हैं दरार काली थी जबकि बिजली सफेद होती है। केवल आकार की साम्यता एक दिन संध्या को वह . . . गीता पढ़ रही थी उसके श्लोक बार-बार मेरे कानों में गूँजने लगे श्लोक थे।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति,

शुभाशुभ परित्यागी भक्ति मान्यः समे प्रियः,

समः शत्रु च मित्रं च तथा मानापमानयोः,

शीतोष्ण सुख दुखेषु समः संगविवर्जितः।

मैंने सोचा कि यदि अपनी स्थिति मैं भी ऐसी ही रखता तो इतना क्लेश न सहना पड़ता। यह नारी निश्चित होकर दिन रात अपने पाठ में लीन रहती है। जसकोट के दुर्ग पर कितने गोलें आये इसकी बला से, उपरोक्त श्लोकों का आभक्ति रहित होने का उपदेश मेरे समक्ष घूम गया।

सेना नायकों से मिला। वे सिर्फ तीन ही थे। एक समाप्त हो चुका था। हम चारों की आँखें गीली हो गईं। मैंने कहा कल न जाने कौन हममें से मौत के हवाले होता है।

‘राजन् ! हमे अपनी चिन्ता नहीं आप जीवित रहे तो जसकोट की विजय श्री को भला कौन छीन सकता है ?’

मैं उस खुली दालान की ओर बढ़ गया जहाँ माँ बैठी थी ।

‘माँ !’

‘आम्रो बेटा !’ पास ही की एक आसन्दी पर मैं बैठ गया ।

‘तुम सुखती क्यों जा रही हो ?’

‘मुझे मुक्ति मिलने वाली है ।’

‘कैसी मुक्ति ?’

‘संसार के बन्धनों से मैं मुक्त हो जाऊँगी ।’

‘मैं नहीं समझा ।’ मेरे स्वर में घबराहट थी ।

‘मैं अधिक नहीं जीवित रह सकूँगी ।’

‘गीता पढ़ पढ़ कर तुम्हारा दिमाग धूम रहा है ।’

‘नहीं बेटा सच कहती हूँ ।’

‘माँ इन बातों को छोड़ो ।’

‘ईश्वर सब सोच समझ कर ही करता है ।’

‘ईश्वर की सोच समझ का ठेका तुमने ले लिया है’ मैं व्यंग से हँस पड़ा । सागर का वाक्य याद आ गया—

‘यदि देवी देवताओं ने ही भारत की रक्षा की होती तो भारत विदेशियों से पदाक्रांत क्यों होता ?’ मैंने कहा ।

‘हम पर तो परमात्मा की विशेष दया है ।’

उसने कहा—

‘हैंम बोले रघुवंश कुमारा, विधि का लिखा कुमेटन हारा ।’

‘तुम तो मुझे गीता और रामायण ही पढ़कर बताया करो माँ, दुनियाँ की हर चीज बातों से पूरी नहीं होती ।’

‘बेटा ईश्वर की इच्छा को हम और तुम नहीं समझ सकते ।’

‘नो यह जो हम पर सब बीत रहा है वह क्या सब अच्छा है ?’

‘अच्छा है या बुरा मैं क्या बताऊँ ?’

‘माँ इस कोरी भावुकता में कुछ नहीं रखा उठो और आत्मविश्वास को दृढ़ करो; दुनिया में जीना सीखो ।’

‘बेटा मैं कैसे जी सकती हूँ जबकि मेरा भविष्य मेरे सामने है ।’

‘तुमको यह कैसे पता ?’

‘इसका पूरा-पूरा आभास मुझे हो गया है ।’

‘इसी कारण तुम बेकार घुलती जा रही हो ।’

‘यह सब ईश्वर कर रहा है ।’ आंभी और तूफान से भरे मस्तिष्क को लेकर यह सब बकवास मैं सुनता रहा, ‘ईश्वर का लोक इस संसार सा नहीं है । दुनियां का झूठ फरेव वहाँ नहीं ।’ इसके बाद उसके मुख पर अलौकिक सी शांति छा गई । उस दिन मुझे दिखा, परलोक हो या न हो किंतु उसका सुख आदमी में कौसी आत्मशांति ला देता है । मैंने कहा ‘मां तुम्हें क्या मेरी सफलता पर विश्वास है ?’

‘ये मैं कैसे कहूँ ? अपना काम अधिक से अधिक उत्तमता एवं ईमानदारी से करो अधिकधिक परिश्रम से करो फल का देने या न देने वाला तो ईश्वर है ।’

‘देखते ही देखते सारा जसकोट ध्वस्त हो गया । सारे सैनिक मारे गए अनाथों और विधवाओं का क्रन्दन हृदय हिला दे रहा है । क्या अपनी ओरसे शत्रु से लड़ने में मैं कम मेहनती या ईमानदार रहा ! क्या मिला उसका फल ? यही उसका फल है और यही उसकी दया है ?’ मैं कहता गया ।

‘ईश्वर को मत गाली दो । इसके लिए तो हम स्वयं ही जिम्मेवार हैं ।’

‘तो बताओ न मेरा क्या अपराध है ?’

‘इसका दोषी मैं तुम्हें कैसे ठहराऊँ, यह तो मनुष्य मात्र का दोष है ।’

‘कैसे ?’

‘ईश्वर की दया को भुलाकर हम आपस में लड़ते हैं, भगड़ते हैं उसका फल तो भोगना ही होगा ।’

‘तुम्हारी बातें मेरी समझ के बाहर हैं । अपना इलाज कराओ’

इतने में ही गोला दालान में हट कर गिरा मैं तो उठ गया लेकिन माँ गीता पढ़ती ही बैठी रही ।

रोज सेनानायकों से मिलता, विषाद और उत्साह का कुछ अजीब-सा समन्वय रहता । जैसे-जैसे वारूद समाप्त हो रहा था, वैसे-वैसे ही हमारी ओर से गोलाबारी का वेग भी प्रखर होता जा रहा था ।

माँ की दशा काफी कमजोर हो चुकी थी । अब वह चारपाई पर ही पड़ी रहनी । उसकी गीता उसके पास ही रहती । श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन को क्या उपदेश दिए । उस कूटनीतिज्ञ ने देखा कि यदि अर्जुन ने युद्ध नहीं किया तो ये १८ अक्षौहिणी सेना के रूप में जो पापी जमा हुए हैं फिर अलग हो जाएँगे और फिर उपद्रव करेंगे । बेहतर यही है कि सब मारे जाएँ । अर्जुन को युद्ध के लिए तत्पर करना तो निमित्तमात्र था । गीता का दर्शन भी क्या था ? शांति की उपज थोड़े ही . . . युद्ध से पहले दिया गया फिर भी गहन और महान ।

माँ की स्थिती देख कर मेरी चिन्ता बढ़ गई । वह दिन पर दिन सूखती जा रही थी । मैं उसके मुक्ति के इस भूठे विश्वास को समझ नहीं सका । संध्या के पश्चात् मैं उसके पास पहुँचा । मुस्कराहट की भीषण छाया उसके मुख पर मैंने देखी । वह तो उसकी मृत्यु की मुसकान थी । उसकी हँसी में मृत्यु थी ।

‘बेटा !’ उसके स्वरों में ममता और भयानकता थी ।

‘कहो माँ’

‘बेटा’

‘माँ कहती क्यों नहीं तुम्हें क्या कहना है ।’

‘बेटा क्षितिज पर रक्तितम वर्ण का कुमकुम देख रहे हो न !’

मैंने बाहर देखा तो क्षितिज पर तो अन्धेरा था वहाँ कहीं की लाली ।’

‘वहाँ तो अन्धेरा है माँ वहाँ कहीं की लाली ?’

‘सामने नहीं देखते हो ।’

‘माँ वहाँ तो अन्धेरा है तुम कहाँ संकेत कर रही हो ?’

‘बेटा वह सामने देखो.....लाल, लाल !’

और उसने क्षितिज की ओर इशारा कर दिया । मैंने देखा कि प्रकोष्ठ की खुनी बिड़की से काला आकाश ही दृष्टिगत हो रहा है ।

लगता था जैसे कि क्षितिज पर जसकोट का भविष्य अन्धकार बन कर फैल गया हो ।

‘माँ तुम पगली हो गई हो क्या ?’

उसने फिर कहा, ‘लाल . लाल ! कितना भयानक ! कितना सुन्दर....!’

मैंने मन ही मन कहा ‘यह कैसा विरोधाभास ?’ मैंने क्षितिज की ओर आँखें गड़ा दीं । मेरा गला भारी हो गया । मैंने कहा, ‘माँ तुम्हारी चेतना कहीं खो गई है ?’

‘बेटा !’

उसी समय राजवैद्य मुझे वहाँ से हटा ले गया । उसने कहा, ‘राजन् ! राजमाता अचेतनावस्था में हैं ।’

मुझे क्रोध आ गया । मैंने कहा, ‘आपने अभी तक क्या किया ? क्या घास छील रहे थे ?’

राजवैद्य का चेहरा तमतमा गया, ‘राजन् ! संसार में जिसका समय आ जाता है उसे कोई नहीं रोक सकता ।’ यह कहकर वह तीव्र गति से चला गया । मुझे स्थिति की स्पष्टता दिखाई दे गई ।

उधर गोलों के स्वर रह-रह कर गरज उठते थे ।

*

*

*

माँ अब चारपाई से हिल भी नहीं सकती थी । उसने चलना-फिरना भी बन्द कर दिया था । इधर एक दो दिनों से उसकी हालत में सुधार

दिखाई देने लगा था । लगता था कि खोई हुई ज्योति पुनः लौट आई है । पहले तो वह उठकर बैठ भी नहीं सकती थी । अब वह उठकर बैठती ही नहीं थी बल्कि छोटे-छोटे कार्य भी करती थी ।

उसके चेहरे पर मुस्कराहट की रेखाएँ स्पष्ट थीं । मैं उसके पास गया । उसने कहा, 'बेटा ! तुम तो काफी अक्लमंद हो ।'

'क्यों ?'

'तुम पूजा क्यों नहीं करते ।'

'मैंने जो अभी तक किया क्या वह किसी पूजा से कम है । एक साल से रात और दिन एक कर दिया है । कभी नींद नहीं ली । जान पर खेल कर अपनी स्वतन्त्रता को कायम रख रहा हूँ, क्या यह किसी पूजा से कम है ? यदि इससे भगवान नहीं खुश होता तो न हो... न तो मुझ उस पूजा की ही विता है और न उस भगवान की ! क्या तुम्हारे या मेरे सिर्फ गीता पढ़ते रहने से, घंटे-घंटियाँ हिलाने से औरंगजेब हार जायगा ?'

'बेटा ! सुबह-शाम कभी तो हाथ लगा लिया करो ।'

'क्या फायदा ?'

'मन को शान्ति मिलती है ।'

'वह अकर्मण्यता है ।'

इसके बाद मैं वहाँ से मुड़ गया । गीता के वही श्लोक फिर मेरे कानों में पड़े ।

मैंने कहा यह स्त्री आकांक्षारहित है । राजवैद्य को मैंने बुला भेजा । उससे तबियत पूछी । उसका चेहरा मलीन-सा हो गया । मैंने कहा, 'माँ की तबियत तो काफी सुधर गई है ।'

धीमे एवं संयत स्वर में उसने कहा, 'राजन् ! लक्षणा ठीक नहीं हैं ।'

'तो क्या सुधरने के चिन्ह नहीं हैं ।'

'नहीं ।'

मैं समझ गया कि दीपक बुझने से पहले एक बार प्रज्ज्वलित हो जाना चाहता है ।

दूसरे दिन माँ के पास मैं पुनः पहुँचा । दीपशिखाओं के प्रकाश में उसका चेहरा दमक रहा था । अपने सामने उसने सारी निजी सम्पत्ति रखी थी और दास-दासियों को वह दान कर रही थी । जिनके पति युद्ध में मारे गये थे, उन्हें उसने अपने सारे गहने बाँट दिये । उसके पास रह गये गीता और एक चित्र !

‘तुमने यह क्या किया माँ !’

‘क्या करना है बेटा !’

‘क्यों ?’

‘अगले लोक में तो शरीर भी साथ नहीं देगा ।’

‘फिर तुम पागलों जैसी बात करने लगीं ।’

‘नहीं बेटा ! यह सत्य है । इस कटु सत्य के भार को वहन करना ही होगा ।’

विषाद के गहरे भावों को लेकर मैं लौटा ।

‘उदय !’

‘क्या है ?’

‘आज तुमसे मुझे जरूरी बातें करनी हैं ।’

‘कैसी जरूरी बातें ?’

‘आज के बाद शायद तुम से न बोल सकूँ ।’

‘क्यों ?’ मेरा गला भारी हो गया । उस समय कमरे में सिर्फ हम दोनों ही थे । उसने कहा, ‘कमरे का दरवाजा बन्द कर दो ।’

मैंने कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया ।

‘उदय...’ उसके स्वर में गहरी शांति थी ।

‘माँ ! तुम्हें इस तरह तंग करके क्या मिलेगा ?’ मेरा गला भर आया ।

‘बेटा ! मैं जानती हूँ कि यदि तू शाही फौजों के लिए वज्र-सा कठोर है तो मेरे लिए मक्खन-सा नरम है ।’ उसने गहरी साँस लेकर फिर कहा, ‘बेटा ! यह सब ईश्वर की इच्छा है । भला हमारे-तुम्हारे करने से क्या होता है ? देखो अपनी सारी निजी सम्पत्ति तो मैंने दान कर दी ।’ -

‘जानता हूँ ।’

‘मेरे पास अब वे ही चीजें हैं जो अन्त समय तक मेरे साथ रहेंगी । तुम जो कुछ भी कहना चाहते हो आज कह लो ; मेरा जीवन अब असम्भव है । इसका मुझे स्पष्ट पता लग गया है ।’

‘माँ.....पागल.....सरीखी.....’

उसने मेरी बात काट कर कहा, ‘उदय ! तर्क मत करो, जो मैं कहती हूँ भगवान के लिए उसे सुन लो । यह देखो चित्र किसका है ?’

मैंने चित्र का आवरण हटाया । देखा, किसी की तरुणावस्था का चित्र था ।

मैंने कहा, ‘मुझे पता नहीं किसका चित्र है ?’

‘यह तुम्हारे पिताजी का चित्र है ।’

‘पिता जी.....’ मैं चौंका । ‘वे तो वीरगति को प्राप्त हुए थे न ।’

‘लोग ऐसा कहते हैं किन्तु मुझे विश्वास नहीं । आज से पच्चीस वर्ष पहले तुम्हारी अवस्था जब केवल एक ही वर्ष की थी, उस समय शाहजहाँ की सेनाओं ने जसकोट पर आक्रमण किया था । उस समय उन सेनाओं को बुरी पराजय मिली थी । शाहजहाँ की ओर से कालिंजर का अधिपति लड़ रहा था । वह मारा गया । चदेरी के राजपूत भड़क गए तब से पता नहीं लगा कि तुम्हारे पिता जी का क्या हुआ । मेरा विश्वास है कि चदेरी के राजा को इसका जरूर पता होगा । यदि युद्ध से तुम बच रहो तो उनका पता अवश्य लगाना ।’

इसके बाद उसने सिर से साड़ी का पल्ला हटा दिया । सफेद बालों में सिद्धर की रेखा बिजली की तरह चमक उठी । ऐसा लगा कि प्रतीचि

के तट पर अस्त सूर्य की लालिमा बिखर गई हो । उसने कहा, 'बेटा ! मह ख्याल रखना कि मेरा सुहाग अमर है ।'

इसके बाद उसने पिताजी की राजमुद्रा मुझे दी और कहा, 'ये लो उनकी राजमुद्रा !' मैंने उसे गौर से देखा और रख लिया । मैंने कहा, 'माँ ! इस बात को तुमने अभी तक क्यों छिपा कर रखा ?' वह मोन रही । मैंने फिर कहा, 'माँ ! अब तो काफी देर हो गई है । इसकी चिंता तुम्हें पहले करनी थी । तुमने गुरुतर अपराध किया है । इसका फल भोगना ही होगा ।'

'नहीं बेटा ! मेरा अपराध नहीं है ।' इसके बाद वह रो पड़ी । मेरी आँखों में आँसू आ गये ।

'बेटा ! तुम अवश्य विजयी होगे ।'

'माँ ! छोड़ो इन बातों को । विजय के लिए कुछ भी बाकी नहीं रह गया है ।'

इसके बाद उसका चेहरा सहसा फीका होने लगा ।

मैं भय से काँप गया दरवाजा खोलकर राजवैद्य को बुलाया । आँखों को पोंछ कर सदर दरवाजे की तोप की ओर बढ़ गया ।

इसके बाद माँ की बोलने की शक्ति जाती रही । वह सदा अचेत ही रहने लगी । मेरी समझ में नहीं आता था कि आखिर क्या किया जाय ? अन्तर्द्वन्द्व बढ़ता ही जा रहा था ।

मैं माँ के पास बैठा था । राज परिवार की अन्य महिलाएँ भी थीं । माँ ने आँखें खोलीं और चारों ओर विस्फुरित नेत्रों से देखा । मैंने कहा 'माँ !'

उसने कुछ जबाब नहीं दिया । वह हर किसी को आँखें फाड़-फाड़ कर देख रही थी । मैंने उसे हिलाया ।

'माँ . . . बोलो . . . भी तुम्हें क्या हो गया है ?'

उसने मेरी ओर देखा तक नहीं ।

‘बे बेहोश हैं ।’ राजवंध ने कहा ।

उसका मिर एक ओर लुढ़क गया, आँखें बन्द हो गईं ।

महिलाएँ, दास एवं दासियाँ चीख उठे । राजवंध मुझे पकड़ कर बाहर ले आया । उसने कहा, ‘राजन् ! हो चुका जो होना था ।’

‘क्या हो चुका ?’ मैं पागलों की तरह चिल्लाया ।

‘राजमाता अब जीवित नहीं रहीं ।’

‘कुछ करो कुछ हो नहीं सकता वह जीवित है’

‘अब क्या होगा ?’

मैं पागल सा हो गया । विश्वास ही नहीं होता था कि मेरी माँ इस संसार में नहीं है । सेनानायकों और सामंतों ने मुझे सम्हाला । मैंने राजवंध के दोनों कंधे हिलाकर कहा—

‘उसे कोई दवाई दो उसे जीवित करो वह जिन्दा है’

*

*

*

आज मुझे पता लगा कि यमुना के प्रशांत जल पर मेरे निश्चल हाथों पर अपना सिर रख कर निसा क्यों रोई थी ?

आज मुझे पता लगा कि सुबरैय्या क्यों उदास हुआ था ? दूसरे के दुखों का वास्तविक अनुभव तभी होता है जब वे हमारे हो जाते हैं । माँ के साथ उनकी सारी वस्तुएँ जला दी गईं । रात्रि के प्रथम प्रहर के समाप्त होते-होते यह सब कुछ हो गया ।

आधी रात को मैंने काकी को बुलाया और कहा :

‘काकी . . . इतना हमारे पास न तो समय ही है और न ताकत कि हम शाही फौजों का सामना करें । सदर दरवाजे पर शाही गोले जितने वेग से आ रहे हैं हम उसका उत्तर नहीं दे पा रहे हैं । फाटक के टूटते ही शत्रु अन्दर घुसेंगे . . . बस जसकोट की ओर से यही हमारा अन्तिम

युद्ध होगा • • 'हमारी विजय तो कठिन है ही साथ ही यह भी पता नहीं कि हम बचेंगे या नहीं । उस समय तुमको व राजपरिवार के अन्य सदस्यों को मैं यों ही न मरने दूँगा । जसकोट की स्वतंत्रता भले ही मिट जाय किंतु मैं भविष्य पर पानी नहीं फेरना चाहता । मैं समझता हूँ कि विश्वासी सामन्तों एवं दासों को लेकर तुम गुप्त द्वार से निकल जाओ ।' अपने भाई से मेरा संकेत चचेरे भाई की ओर था जिसकी अवस्था चार वर्ष की थी । काका जी की मृत्यु तीन वर्ष पहले हो चुकी थी । जब तक मैं छोटा था तो राज्य संचालन उन्होंने ही किया था ।

काकी ने कहा, 'नहीं बेटा ! यह नहीं होगा । मैं अन्तिम समय तक तेरे साथ रहूँगी । । अभी तक तेरे सुख ही मेरे सुख रहे हैं तेरे दुख ही मेरे दुख रहे हैं । तुझमें ही मैंने अपना साकार रूप देखा है । अन्तिम समय तेरा साथ मैं भला कैसे छोड़ दूँ ?'

'काकी, आपको मेरा साथ छोड़ना ही होगा । आँखों में आने वाले आँसुओं को पोंछना ही होगा । मेरे लिए नहीं जसकोट के लिए । जसकोट के भविष्य के लिए तुम्हें यह करना ही होगा ।'

उस बूढ़ी ने आँसू पोंछते हुए कहा कि 'मैं कहीं नहीं जाऊँगी यहीं रहूँगी । तेरे साथ ही मेरा जीवन है ।'

'काकी, तुम्हारा जीवन मेरे लिए नहीं जसकोट के लिए है । मेरा जीवन तो समाप्त हो चुका है । उदय मिट गया । उसका अस्तित्व कहाँ यह तो उसका प्रेत है । प्रेत के साथ रहकर क्या करोगी ?'

'बेटा ! पागल की सी बातें क्यों कर रहा है, आखिर तुझे क्या हो गया है ?'

'काकी ! मुझे कुछ नहीं हो गया, तुम्हें जाना ही होगा । तोपें गरज रही हैं । देर मत करो । शायद रात समाप्त होते-होते हमारी स्वतंत्रता भी समाप्त हो जाएगी • • • वह अपना दम तोड़ देगी । कल की ऊषा अपने साथ अतीत की हँसी न ला सकेगी । • • • जो अभी तक जसकोट को नवजीवन और नवचेतना प्राप्त कराती थी । कल निराशा भीषण

अट्टहास करने वाली है ।’

‘बेटा जहाँ तू है वहाँ मैं भी । जहाँ तेरी मृत्यु होगी वहीं मेरी भी मृत्यु होगी ।’

‘काकी ! पागल-सी बातें न करो । तुम्हारी मृत्यु से जसकोट के भविष्य की स्वतन्त्रता को कोई सहारा नहीं मिलेगा । मेरे लिए मरने की अपेक्षा तुम्हारा जसकोट के लिए जीवित रहना ही आवश्यक है । तुम्हारा जीना ही अधिक श्रेयस्कर है । तुम्हें, मुझे नहीं, जसकोट को देखना है । जब तुम मृत्यु से नहीं डरती तो जीवित रहने से क्यों डरती हो ?’

तोपों के स्वर बढ़ते जा रहे थे । जसकोट की भव्यता खंडहर होती जा रही थी ।

‘बेटा ! तुम्हें मृत्यु के मुँह में फँककर मुझसे कैसे जीवित रहा जा सकेगा ?’

‘काकी...तुम्हें जीवित रहना ही होगा । तुम नहीं मानोगी तो मुझे जबरदस्ती करनी होगी ।’

इसके बाद मैंने तीन विश्वासी सामन्तों को धुलाया । उन्हें सारी स्थिति मैंने समझा दी । मैंने कहा, ‘यदि मैं नहीं रहा तो मेरे बाद यह चार साल का राजकुमार ही जसकोट का शासक होगा । . . . यह जसकोट का भावी शासक है ।’

उस समय गहरी उदासी छाई थी । मेरी आँखें क्रोध और पागलपन से जल रही थीं । गुप्त मार्ग का दरवाजा खुला और वह दल उसमें घुस पड़ा ।

मैं उस रात को सो गया । रात को मैंने स्वप्न देखा कि एक स्त्री श्वेत वस्त्रों में बिखरी केशराशि में रामायण पढ़ रही हैं । अचानक एक गोला फटा और मेरी नोंद खुल गई । मैं उठ बैठा, सबेरा हो रहा था । दुनिया को क्या पता कि यह रात मेरे लिये कैसी थी ?

दीवाने-खास में मैंने सेना नायकों को एकत्रित किया । सहसा पता

लगा कि बारूद सारा समाप्त हो गया है । और न ही उसके बनाने के सामान हैं । तोपों के मुँह ठोक देने की मैंने आज्ञा दे दी ।

दूसरे दिन हमारी ओर से तोपों की दाग बन्द हो गई । शत्रुपक्ष से पूर्वी भाग पर गोलों की बीछार तीव्र हो गई । हमारे पास जवाब देने के लिए बारूद नहीं था । और उस ओर शत्रुपक्ष के गोलों की बीछार बढ़ रही थी ।

लेकिन संध्या को . . .

पूर्वी दीवार का बहुत सा भाग शत्रुपक्ष के गोलों ने गिरा दिया । गिरी हुई दीवार देख कर शाही फौज के समस्त सैनिक उस ओर हल्ला मचाते हुए दौड़ने लगे . . .

मैंने बुर्ज से देखा ‘‘और देखता ही रह गया । शत्रु पक्ष के सैनिक चींटियों की तरह चढ़ रहे थे ।

मेरे पास सिर्फ मुट्ठी भर सैनिक थे । मुठभेड़ लेना कठिन था ।

समझ गया कि यह ‘‘अन्तिम मुठभेड़ है . . .

अपनी पगड़ी का अपना राजमुकुट मैंने धारण किया . . .

सारे दुर्ग में खलबली मच चुकी थी । राजकवि ने मेरा मुकुट छीन कर फेंक दिया । क्रोध से मैं उबल पड़ा । मैंने कहा—

‘मेरा अपमान !’

‘नहीं राजन्, आपका अपमान भला कौन कर सकता है ? राजकवि अपना नमक पूरी तरह से अदा करेगा । जन्म लेते समय और मृत्यु के समय सब एक से होते हैं । उस समय न तो कोई जसकोट का राजकवि होता है और न राजा । जीवन के अन्तिम क्षणों में राजन् आपको एक राजा नहीं बल्कि साधारण सैनिक के रूप में निकलना होगा । मुकुट से आप पहिचाने जाएँगे । तलवारें पहले आप पर पड़ेंगी व्यर्थ मारे जायेंगे, क्या लाभ होगा ?’

‘यह तो मेरा अपमान होगा ।’

‘यदि आपके लिए यह अपमान ही है तो अपमान ही सही ।’

‘...मान से ऐसा अपमान लाख दर्जे अच्छा है जिसमें भविष्य की सुरक्षा निहित है । मान और अपमान की आपकी भावना इस समय केवल भ्रमात्मक ही है । यह भावुकता है राजन् ... एक मानसिक दुर्बलता ।’

राजकवि की बात मुझे भली लगी और मैंने सैनिक वेशभूषा ही धारण की ।

पूर्वी दीवार के गिरे भाग पर आक्रमण होते होते पूरी तरह रात हो गई थी और दीवार भी गिर गई थी । शत्रु पक्ष का आक्रमण उधर प्रचंड वेग से हुआ । जसकोट के सैनिकों ने उन्हें भरसक रोकने की चेष्टा की । किले के सारे फाटक मैंने खुलवा दिए ।

मैं अपनी टुकड़ी सहित सदर फाटक से निकल कर किले को घेरता हुआ शत्रु पक्ष पर टूटा । परन्तु उससे क्या होता ?

जसकोट के सैनिकों की तलवारों में आज बिजली उतर आई थी रात के एक प्रहर तक उन्होंने शत्रुओं को दीवार के बाहर रखा । स्वयं जयसिंह की ओर मैं बढ़ने की कोशिश कर रहा था ।

आधी रात के बाद मुगल सैनिक गढ़ में हल्ला मचाते हुए घुसने लगे ।

जसकोट की स्वतन्त्रता ने अपना दम तोड़ दिया....

किले पर मुगल पताका लगा दी गई ।

✱

✱

✱

जीवन की एक कहानी समाप्त हो गई... मित्र, साथी, सखा, सामंत मारे गये । रह गया मैं अकेला प्रारब्ध के थपेड़े खाने को । मालूम नहीं कि मैं कैसे बच गया ? ईश्वर को शायद यही स्वीकार था । शायद मुझे वह यह सब कुत्सित कृत्य दिखाने के लिए जीवित रखना चाहता था । शरीर थका हुआ था । मन भारी था । कुछ स्वर्ण मुद्रायें वैसे

मेरे पास थीं । अपनी तलवार भी थी ।

अकेला ..बिल्कुल अकेला...बढ़ा जा रहा था । उन सेना नायकों का स्मरण हो आया जो जसकोट की सेना की कुछ टुकड़ियाँ लेकर पास ही की पहाड़ियों में समा गए थे ।

एक बार तो अपने अस्तित्व पर गर्व-सा हुआ परन्तु वह क्षणिक गर्व निस्सार था । प्रताड़न, भंभावात और उत्पीड़न से, सैनिक वेश में मैं निकल गया । मैं मरकर भी जीवित था । दूर से मुड़कर एक बार मैंने जसकोट के दुर्ग को देखा । सुदूर पहाड़ियों में प्रेत की छाया लेकर वह खड़ा था । मेरी तन्द्रा भंग हुई और अज्ञात दिशा की ओर मैंने प्रयाण किया । निशा के गहन तम में मैं मन में अन्धड़ और तूफान को लेकर अपना पथ प्रशस्तकर रहा था । जीवन मेरे लिए उस समय अभिशाप था । ईश्वर तो था ही नहीं और...कुमुद...! और उसकी कुल-देवी जो गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाते रहे कि जसकोट की विजयश्री अमर है ।...और यही था अमरत्व ।

चलते चलते पीछे मैंने घोड़ों की टाप सुनी...कान खड़े हो गए... सोचने लगा कि कौन ? यदि शत्रु पक्ष का कोई सैनिक हो तो मौत तो निश्चित थी क्योंकि मुझमें अब इतनी शक्ति नहीं थी कि मैं किसी से मुठभेड़ लेता । स्वर पास आते गए ...

अँधेरे में सामने ही एक ऊँचे से घोड़े पर...एक मूर्ति सामने आ डटी । उसने घोड़े की रास जोर से खींची । घोड़ा दोनों पैर ऊपर कर रुक गया ।

‘कौन ?’ अन्धेरे में उस विशालकाय शरीर को देख कर मैंने पूछा ।

‘सागर...।’

‘ऐं.....।’

‘जी.....।’ उत्तर सुनकर मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ । स्पष्ट था कि इस समय वह यहाँ क्यों आया ?

‘तुम्हारा दिल नहीं भरा...।’

‘मेरा दिल है ही नहीं इसलिये भरने का सवाल ही नहीं उठता ।’

अब तक वह घोड़े से उतर चुका था । उसे देखकर लगता था जैसे कि युद्ध में वह लड़ा ही न हो । उसने कहा ‘राजन्...’

‘छुप रहो विद्रोही.....तुम मुझे मारना चाहते हो न अच्छा मौका है ।’

‘राजन् ! पहले मेरी बात सुन लीजिये ।’

‘सुनने का सवाल ही नहीं उठता...नहीं तो यहाँ आने का तुम्हारा प्रयोजन ही क्या है ?’

‘आप क्या समझते हैं ?’

‘यही कि तुम समय से फायदा उठाना चाहते हो ।’

‘निःसंदेह ।’

‘सागर...शर्म आनी चाहिए...तुम्हें मुझे मारना ही...’

‘राजन्, आपको भला कौन मार सकता है ? किसकी शक्ति है ?’

‘तुम्हारा मतलब...।’

‘मैं आपके पास आया हूँ समय का फायदा उठाने । आप यह घोड़ा लें और सहर्ष आराम से चले जाएँ ।’ यह कहते हुए उसने मेरी ओर अपने घोड़े की लगाम बढ़ाई ।

‘मैं तुम्हारी दया का भिखारी नहीं हूँ ।’

‘राजन् तर्क का समय नहीं है । सवार आपकी खोज में हैं । मैं भी एक ऐसा ही सवार हूँ जिसे आपकी खोज के लिए भेजा गया है ।’

‘सागर . . . इस दया को अपने पास रखो . . . दिन हर किसी के आते हैं । समय आने पर तुमको भी पता लग जाएगा कि तुमने जो किया है उसका ठीक-ठीक परिणाम क्या होता है ?’

‘राजन् ! इन बातों के लिये मेरे पास समय नहीं है आप यह घोड़ा लें और शीघ्र ही यहाँ से निकल जाएँ ।’

मैं सोचने लगा...आखिर विद्रोह करने के बाद भी इसे मुझसे क्यों सहानुभूति है ?

‘तुम से जब घोड़े के लिए सवाल किया जाएगा तो क्या उत्तर दोगे ?’

‘कहूँगा...थका हुआ था...ऊँचाई से कूदते वक्त गिरकर मर गया...।’

‘झूठ बोलने की कला तुम्हारी नस-नस में समाई है ।’

इतने में ही घोड़ों की हल्की सी पदचाप सुनाई देने लगी । सागर ने पीछे देखा.....

‘राजन् ! जल्दी कीजिए.....।’

‘सागर.....तुमसे मौका आने पर जी भर कर बदला लूँगा ।’

‘एक बार नहीं सौ बार लेना.....लेकिन अभी तो घोड़े पर चढ़ जाइए...समय नहीं है।’

मैंने घोड़े की रास पकड़ी और छलाँग लगाकर ऊपर चढ़ गया । सागर ने घोड़े को देखा...घोड़े ने सागर को...दोनों में मूक वार्तालाप हुआ...और सागर ने अचानक अपना मुँह फेर लिया ।

उसके बाद मैंने घोड़े को ऐंड लगाई...सागर ने फिर आवाज दी ...मैं मुड़ा...घोड़ों की टापों के स्वर पास आते जा रहे थे । उसने कुमुद का पता दिया और व्यंग से कहा ‘जसकोट की देवी मौज कर रही है ।’

यह कह कर वह तेजी से मुड़ा.....

✱

✱

✱

सागर के बताये हुए स्थान पर मैं तीसरे दिन पहुँचा । एक छोटी-सी झील थी । एक खुली सी चट्टान पर मैं लेट गया । सोचता था कि भला कुमुद के पास मैं क्यों जाऊँ ? हल्क-हल्की चाँदनी छिटकी हुई थी अन्मना सा आकाश की ओर देख रहा था । उसी समय मुझे ऐसा लगा

जैसे कि नीचे कोई झील से पानी भर रहा हो । छप...छप...की आवाज सुनाई दी । मैं नीचे आया...

‘कौन ?’

उसने सिर उठाकर मेरी ओर देखा...घूरता रहा । चिल्ला कर कह उठा ‘राजन...’ वह कुमुद के आश्रम का ही एक सेवक था । आश्चर्य से वह मेरे पास आया ।

‘राजन...आप यहाँ कैसे ?...आपकी क्या हालत हो रही है ।’

‘मेरी बात छोड़ो...कुमुद कहाँ है ?’

‘यहीं पास गुफा में...चलिये न वहाँ...’

‘उसे ही यहाँ भेज दो ।’ वह जल्दी-जल्दी डग भरता हुआ चला गया । आकर वापिस उसी चट्टान पर बैठ गया । मैंने सोचा कि बचा लिया शत्रु से अपने आपको आखिर इसने । अपने पूरे आदमियों सहित यह यहाँ पर आ छिपी है । सोच ही रहा था कि पीछे से कोमल आवाज आई, ‘उदय...’

मैं चुपचाप बैठा रहा । वह मेरे पास आ गई और चीख उठी, ‘उदय तुम्हारी यह हालत ।’

‘जसकोट की विजयश्री अमर है...लो देख लो इस विजयश्री को ।’ मैंने व्यंग्य से कहा ।

‘तुम्हारा मुँह सूखता जा रहा है...’ मैं मौन रहा । उसने फिर कहा, ‘बोलते क्यों नहीं ?... मुझे भूल गए क्या ?’ मैं व्यंग्य से हँस पड़ा ‘कुमुद मेरे पास से तुमको क्या मिलेगा । अब तो मैं भिखारी से भी गया बीता हूँ । ...पराजित हूँ...सैनिक मारे गये हैं...तुम्हारी विजयश्री अमर है ।’

‘चिढ़ाओ मत उदय...चाँद पर यदि बादल आ जाएँ तो अमावस्या नहीं हो जाती...मैं अभी भी कहती हूँ कि जसकोट की विजयश्री अमर है ।’

‘जबान तो है...चाहे जिधर हिलालो...’

‘उदय...’ और वह मर्माहत हो उठी ।

‘अब क्या उदय को पुकारती हो...अब वह कंगाल है उससे तुम्हें उपहार नहीं मिल सकते अब ।’

‘मुझे उपहार नहीं चाहिये ‘...’

‘फिर क्या चाहिये ?’

‘उदय...’ सरलता से वह रमणी कह तो गई परन्तु अचानक जैसे उसके स्वर रुक से गए ।

‘अच्छा चलता हूँ ... ।’

‘कहाँ...’ उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा, ‘कहीं नहीं जाने दूँगी ।’

‘कुमुद अब उदय को रोककर क्या करोगी ? उसका मार्ग छोड़ दो जिसकोट छिन गया ... दुनिया में अब रह ही क्या गया ? किसको भला अपना कहूँ ... ?’

‘मेरी हँसी क्यों उड़ा रहे हो ?’

‘मैं उड़ा रहा हूँ ... या तुम मेरी हँसी उड़ा रही हो ।’

‘मुझे जाने दो ... रास्ता मत रोको ... !’

‘यह नहीं होगा ... मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी ... तुम्हारा भविष्य मेरा भविष्य है ।’

‘मैं भिखारी हूँ ... मेरा भविष्य भिखारी का भविष्य है ... तुम्हारे पास तो सम्पत्ति है ... तुम समादृत हो ... इस जीवन और जगत में मेरा कौन है ? ... किसको अपना कहूँ ... ?’ यह कहकर मैं उठने लगा परन्तु वह रो उठी । उसने मुझे जोर से पकड़ लिया । मेरे शरीर में बिजली-सी दौड़ उठी । उसने कहा, ‘उदय ! इस हालत में तुम्हें कहीं नहीं जाने दूँगी ।’

‘तो रोक कर क्या करोगी !’

अश्रुपूर्ण नेत्रों से एक टक मेरी ओर वह देखने लगी । उसका हाथ

पकड़ उसे मैंने एक ओर कर दिया । विचारों की बालुका-राशियाँ मस्तिष्क में बिगड़ती और बनती थीं ।

‘मेरा रास्ता नहीं रुक सकता भले ही तुम्हारे हाथ पिस जाएँ ।’

‘इस प्रेत-सी दशा में कहाँ जाओगे ?’

‘मेरे अन्धकारमय भविष्य से कुमुद आखिर तुम्हें क्या लाभ होगा यहाँ अन्धकार के सिवाय क्या है ? उदयसिंह को तो उस समय ही पकड़ना था जब वह जसकोट का अधिपति था, महलों का स्वामी था । उस समय भव्यता और मादकता उसके महलों में नाचती थी । अब वह पागल है... गरीब है । अब तो उसे मृत्यु ही मुक्ति दे सकेगी ।’

‘उदय ! तुम मुक्ति चाहते हो ?’

‘हाँ ।’

‘वह जीवन और जगत में है ... उसके बाहर नहीं ।’ अब तक वह आवेश में आ चुकी थी और उसके आँसू सूख चुके थे ।

‘तर्क मत करो, अपना काम देखो, मुझे जाने दो ।’

‘यह नहीं होगा ।’

‘होगा कैसे नहीं ?’

‘उदय ! तुम्हारा जीवन मेरा जीवन है ।’

‘फिर वही धुन ... अपने आश्रम की ओर लौटो । उपहार ग्रहण करो और मजे से रहो ।’

‘मुझे उपहार नहीं लेना ।’

आँसू निकलने वाले का दिल तो पिघला ही देते हैं किन्तु देखने वाले का दिल भी पिघला देते हैं भले ही इस बात के अपवाद क्यों न हों किन्तु मेरे लिए तो यह बात शतप्रतिशत सत्य थी । मैं विचार करने लगा उसने फिर कहा, ‘चले ही जाना है तो कल चले जाना ... ऐसी हालत में कहाँ जाओगे ... मुझे ... तुम्हारी सेवा कर लेने दो ।’

मैं नरम पड़ गया । माँ के बाद आज मुझे किसी की ममता मिली थी । इतने दिनों तक सिवाय बारूद, तोप सैनिक आदि के सिवाय कुछ

सुना ही न था और न ही देखा था । मैंने कहा, 'जैसी तुम्हारी इच्छा ।'

मुझे खींचती हुई वह अपने निवास पर ले गई । वहाँ उसने मुझे भोजन कराया ... वह बेहद प्रसन्न थी । आज उसका एक नया रूप मुझे देखने की मिला ।

इसके बाद पराजय की लम्बी कहानी उसे मैंने सुनाई । सुनकर वह रो पड़ी ।

इस रमणी के प्रेम ने मेरे संकट आघे कर दिए ।

*

*

*

दूसरे दिन

प्रभात के प्रथम चरण के साथ ही मैंने अपनी आँखें खोलीं देखा कुमुद मेरे माथे का पसीना पोंछ रही थी । रात गर्मी काफी थी । विषाद की घनी रेखाएँ उसके मुख पर थीं ।

'अब हठ तो नहीं करोगी ?'

'पहले मुँह धो लो ।'

समस्त कार्यों से निवृत्त होकर वह पुनः आई । उसने कहा, 'एक प्रार्थना ।'

'कैसी प्रार्थना ? ... वह तो महान के प्रति होती है ... क्षुद्र के प्रति कैसी ?'

'मेरे पास महान और क्षुद्र पर बहस करने का समय नहीं है— मेरी एक प्रार्थना है ।'

'क्या ?'

'अपने मार्ग पर मुझे भी रखो ।'

'कुमुद अब मैं गरीब हूँ—महान और क्षुद्र का मिलन कैसा ? तुम्हारे पास अतुल सम्पत्ति है ।'

'वह मेरी सम्पत्ति नहीं—जसकोट की है । उसके लोगों की है । मुझे भी क्षुद्र और गरीब बनने का अवसर दो ; अपने साथ रखो ।'

मैं हँस पड़ा। दुनिया तो मरती है महानता और बड़प्पन के लिए पैसों के लिए। यह रमणी पागल हो रही थी क्षुद्र और गरीब बनने के लिए।

‘यह कैसा पागलपन ?’

‘जो कुछ भी समझो।’

‘तुम्हारा क्या मतलब है कि तुम मेरे साथ दरिद्रावस्था में घूमती फिरती रहेगी।’

‘घूमने फिरने का समय कहाँ है ? पहले तो अपना उद्देश्य पूरा करना होगा। फिर दूसरी बात हो सकेगी।’

‘कैसा उद्देश्य ?’

‘जसकोट को स्वतंत्र करने का।’

‘वह स्वप्न है।’

‘स्वप्न—— !’

‘हाँ स्वप्न—जीवन की भव्यावस्था में जब इस स्वतंत्रता की रक्षा न कर सका तो अब भला—उसके बारे में विचार करना भी मूर्खता है—’

‘उस मूर्खसा को ही साकार करना होगा।’

‘इस गरीबी में भला मुझसे क्या हो सकेगा ?’

‘उदय, तुम्हारे पास भले ही कुछ न हो किन्तु मेरे पास जो सम्पत्ति जमा है उससे बहुत कुछ हो सकता है।’

‘उस पर मेरा क्या अधिकार ?’

‘उदय ! कितनी बार मुझे कहना होगा कि यह संपत्ति मेरी नहीं जसकोट की है। समय-समय पर महर्षि को और मुझे लोगों ने जो उपहार दिए वे ही तो सब जमा हैं। मेरा जीवन ही क्या है ? उस सम्पत्ति का भला मुझे क्या उपयोग ? अकिंचन तो मैं हूँ—तुम थोड़े ही—दूसरों के उपहारों पर मेरा जीवन बीता है। तुम तो माजिक

हो उदय ! इस तरह का मजाक क्या मुझ से ही करना था ।' आँखें पोंछती हुई वह वहाँ से चली गई ।

आज इस नारी के स्वरूप का पता लगा । आज पता लगा कि उसके पास हृदय भी है । वह उपहार लेना ही नहीं देना भी जानती है । उसके पास इतनी बुद्धि है कि अपनी ममता का व्यवहारिक स्वरूप वह देख सके । आँखें तो वैसे मेरी भी गीली हो गई थीं लेकिन इससे पहले कि कुमुद उन्हें देखे मैंने उन्हें पोंछ दिया । वह फिर आई—आँखें उसकी लाल थी । उसने फिर कहा—

‘मेरी सम्पत्ति और तुम्हारा साहस ।’

‘स्वीकार है ।’

मैं सोचने लगा...उसने पूछा, ‘जाना नहीं है क्या ?’

‘तुम अभी भी उपहास किये जा रही हो ।’ रुककर मैंने फिर कहा, ‘अब मेरा कौनसा मार्ग ?’

‘तो मेरे मार्ग पर आओ ।’

‘कौनसा है...तुम्हारा मार्ग ?’

‘पहले कहो...स्वीकार है ?’

‘तुम भी अजीब हो—पहेलियाँ बुझाती हो ।’

‘उस मार्ग पर जाकर पीछे लौटना असम्भव है ।’

‘विश्वास तो मुझ पर पूरा है ।’

‘मेरा मार्ग जीवन का मार्ग है । तुम्हारे मार्ग से उसकी दिशा विरुद्ध है । तुम्हारा मार्ग जीवन और जगत के प्रति उपेक्षा सिखाता है तो मेरा मार्ग जीवन और जगत के प्रति मोह सिखाता है । खैर अपने पर तुम्हें विश्वास है यही बहुत है । ...जीवन की चिर शांति का आनंद जीवन और जगत के बाहर नहीं अंदर है । जीवन से दूर जाकर सुख की आशा करना अकर्मण्यता है ।’

‘तुम तो अपना दर्शन अब अच्छी तरह से छाँटे जाओ । तुमको पता है कि मैं तुम्हारी पकड़ में आ चुका हूँ ।’ मेरी बात को अनसुनी

करते हुए उसने फिर कहा, 'संदेह नहीं कि जीवन संघर्ष है और संघर्ष ही उसका निष्कर्ष है परन्तु उसे देखकर डर जाना तो कायरता होगी । संघर्ष के भीतर से तुम्हें निकलना होगा । सफलता और असफलता तो उसके दो पहलू हैं । परन्तु संघर्ष करने वाला असफल होकर भी संघर्षहीन पुरुष से लाख दर्जे अच्छा है ।' उसके शरीर में मैंने एक तरह की स्फूर्ति देखी । उसने फिर कहा, 'राजन्...जसकोट को स्वतंत्र करना ही होगा ।'

‘असंभव !’

‘राजन् ! जहाँ मेरा शरीर बड़ा हुआ । जिस जगह की मिट्टी का पानी मुझमें खून बन समा चुका है...उसके एक-एक कण में मेरी आशाएँ संचित हैं—उन्हें जाग्रत करना है ।’

‘कुमुद ! यह निरी वाचालता है ।’

‘मैं यह मानती हूँ किन्तु यदि तुम्हारी इच्छा-शक्ति प्रबल रही तो संसार की कोई ताकत तुम्हारा हाथ नहीं पकड़ सकती । तुम अपना आधार दो मैं हाथ देती हूँ । तुम भवन का निर्माण करो, मैं सामग्री देती हूँ । इस संपत्ति से ६० हजार सैनिक आठ साल तक पल सकते हैं । तुम्हारा अदम्य उत्साह हो—और मेरे द्वारा एकत्रित संपत्ति । यदि पराधीनता की राख में सुलगते हुए स्वाधीनता के कणों को मैं देख सकती हूँ तो तुम क्यों नहीं देख सकते ?.....’

‘तुम्हें विश्वास है कि मेरा कुछ साहस और तुम्हारी अपार संपत्ति से यह सब कुछ हो सकेगा ।’

‘मुझे पूरा विश्वास है ।’

‘खैर यह भी करके देख लेता हूँ । एक बार पुनः जोर लगाया जाए, उत्थान-पतन ही तो मनुष्य जीवन का क्रम है । पतन से उत्थान और उत्थान से पतन, इसी में तो मानवमात्र का भाग्य भूल रहा है । मैं तैयार हूँ.....फिर भी समय भयंकर है । काफी सोच समझकर चलना होगा, सारा दक्षिण मुगलों द्वारा प्रायः पदाक्रांत हो चुका

है। पराधीनता के इस अंधकार में हमारी यह जुगनु के समान चमक कैसी ?'

उसने मुस्करा कर कहा 'यही मेरा मार्ग है।'

उस दिन कुमुद को मैंने देखा.....और देखा कि वह स्त्री नहीं देवी है। उसके स्नेह ने.....उसकी ममता ने.....उसके प्रेम ने मुझे पिघला दिया।

*

*

*

'तुम्हारे आश्रम पर कोई शाही सैनिक नहीं आया।'

'पता नहीं.....युद्ध छिड़ने से पहले मैं सारी सम्पत्ति सुरक्षित स्थान में रख यहाँ चली आई।'

'तुम्हारे आश्रम का तो मुझे पता नहीं बाकी जसकोट का सारा ध्वंस तो मेरी आँखों के समक्ष ही हुआ।'

उसी समय हवा के झोंके के साथ सूखी पत्तियों के स्वर हवा के साथ शोर कर उठे। वृक्ष से कुछ सुखे पत्ते गिरे। साथ ही कुछ हरी पत्तियाँ भी हिल उठीं। कुमुद ने कहा, 'उदय ! ये हरी पत्तियाँ क्या कह रही हैं।'

'इन हरी पत्तियों में जीवन का अल्हड़पन है। इससे इन्हें गर्व है। और वे सूखी पत्तियों का उपहास करती हैं। उनसे कहती हैं कि क्यों व्यर्थ का शोर करती हो ?'

'और जानते हो कि सूखी पत्तियों का क्या प्रत्युत्तर है ?'

'क्या ?'

'सूखी पत्तियाँ इनसे कहती हैं, कि निःसंदेह हमारा रूप रंग कुछ नहीं है। हम शोर करती हैं लेकिन हरी पत्तियो ! यह बताओ कि तुमने कितने श्रांत पक्षियों को विश्राम दिया है।'

मैं हंस पड़ा।

इसके बाद पहाड़ियों में छिपे अपने सैनिकों को मैंने ढूँढ़ना प्रारंभ

किया काफी कठिनाई के पश्चात् दोनों सेनानायकों से मिल सका ।

गुफा के मन्द प्रकाश में हम बैठे थे । एक दर्जन सेना नायकों में से केवल दो ही बच रहे थे । बाकी नए थे । जसकोट का समस्त समाचार उन्हें मैंने सुनाया और पूछा कि 'अब कितने सैनिक हैं ?'

'पाँच हजार....'

'हम फिर से एक भारी सेना तैयार करेंगे ।'

'सपत्ति कहाँ है ?'

'कुमुद ने देने का वचन दिया है ।' सुनकर प्रसन्नता से उनके चेहरे खिल उठे । उन्होंने कहा 'वह देवी है.....उसकी रक्षा होनी चाहिए..... ।'

'परन्तु उसे तो स्वीकार नहीं ।'

'यह न होगा ।'

इसके बाद मैं कुमुद से मिला । वह सहमी-सी दिखाई पड़ी । मैंने कारण पूछा । उसने कहा 'शाही सवार इन पहाड़ियों का चक्कर लगा रहे हैं ।'

बाहर मैंने घोड़ों की टापों के निशान भी देखे ।

'कुमुद.....मेरे पाँच हजार सैनिक अभी भी इन पहाड़ियों में छिपे हैं । तुम उनके साथ रहो.....उन्हें अपनी ममता दो, अपना स्नेह उन्हें बाँटो । तुम्हारे लिए वे अपने प्राण तक देने को तैयार हैं । आखिर कहाँ तक अपने चार आदमियों के साथ मारी-मारी फिरोगी ।' वह मौन रही । मैंने फिर कहा—

'राजपरिवार के लोगों का भी पता लगाना है । वे गुप्त द्वार से निकल गए हैं । यदि सबको एक दूसरे का पता रहा तो भविष्य में एकत्रित होकर संगठन करने में सरलता होगी ।'

कुमुद ने मेरी बात मान ली ।

उसे सेनानायकों से मैंने मिला दिया । वे प्रसन्न हुए ।

समय खराब था । परिवार के लोगों को ढूँढने की पहले चिन्ता थी । मौका पाकर शीघ्रातिशीघ्र मैं कार्य प्रारंभ करना चाहता था । शाही सेना को मेरे बचाव का पता लग गया था । वह मुझे ढूँढने में व्यस्त थी । साथ ही कुमुद को भी वे ढूँढ़ रहे थे । प्रातः कुमुद से मैंने कहा, 'मैं बाहर जा रहा हूँ—संध्या तक वापिस आ जाऊँगा ।'

मैं चला गया । कुमुद ने अपनी संपत्ति का स्थान मुझे बता दिया । इस रमणी के लिए मेरे हृदय में आदर था । आज वह पाँच हजार जसकोट के विपन्न सैनिकों की माँ थी । आश्रयदाता थी । सब कुछ थी । उसी की संपत्ति पर वे जीवित थे । अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति वे उसी पर करने जा रहे थे ।

शाम को जब मैं लौटा तो वहाँ कोई नहीं था वहाँ घोड़ों की टापों के काफी निशान थे । मैं डर-सा गया कि कहीं कुमुद को पकड़ तो नहीं लिया । उसी समय कोने में मुझे एक पत्र मिला । यह कुमुद का था ।

घोड़ों की टापों के स्वर पुनः सुनाई दिए । सशंक होकर मैं पास ही विशाल चट्टान के किनारे एक झाड़ी में छिप गया । घोड़े को पास ही घनी झाड़ी में छिपा दिया ।

देखा—३०-३५ सवारों का झुण्ड उसके निवास के समक्ष आकर रुका । एक ने कहा, 'अली जी ! कल शाम तक वह यहाँ थी ।'

जिसे यह कहा गया वह उस झुण्ड का नायक प्रतीत होता था । स्पष्ट था कि ये शाही सवार थे ।

सैनिक ने फिर कहा, 'खाँ साहब ! छोकरी गजब की हसीन है ।'

क्रोध से मैंने अपनी मुठ्ठियाँ कस लीं ।

नेता ने कहा, 'दो सवार यहीं पर रुको यहाँ पहरा दो ।

आयगी तो कैद कर लेना । हम आगे ढूँढ़ते हैं ।'

संध्या के धूमिल प्रकाश में वह दल वहाँ से धूल उड़ाता हुआ गायब हो गया ।

अब रह गए वहाँ दो सवार...घोड़े पर बैठ कर मैं उनके सामने

आ गया । मैंने तलवार सम्हाली और गर्ज, 'आओ, मिलाता हूँ तुमको उस हमीना से.....'

'कौन है...तू...'' दोनों सवार चिल्ला उठे किन्तु इससे पहले कि वे तलवार सम्हालते मैंने एक की गरदन पर वार कर उसे धराशायी कर दिया ।

दूसरे सवार ने बात बिगड़ती देखी...तो वह भाग खड़ा हुआ ।

*

*

*

उस जगह से मैं दूर आ गया ।

कुमुद का पत्रा खोला । जिखा था.....

'प्रिय,

शायद तुम्हें आश्चर्य होगा कि कुमुद कहाँ चली गई ? तुम्हारे जाने के पश्चात ही शाही फौज के सैनिकों को यह पता लगा कि शाही फौज के बहुत से सैनिक यहाँ आ रहे हैं । दोपहर तक वे आ जाएँगे । तुमने मुझसे कहा था कि संध्या तक तुम लौटोगे । ऐसी अवस्था में मेरे लिए यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं था । समझकर कि थोड़े समय में ही यह सारा भाग शाही सैनिकों से पदाक्रांत हो जाएगा विश्वस्त सैनिकों के साथ मैं यहाँ से हट गई । सैनिकों ने वैसे भी अपने डेरे यहाँ से उठाने प्रारंभ कर दिए हैं शायद इन के अस्तित्व का शाही फौजों को पता लग कुवा है ।

मेरी प्रगाढ़ इच्छा है कि तुम दृढ़ विश्वास के साथ पग रखते हुए अपना पथ प्रशस्त करो । जगत से उलझ कर भी सुलभ सको । यही मेरी इच्छा है । विजय पथ पर मैं निकल तो गई हूँ किन्तु तुम्हें मेरा सहयोग बराबर मिलता रहेगा ।

'तुम्हारी बंद आँखें और उन पर बहते अश्रुकण मैंने देखे थे । उनकी छाप मेरे हृदय पर आज भी है जिस आन्तरिक देदना को तुम समय समय पर अनुभव करते रहे हो उसे समझने का मैंने काफी प्रयास किया है । समझा भी है । अनुभव करती हूँ कि तुम्हारे भविष्य के जीवन में मेरा

हाथ होगा । सहयोग देना मेरा कर्त्तव्य है । परन्तु भविष्य में अपने मानसिक दुखों का भार हलका करने का सदा प्रयास करना । तुमसे हट कर भी मैं तुम्हारे पास हूँ । जिस मार्ग पर तुम कल अग्रसर होगे उस पर मैं आज ही चली गई ।

‘मैं चाहती थी कि तुम्हारे जीवन में साधक बन सकूँ । मैं जानती हूँ कि तुम दुःखी हो किन्तु दुख का घाव जितना गहरा होगा उतना ही सुख भी सचित होगा । इसी कारण दूर हटकर भी मैं तुम्हारे पास आ गई हूँ । आज तुम्हारे समीप हूँ क्यों कि तुम दूर हो । जिसको मेरी वाणी न व्यक्त कर सकी, उसको मेरे हाथ व्यक्त करने जा रहे हैं ।’

‘तुम्हारी आन्तरिक टीस के प्रति मेरी हार्दिक सहानुभूति है । हमारा लक्ष्य एक है । मार्ग की विभिन्नता से भी उसमें अन्तर नहीं आएगा । मुझे पूरा विश्वास है कि अपने चिर लक्ष्य की ओर तुम बराबर अग्रसर होगे ।’

‘तुम्हारा, तुम्हारे आदर्शों और तुम्हारी साधना का मुझे गर्व है क्योंकि वे मेरे बन चुके हैं । प्रश्न केवल उन्हें पूर्ण करने का है । जाते समय मेरी आँखें गीली थीं । मुझे पता था कि तुम्हें कष्ट होगा । मैं जानती हूँ कि स्नेह के दो शब्द सुनने के लिए तुम्हारे पास कोई आधार नहीं है । परन्तु इस बात की मुझे प्रसन्नता है कि अपने स्वरूप को करने का मुझे पूर्ण अवसर मिल सका ।

‘तुमने मेरे जीवन में आँधी की तरह प्रवेश किया और मुझे व्याकुल भी कर दिया । किन्तु मैं रमणी थी मेरे पास भी हृदय है उदय ! मेरी जिन्दगी की रात में तुम बिजली बन कर द्रुत नर्तन कर उठे । अन्धेरे में, मेरे जीवन में वह प्रकाश फैल गया । परन्तु उसे पाने के लिए जैसे ही मैंने प्रयत्न किया न जाने वह प्रकाश रात बन कर कैसे लीन हो गया ! मैं हाथ मलती रह गई ।

‘मैं तुम्हारे समीप आने लगी थी । डर होने लगा कि कहीं दूर न

हो जाऊँ । अब दूर होकर भी पास हूँ ।

‘मैं सैनिकों सहित राज परिवार का पता लगाऊँगी । इस बारे में तुम निश्चित रहो । अब तुम सैनिक इकट्ठे करो परन्तु कुछ समय के लिए यह प्रदेश छोड़ दो ताकि शाही फौजों को पता लग जाए कि उदयसिंह यहाँ नहीं है । . . . न उसके सैनिक ही हैं इसलिए लोहा लेने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

बस इतना ही !

—कुमुद !’

*

*

*

इस पत्र ने मेरे हृदय में एक हलचल-सी पैदा कर दी । वास्तव में जिसे उसकी वाणी न स्पष्ट कर सकी थी, उसे उसके हाथों ने ही स्पष्ट कर दिया था । उसके पत्र की पंक्ति-पंक्ति मेरे हृदय में स्पंदन पैदा कर देती थी मैं वहाँ से हटकर अन्य स्थान पर चला गया । मेरे पास कुछ सैनिक थे उन्हीं सैनिकों ने बताया कि सागर को और उस विद्रोही सामंत को फाँसी होने जा रही है ।

मेरे समक्ष यह नाम बिजली बन कर कौंध गया । मैंने कहा, ‘मेरे सामने उस विद्रोही का नाम मत लो ।’

सागर और मैं ।

आखिर उसका नाम नहीं लेने को जी चाहता । उसने जसकोट से विद्रोह किया किन्तु आड़े समय पर मुझे सहायता भी दी ।

आखिर क्यों ?

शायद सोचता हो कि उसके विद्रोह को मैं भूल जाऊँ परन्तु उसे पता नहीं कि इस व्यक्तिगत सहायता के लिए सिर्फ मैं ही उसका कृतज्ञ हो सकता हूँ । सारा जसकोट नहीं

यह आखिर मेरे सम्पर्क में आया ही क्यों ? आँधी की तरह मेरे जीवन में आया और उसी तरह निकल भी गया । हट्टा-कट्टा छरहरे

बदन का राजपूत । उसकी बातों में प्रौढ़ता और गंभीरता रहती थी । न जाने क्यों उसकी ओर मैं आकर्षित हो गया इसलिए आज पद्यता भी रहा हूँ ।

मनुष्य जीवन, में जो भी कुछ करता है यह आवश्यक नहीं कि उसके लिए कुछ न कुछ कारण हो या वह उपस्थित करे ।

फिर भी सागर की बातों में प्रौढ़ता और गंभीरता तो रहती थी । जीवन में अनेकों पुरुषों को देखा था । लेकिन ऐसा कोई पुरुष नहीं देखा था । परन्तु अब उससे मेरा क्या संबन्ध ? मैं न जाने व्यर्थ हो उसके बारे में क्यों सोचता हूँ ?

उसका चित्र मेरे समक्ष बार-बार आ ही जाता है । गुप्तचरों ने समाचार दिया है कि उसे फाँसी होने जा रही है ।

उसे विद्रोह करना आता है । मुझसे विद्रोह कर औरंगजेब से जा मिला परन्तु औरंगजेब ऐसे हजारों सागरसिंह को निपटा चुका है । मेरे साथ विद्रोह कर शाही फौजों को उसने मेरा काफी हाल बताया होगा । मेरे सैनिकों ने तो एक साथ चिल्लाकर यही कहा, 'ऐसे धोखेबाज का यही पुरस्कार होना चाहिए ।'

उसे फाँसी होगी । खैर, जो जैसा करता है वैसा फल पाता है । मैं भला क्या कर सकता हूँ ? समझ नहीं आता वह मेरा मित्र था या दुश्मन ।

मनुष्य भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहता है किन्तु नियति को भला किसने रोका है ?

*

*

*

'चित्रकार'

'राणा'

'ऐसा चित्र बनाओ ।'

'कैसा ?'

‘चित्र ऐसा बनाओ जिसमें उषा के स्वर्णिम हास के साथ ही साथ रात्रि का भी उपहास हो ।’

‘अवश्य ।’

अब मैं चन्देरी के राजदरबार में चित्रकार था । मैं ने चन्देरी का नाम लिया था । यही सोचकर मैं इस ओर आया था । इस ओर आते समय अपने कुछ सैनिकों से इस बात की मैंने चर्चा भी की थी । दो तीन विश्वस्त सैनिकों के साथ मैं चन्देरी आ गया था । मेरी चित्रकला पर राणा काफी मोहिन थे । अपना परिचय राणा को मैंने नहीं दिया था । चित्रों का पुरस्कार मुझे काफी मिलता था । दरबार में मेरी प्रतिष्ठा धीरे-धीरे बढ़ रही थी । राणा के साथ बहुत बार मैं इधर उधर गया । चित्रशाला में मेरे काफी चित्र थे । एक दिन उन्होंने कहा, ‘चित्रकार ! तुम्हारी अपूर्व प्रतिभा तुम्हारे पूर्व जन्म का ही संस्कार है ।’

‘हो सकता है ।’

‘वयों तुम्हें सन्देह है ?’

‘कह नहीं सकता ।’

धीरे-धीरे राणा का व्यक्तित्व मेरे काफी निकट आ रहा था । उनके साथ मैं शिकार में भी रहने लगा । मेरे आखेट-कौशल से वे काफी प्रसन्न थे ।

एक दिन संध्या समय मैं घोड़े पर एक खुले मैदान से घूम कर आ रहा था । रास्ते में मुझे खंडहर दिखाई पड़े । उस भग्नता के सौंदर्य एवं उसकी नश्वरता ने मुझे रोक लिया । अतीत के प्रति भी एक अजीब-सा स्वाभाविक मोह होता है । उस ओर मैंने अपना घोड़ा मोड़ दिया ।

‘उस ओर मत जाओ ।’ पीछे मुड़ कर देखा तो एक बुढ़ा उम ओर न जाने का संकेत कर रहा था ।

‘उस ओर क्या है ?’

‘नाहक अपने प्राण संकट में क्यों डालते हो ? उस ओर प्रेत हैं ।’

‘प्रेत ?’

‘हाँ उस ओर भूत पिशाच रहते हैं । उस ओर जो गया है वापिस लौट कर नहीं आया है ।’

‘तुम्हें कैसे पता है ?’

‘मैंने खुद देखा है । पिछले साल यहाँ से हमारे गाँव की एक लड़की दूध लेकर जा रही थी । उसे भूतों ने समेट लिया । काफी खोज करने के बाद भी उसका पता न लग सका । अतः तुम उस ओर मत जाओ । उस ओर कोई नहीं जाता । यहाँ शायद तुम पहली दफा आए हो ।’

‘हाँ कुछ ऐसी ही बात है ।’ मैंने गंभीर हो कर कहा ।

‘यहाँ रात में कभी-कभी किसी के कराहने की आवाज आती है । लोगों का कहना है कि वे प्रेत रोते भी हैं । फिर हवा के साथ उनकी बातों के फीके-फीके स्वर भी सुनाई पड़ते हैं । ऐसा लगता है कि मानो दो-चार मनुष्य बातें कर रहे हों ।’

‘वे भूत रोते क्यों हैं ?’

‘ऐसा सुना है कि जो मनुष्य अल्पायु में ही मर जाता है वह भूत बनकर रोता ही रहता है ।’

यह कहकर वह बूढ़ा तो चला गया । मैंने एक गहरी साँस ली... मेरी उत्सुकता बढ़ी । मैंने सोचा इन भूतों को भी देखना चाहिए ।

दूसरे दिन अन्धेरी रात को मैं उस ओर बढ़ गया । अमावस्या के कारण रात गहरी काली थी । रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त हो गया था । वहाँ पहुँचकर घोड़े को तो मैंने पास ही के वृक्ष से बाँध दिया । उसके बाद मैं उन खंडहरों के एक भाग में घूमने लगा । मैंने मशाल जला ली थी । आधी रात बीत गई थी किन्तु न तो किसी के

बात करने की ही और न कराहने की ही आवाज सुनाई दी ।

कई दिनों तक यह क्रम जारी रहा किन्तु क्या मिला.....
निराशा ?

‘आजकल शायद अधिक जागते हो ।’ अनायास ही एक दिन राणा ने पूछा ।

‘क्यों ?’

‘यों ही ।’

अपने आपको स्पष्ट करना मैंने उचित नहीं समझा । चन्देरी में मुझे पता लगा कि चन्देरी की सहायता से जसकोट पर कभी चढ़ाई की थी । राणा को यह मैं बताना नहीं चाहता था कि मैं जसकोट का अधिपति हूँ, नहीं तो मेरा भविष्य शायद कुछ और ही होता ।

एक रात को.....

उन खड्गहों में मुझे स्पष्ट किसी के रोने के स्वर सुनाई पड़े । आखिर मैं उस ओर बढ़ता ही गया और एक दीवार से कान लगाकर बैठ गया ।

वहीं लकड़ी का एक चौरस टुकड़ा उस टूटी हुई दीवार से लगा हुआ था । बातचीत के स्वर वहाँ से स्पष्ट सुनाई देते थे । मशाल के प्रकाश में मैं बैठा हुआ था । उस लकड़ी के तख्ते को मैंने हटाया तो देखा सामने मजबूत सलाखें थीं । तख्ते के खुलते ही जैसे मशाल का प्रकाश अन्दर गया तो एक मनुष्य का चेहरा दिखाई पड़ा । मुझे आश्चर्य हुआ ।

‘यहाँ आप लोग ?’ आश्चर्य से मैंने पूछा ।

‘हैं...किन्तु आपकी तारीफ ?’

‘आप यहाँ रहते हैं ?’

‘जी हाँ ।’

‘नगर में क्यों नहीं रहते ?’

‘कोई रहने भी दे तब न ।’

‘लोग कहते हैं कि यहाँ भूत रहते हैं ।’

इतने में ही दो-तीन सिर और दिखाई पड़े । मुझे थोड़ा-सा डर तो मालूम हुआ किन्तु मैं संभल गया । आधी रात का समय और शून्य निर्जन वन प्रान्तर भाग । चारों ओर सन्नाटा छाया था । वे सब खिल खिलाकर हँस पड़े । उन्होंने कहा, ‘कौन हैं आप ?’

मुझे समझते देर न लगी कि ये कैदखाना है और ये कैदी हैं ।

‘तुम्हें हमारी बड़ी हुई दाढ़ी और मूँछों को देख कर आश्चर्य हो रहा होगा ।’ उनमें से एक ने कहा ।

‘नहीं ऐसी बात नहीं है । इन खंडहरों के बारे में मैंने बहुत कुछ सुन रखा था । लोग कहते हैं कि यहाँ भूत रहते हैं ।’

‘तो आज देख लिया भूतों को ।’ और वे सब हँस पड़े ।

‘आप लोग मेरा भले ही उपहास करें किन्तु मैं आप लोगों के साथ ऐसा नहीं कर रहा । कई रातों की मेहनत के बाद आप लोगों को देख सका हूँ ?’

रुक कर मैंने फिर पूछा, ‘यह कराहता कौन है ?’

‘हमारा एक साथी बीमार है ।’

‘आप कौन हैं ?’

‘राणा का एक दरबारी ।’

‘तुम ?’

‘हाँ, क्यों ?’

‘तुम शीघ्र लौट जाओ । यदि प्रहरी ने देख लिया तो तुम्हारे प्राणों पर बन आएगी ।’

‘क्यों ?’

‘प्रश्न मत करो, लौट जाओ । हमारी कैद को प्रहरी और राणा के सिवाय कोई नहीं जानता ।

‘तो यहाँ प्रहरी भी आता है ।’

‘रात्रि के अन्तिम प्रहर में आठों पहर का भोजन वह यहाँ फेंक जाता है ।’

‘अच्छा मैं चलता हूँ.....कल फिर आऊँगा ।’ ‘मैंने वह लकड़ी का टुकड़ा फँसा दिया और चला आया ।’

‘आन्तरिक उद्वेग से मेरा मन भर गया । राणा के प्रति मेरी भावनाएँ बदल चुकी थीं । दूसरे दिन राणा ने पूछा ‘आजकल क्या सोचा करते हो ?’

‘कुछ तो नहीं ।’

‘तुम्हारा चेहरा गवाही दे रहा है ।’ राणा ने कहा, ‘चित्रकार ! अवश्य ऐसी कोई बात है ; अन्यथा तुम्हारे चेहरे पर ऐसी उदासी नहीं दिखाई देती । मैंने तुम्हें जब देखा है तो हँसते ही पाया है ।’

मैं मौन रह गया । राणा ने जिस हँसी का उल्लेख किया था वह तो एक धोखा था जिसमें मैं स्वयं अपने आपको ही छल रहा था । जिन्दगी की गहरी उदासी को हटाने के लिए यदा कदा हँस लेता था लेकिन उस हँसी से रोना लाख दर्जें अच्छा था । कम से कम रोक र मन तो साफ हो जाता है । यहाँ तो दिन प्रति दिन बोझ हल्का होने की अपेक्षा बढ़ रहा था मेरे मस्तक पर पसीने की बूँदें थीं । वे ऐसी चमक रही थीं जैसे सूखी घास पर ओस कण चमक रहे हों ?

‘मुझे तुम बताना नहीं चाहते शायद किसी की याद आती होगी ।’

‘राणा को मैंने संतोषजनक उत्तर नहीं दिया ।

उन खंडहरों में दूसरे दिन मैं फिर पहुँचा । आज मैंने एक नया चेहरा देखा । उसे एकटक मैं देखता रहा । वह मनुष्य उन सब लोगों से ऊँचा था । उसके शरीर से एक प्रकार का तेज टपक रहा था । उसने कहा, ‘पथिक ! तुम्हारी यह उत्सुकता तुम्हारे जीवन को समाप्त कर देगी ।’

‘मुझे इसकी चिंता नहीं ।’ रुककर मैंने फिर कहा, ‘राणा ने आप को यहाँ कैद किया है न ।’

‘हाँ…………।’

‘कल की रात आप सब स्वतन्त्र होंगे ।

वह विशालकाय कैदी हूँस पड़ा । उसने कहा, ‘पथिक ! हम राणा के कैदी हैं आज पाँच वर्ष हो गए यहीं कैद हैं । इसे राणा और प्रहरी के सिवाय कोई नहीं जानता ।’

‘आप लोगों को कैद क्यों किया गया ?’ वातावरण शांत था ।

‘इसकी कहानी लंबी है ।’

‘तो शायद मैं उसके सुनने का अधिकारी नहीं ।’

‘ऐसी कोई बात नहीं है ।’

‘तो फिर आप लोग बोलते क्यों नहीं ?’

‘दक्षिण में एक राज्य है ।’ रुक कर उस भारी शरीर वाले कैदी ने फिर कहना शुरू किया । ‘उस राज्य का नाम जसकोट है ।’

‘जसकोट…………।’ नाम सुनकर मैं चौंका ।

‘हाँ उस राज्य पर आज से पच्चीस या छब्बीस वर्ष पहले आक्रमण हुआ । चन्देरी के राज्यसिंहासन पर उस समय राणा के ज्येष्ठ भ्राता थे । शाहजहाँ को उन्होंने काफी सहायता दी थी । शाही फौजों ने चन्देरी की सेना सहित जसकोट पर आक्रमण किया । जसकोट की सेनाओं ने शत्रु को बुरी तरह से हराया । चन्देरी के अच्छे अच्छे योद्धा उसमें मारे गए । स्वयं राणा खेत रहे । किन्तु हम लोग पकड़े गए । सारा क्रोध हम पर निकाला गया । मैं वहाँ का अधिपति था । मैं कैद हो गया ।…………परन्तु मुझे प्रसन्नता है कि जसकोट स्वतन्त्र है ।’

मेरी आँखें गीली हो गईं । हृदय उमड़ पड़ा । इच्छा हुई कि कैदखाने को तोड़कर मैं भी खिड़की में समा जाऊँ और उस आदमी से लिपट जाऊँ । मैंने आँसू पोंछ लिए ।

‘रोते क्यों हो…………’ पुनः उस विशालकाय वृद्ध कैदी ने पूछा ।

मैं चुप रहा । उसने आगे कहा—

‘तब से हम लोग कैदी हैं । न जाने कितने कैदखाने देख लिए हैं ।’

मैंने पूछा, ‘राजमाता का क्या हुआ ?’

‘राजमाता……हैं उस समय वह गर्भवती थीं । अब मैं कुछ नहीं कह सकता कि उनकी क्या दशा है ?’

बरबस मैं कह उठा, ‘वह राजकुमार सामने ही बैठा है । उसका नाम उदयसिंह है ? उस भारी शरीर के कैदी की आँखें गीली हो गईं । वह सलाखों की ओर हाथ कर चिल्ला उठा ‘मेरे बेटे……मेरे बच्चे’ मैंने फिर कहा ‘राजमाता को आपने क्या निशानी दी थी ?’

‘राजमुद्रा ।

‘वह यह है……मैंने राजमुद्रा निकालकर अपने पिता को दे दी ।

उन्होंने उसे गौर से देखा । उनका गला भारी हो गया ।

इसके बाद अतीत की समस्त घटनाएँ ब्यौरेवार उन्हें मैंने सुना दीं ।

‘जीवन का उदय समीप है । आज की रात आपकी कैद की अन्तिम रात है ।’ रात्रि का अन्तिम प्रहर प्रारम्भ ही हुआ था……एक मनुष्य की छाया मैंने देखी । इससे पहले कि मैं सोचता वह कौन है ? उसने ही कड़क कर पूछा, ‘कौन है ?’

मैं चौंका, ‘क्या है ?’

‘यहाँ क्यों आया ?’

‘अपनी इच्छा से ।’

‘तू कौन है ?’

‘एक आदमी ।’

‘वह तो जानता हूँ ।’

‘फिर पूछता क्यों है ?’

‘आधी रात को यहाँ क्या कर रहा है ?’

‘जो कुछ तू करने आया है……बस वही ।’

‘तू कैदी है जा नहीं सकता ।’

‘कैदी बनाने वाला अभी तक तो कोई पैदा नहीं हुआ……तू कौन है ?’

‘मैं हूँ राणा का प्रहरी……जुझे मेरे साथ राणा के पास चलना होगा ।’

‘कौन ले जाएगा ?’

‘मैं……।’

‘अपनी शकल भी देखी है ।’

‘चुप रह……मेरे साथ आ ।’

‘ये नहीं हो सकता ।’

‘अच्छा यह होसला !’ उसने तलवार खींच ली । मैंने भी तलवार निकाल ली । उस दूर निर्जन वन प्रान्तर भाग में छपाछप की आवाज प्रतिध्वनित हो उठी । देखते ही देखते उसका सिर धड़ से अलग हो गया ।

खंडहरों के सीखचों से मैंने लकड़ी का टुकड़ा उठाया और चिल्ला उठा ‘वह प्रहरी मर गया ।’

‘कैसे……?’,

‘मैंने मार दिया ।’

‘ठीक नहीं किया ।’

‘वह मैं देख लूँगा ।’

उस रात मैं वहाँ से चला गया ।

*

*

*

दूसरे दिन दरबार में पहुँचा । राणा पर क्रोध आ रहा था । जलन हो रही थी । राणा ने पूछा—‘आज बात क्या है ?’ दिल तो हुआ कि इसका चेहरा यहीं उड़ा दूँ । मेरी तन्द्रा भंग हुई विषय को बदलते हुए मैंने कहा, ‘राणा ! जीवन का सार उसकी विषमता और विभिन्नता में है ।’

और विभिन्नता में है ।’

‘ठीक कहते हो चित्रकार, जो चन्देरी स्वतंत्र होकर कभी जागरण के स्वप्न देखती थी आज वह आधीन है ।’

‘चन्देरी का यह सौभाग्य है ।’

‘क्या कहते हो चित्रकार ?’

‘ठीक कहता हूँ ।’

‘मनुष्य परिस्थितियों के आधीन होता है ।’

‘मैं नहीं मानता इस बात को । मनुष्य स्वयं ही परिस्थितियों में फँसकर रोता है । इच्छा-शक्ति यदि प्रबल रही तो उस व्यक्ति को दुनिया की कोई ताकत नहीं हिला सकती ।’

राणा का चेहरा क्रोध से लाल हो उठा किन्तु वाणी में उसकी प्रतिक्रिया नहीं हुई । राणा से मैं पूछना चाहता था कि आखिर इन कैदियों को छोड़ क्यों नहीं दिया जाता ? लेकिन स्वयं अपने कैद हो जाने का भय था राणा ने सहसा मेरी ओर घूम कर कहा, ‘चित्रकार तुमने अपना पूरा परिचय मुझे कभी नहीं दिया ।’

‘परिचय ! राणा...मजदूर का भी कोई परिचय चाहिए । गरीब की भी भला कोई जिन्दगी है ।...हमारे वंश का धर्म ही चित्रकारी है । मेरे पिता जसकोट के राज्य में रहते थे ।

‘जसकोट.....’ राणा ने आश्चर्यमयी मुद्रा से पूछा ।

‘हाँ जसकोट...एक समय वहाँ भयंकर आक्रमण हुआ । उसी समय मेरे पिता की मृत्यु हो गई । तब से इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा । चित्रकला का अभ्यास किया ।’

राणा के मस्तक पर पसीने की बूँदें स्पष्ट थीं । उन्होंने पूछा ‘आक्रमणकारी कौन था ?’

‘पता नहीं...क्योंकि उस समय मैं छोटा था ।’ राणा ने एक ठंडी साँस लेकर कहा, ‘चित्रकार वह जसकोट का नरेश महा धूर्त था । शाहजहाँ को उसने काफी तंग किया । दक्षिण के कुछ राज्यों ने शाहजहाँ

की ओर से उस पर आक्रमण कर उसके अधिपति को मार दिया ।’

‘आपका पूरा विश्वास है कि जसकोट के अधिपति की मृत्यु हो गई ।’

‘हाँ ।’

‘लेकिन राणा, यह समझ में नहीं आया कि उस शासक में धूर्तता कैसी थी ? और शाहजहाँ को उसने कैसे तंग किया ?’

‘इसका लम्बा इतिहास है... राजनीति की चालें तुम नहीं समझ सकते चित्रकार... यह रंग भरने का काम नहीं है ।’

‘खैर यह तो मैं समझना हूँ कि रंग भरने के काम का मुकाबिला राजनीति की गंदी चालें नहीं कर सकतीं लेकिन उनके इतिहास को समझने लायक मेरे पास बुद्धि है । यह विश्वास जानिए । खैर जाने दीजिए... आपने यह नहीं बताया कि इस आक्रमण में चन्देरी का क्या योगदान था ?’

‘चित्रकार इन बातों को समझना तुम्हारे लिए ठीक नहीं ।’

मैं समझ गया कि इस विषय पर राणा से आगे बात करना व्यर्थ है ।

*

*

*

उसी रात मैंने सीखचे तोड़ दिए...।

सबको बाहर निकाला गया ।—उनमें एक बीमार भी था । उसे निकालने में काफी सावधानी से काम लिया गया ।

पकड़े जाने का भय था अतएव सब उसी रात को विभिन्न दिशाओं में बंट गए ।

मैं अपने पिता के साथ साधु का वेश धारण कर उत्तर की ओर बढ़ा ।

*

*

*

स्मरण आया कि जब मैं छोटा था तो माँ एक कहानी सुनाती थी ।

‘एक राजा था । उसने एक तोता पाला...’ उसके साथ पिंजड़े में अन्य तोते भी थे...

उनकी देखरेख के लिए उसने एक चतुर पुरुष नियुक्त किया । देववश पुरुष की मृत्यु हो गई... किसी ने पिंजरा तोड़ दिया सब तोते उड़ गए...

इतने दिन पिंजड़े में रहने पर भी वे पालतू न बन सके । और उस राजा पर विपत्ति आई क्योंकि वे तोते उस राजा को पालने के लिए सम्राट ने दिए थे ।’

*

*

*

अब मुझे पता लग रहा था कि जिन्दगी का मतलब मौत नहीं जिन्दगी है । माँ का एक दीर्घ अभाव मेरे जीवन में हो गया था । उसे पिता जी ने पूरा कर दिया ।...

‘हम कहाँ चल रहे हैं ?’

‘दिल्ली ।’

‘क्यों ।’

‘दक्षिण की ओर अभी नहीं जाना है ।’

‘परन्तु दिल्ली तो बादशाह की जगह है ।’

‘तो क्या हुआ’

‘क्यों शेर की माँद में व्यर्थ पैर दे रहे हो ।’

‘गोदड़ की माँद में शेर पैर दे रहे हैं ।’

‘तुम कुछ भी कहो... वहाँ जाना खतरे से खाली नहीं है ।’

‘आप इसकी चिन्ता न करें ।’

पिता जी के बार-बार अस्वीकार करने पर भी उन्हें मैं दिल्ली ले ही गया ।

*

*

*

रात्रि के प्रथम प्रहर में शाहजादी जेबुन्निसा को अपने आगमन की

मैंने सूचना दी । दो परिचारिकाओं सहित स्वयं वह बाहर आई । उसके चेहरे पर चिंता की सघन रेखाएँ थीं । मुझे वह एकटक देखती रही जैसे पहिचाना ही न हो । फिर धीरे से कहा, 'आओ....'

मैं उसके पीछे-पीछे अंदर गया । 'बहुत दुबले हो गए....'

मैं उसे देखता ही रह गया । आत्मीयता और रुखेपन का कुछ अजीब सा समन्वय उसकी वाणी एवं व्यवहार में था । ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह कोई क्रमिक विचारधारा में लीन थी और मेरे आने से उसमें बाधा उपस्थित हो गई । उसने फिर कहा, 'तुम्हारी हार की खबर मुझे मिली थी । सोचती थी तुमसे मुलाकात होगी या नहीं । अल्लाह की दरगाह में मेरी पुकार आखिर सुन ही ली गई ।'

'शाहजादी मैं इतना बड़ा नहीं हूँ जितना कि आप मान दे रही हैं ।'

'ठीक है जसकोट के राजा, लेकिन ये 'तुम' से 'आप' कैसे हो गया । मेरे सामने तो कम से कम वैसे ही पेश आओ जैसे पहले थे । दुनिया के लिए भले तुम हार गए हो...किन्तु मैं उस हार को कैसे मान लूँ ?' इसके बाद ब्योरेवार मैंने उसे सारी घटनाएँ सुना दीं । उसका मुख और गंभीर हो गया । विषाद की रेखाएँ उस पर खिंच गईं । 'उदय ! यह जिंदगी एक मैदान है जहाँ हर किसी को अपना-अपना काम करना है । खुदा ने हमें दुनिया में कुछ न कुछ करने के लिए भेजा है । हर जिन्दगी का एक मकसद होता है, हम सोचते हैं फिर उसे पूरा करते हैं...वह पूरा होता है, या अधूरा ही रह जाता है...ऐसे ही जिन्दगी की गाड़ी चलती जाती है ।'

'शाहजादी, जिंदगी कर्मक्षेत्र की अपेक्षा एक युद्धक्षेत्र है । पग-पग पर जहाँ मनुष्य को संघर्ष करना पड़ता है । मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ और है । इसी में हमारे जीवन का क्रम बढ़ता है । और बढ़ता जा रहा है ।'

इसी तरह जीवन का क्रम बढ़ता जाता है ।

‘जिन्दगी का मतलब हर आदमी ने अपनी-अपनी नज़र से लगाया है । आँख पर जिस तरह का चश्मा रहता है दुनिया उसी रंग की नज़र आती है । तुम एक राजा हो । तुमको लड़ना पड़ता है इसलिए जिन्दगी तुमको एक लड़ाई के मैदान की तरह नज़र आती है । जितना छोटा-सा इसका नाम है उतना ही मुश्किल उसका अर्थ है ।’

‘ठीक कहती हो ।’

निसा ने फिर कहा, ‘हर किसी की जिन्दगी हर किसी से जुदा होती है । किसी की जिन्दगी मैदान की तरह समतल होती है तो किसी की पहाड़ की तरह ऊँची-नीची । यही अल्हदापन जिन्दगी का निचोड़ है । इसी में लड़ाई के ख्यालात रहते हैं जो जिन्दगी को हर वक्त ताजा रखते हैं । तुमको एक हार ने इतना दुबला बना दिया लेकिन मेरे सामने तो कितने बसंत पतझर बनकर चले गए । कितनों की मौत को सीने पर पत्थर रख कर देखा...खून के घूँट पी कर रह गई ।’ और उसकी बड़ी-सी आँखों से कपोलों पर होते हुए आँसुओं की दो बूँदें बह गई किन्तु इससे पहले कि वे जमीन पर गिरतीं उसने उन्हें अपने आँचल से पोंछ दिया ।

‘आज्ञा हो तो एक बात पूछो...शाहजादी ।’

‘एक क्यों सौ पूछो कौन रोकता है भला तुम्हें ?’

‘आप उदास और चिन्तित क्यों हैं ?’

‘तुम्हारा सवाल गलत तो नहीं है लेकिन इसका जवाब इस वक्त एक दम भला कैसे दे दूँ ? वक्त खुद-ब-खुद इस सवाल का जवाब दे देगा ।’

‘ठीक है आप प्रश्न का पूरा उत्तर भले ही न दें परन्तु क्या मैं इतना भी नहीं जान सकता कि आखिर ऐसी कौनसी बात है...?’

‘उदय, लगता है जैसे कयामत का फैसला इसी दुनिया में होगा खुश तक जाने की जरूरत भी नहीं पड़ेगी ।’

‘मैं समझा नहीं, शाहजादी ।’

‘अब्बाजान राजपूताने में राणा राजसिंह का गदर दबाने गए हैं । राणा ने चितौड़ छोड़कर अरावली में पनाह ली है । भाईजान अकबर भी अब्बाजान के साथ हैं । बस यही कुछ ऐसी बातें हैं जिन्होंने मुझे बेवस कर रखा है ।’

‘लेकिन इसमें बेवसी की क्या बात है ?’

इसका जवाब फिर कभी दूँगी अभी नहीं... वक्त नाजुक है ।’

मैं समझ गया कि इस विषय पर शाहजादी से अधिक बात करना व्यर्थ है । राजनैतिक उलझनों में वह फँसी हुई थी ।

दक्षिण की पहाड़ियों में आलमगीर औरंगजेब की फौजें जसकोट को रौंद रही थीं । उन्हें पता नहीं था कि जसकोट का अधिपति तो दिल्ली में है । अन्तर केवल इतना ही था कि शाही फौजें जसकोट में बिजेता की हैसियत से थी और मैं दिल्ली में एक पराजित की हैसियत से ।

*

*

*

शाहजादी के पास अक्सर मैं चला आया करता था । मेरा स्वागत वह खुले हृदय से करती थी । मैंने देखा कि बातें करते समय वह खिल सी जाया करती थी । उसके हृदय में एक तरह का उल्लास रहता था । मधुरिमामय स्वरों में सदैव वह एक कम्पन को जन्म देती थी । मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि उसके जीवन में जैसे साकारता आ रही हो । उसकी उम्र वैसे मुझ से कुछ अधिक थी किन्तु उसका सौन्दर्य तो गजब ढाता था । नूरजहाँ से जब जहाँगीर ने विवाह किया था उस समय नूरजहाँ की उम्र ३५ वर्ष की थी किन्तु फिर भी उसमें सौंदर्य कूट कूट कर भरा हुआ था ।

और मैं...

मेरी भावनाएँ बदल चुकी थीं ।

दिल्ली मेरे लिए स्वर्ग बन चुकी थी। औरंगजेब की अनुपस्थिति के कारण शासन में वैसे भी ढील आ गई थी। निसा के पास वे आँखें थीं जो मुझे उन्मत्त करने के लिए पर्याप्त थीं। मुझे पता नहीं था कि मैं उसके निकट था या निकट होकर दूर था। फिर भी मैं उसके पास चुपचाप चला जाता किसी को पता नहीं था कि मैं उदयसिंह हूँ।

यमुना के प्रशांत जल पर मैं उस दिन नौका विहार कर रहा था। यमुना से लाल किले के शिखर दिखाई पड़ रहे थे। मैंने कहा—“शाहजादी तुम्हें याद होगा कि यमुना के प्रशांत जल पर आगरे के किले और ताजमहल के मध्यस्थ एक रोज इसी तरह नौका बिहार कर रहे थे।”

‘हाँ पता है।’

‘तुम्हारी दर्द की अनुभूति का आज पता हुआ है।’

‘कैसे?’

‘मेरी माँ की मृत्यु जब जसकोट में हुई थी तब।’

‘चुप रहो उदय, इन बातों को मत छेड़ो’ कह कर उसने मेरी बात काट दी।

‘तुम्हें अपना गट्टर तो वापिस मिल गया होगा।’

‘हाँ मिल तो गया।’

‘जया मिली थी तुम से।’

‘यह कभी हो सकता है कि गट्टर मिल जाए और जया न मिले।’

‘काफी बहादुर औरत है।’

‘हाँ...’

‘मुझे आफत के दिनों ने एक भारी सहारा दिया है।’

उसने फिर सोचते हुए कहा ‘उसे साथ ले आते तो ठीक होता।’

‘साथ ले आता।’ व्यंग्य से हँसकर मैंने फिर कहा, ‘यहाँ तो अपने ही प्राणों का भरोसा नहीं था। तो भला उसे कैसे ला सकता था?’

‘तुम्हें पता नहीं उदय कि उस औरत का कितना एहसान मुझ पर है।...जसकोट जाओगे तो उसे वापिस भेज देना।’

‘अच्छा……’ लौटने का नाम सुनकर सहसा मैं गंभीर हो उठा। वह पानी की ओर देख रही थी। उसने पूरी गरदन मेरी ओर घुमा कर कहा, ‘उदय ! जब तुमको इस बात का पता था कि दिल्ली तुम्हारे दुश्मनों की जगह है। जिसने तुम्हारा सब कुछ छीन कर दुनिया में धक्के खाने के लिए छोड़ दिया। आखिर उसी जगह की तरफ तुम क्यों मुड़े।’ इसके बाद वह मेरे मुखांकित भाव पढ़ने लगी। परिस्थिति सीधा-सीधा उत्तर माँग रही थी। मैंने कहा, ‘मेरे कहने की अपेक्षा समझ लो तो ज्यादा अच्छा रहेगा।’

‘न समझूँ तो।’

‘तो अपने आपको धोखा दो।’

चिरविषाद से पूर्ण उसके चेहरे पर एक सलज्ज मुस्कान दौड़ गई।

‘तुम मुझ से आज सीधा-सा प्रश्न क्यों कर रही हो।’

‘क्योंकि उसका जवाब मेरे पास नहीं है।’

‘उसका जवाब तुम्हारे ही पास है।’ मैंने रुक कर फिर कहा, ‘उदय को पता था कि इन जलते हुए अंगारों में मौत छिपी है। परन्तु मेरे लिए उसमें मृत्यु का दुख नहीं जीवन का सुख था उसके लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। मरुस्थल में मुझे मरुद्यान दीखा है। मुझे जीवन का स्रोत दीखा है जिसने बरबस मुझे अपनी ओर खींच लिया है।’

‘कौन है वह ?’

‘तुम।’

उसके मुखपर लज्जा की हल्की रेखाएँ फैल गईं। कान भी हल्के से लाल हो गए। निसा की आँखें सदैव एक गंभीरतामय विषाद को लिए रहती थीं। उसके सौंदर्य में कुमुद का अल्हड़पन नहीं था। उसके चेहरे पर एक प्रकार की प्रौढ़ता थी। जिसके पीछे कि उसका कोमल मन जगत के अशोभन सत्यों से सामंजस्य न कर सकने के कारण अन्तर्मुख

हो कवि बन बैठा था । उसने कहा, 'यह तुम्हारी गलतफहमी है ।'

'तो सत्य को सत्य कहना भी भ्राम है ।'

'उदय उन बातों को सोचने का फायदा ? जिसका कि दुनिया में व्यावहारिक महत्व नहीं ।'

'यह बात दूसरी है । मैंने तो सिर्फ उसी बात का उत्तर दिया जो तुमने पूछा था । व्यावहारिकता का प्रश्न दूसरा है ।'

वातावरण शांत रहा । उसने मेरे मुख पर अपनी आँखें गड़ा दीं । मैंने उसे देखा किन्तु उसकी आँखें अब तक क्षितिज की ओर घूम चुकी थीं । लगता था जैसे उसकी आँखें क्षितिज पर किसी को ढूँढ़ने का निष्फल प्रयास कर रही हों । उसके चेहरे पर लाली भी दौड़ गई थी ।

*

*

*

मुझे कुछ ऐसा लगा कि कुमुद अपनी इच्छा से मेरे जीवन में आ रही है और अपनी इच्छा ने मैं निसा के जीवन में चला जा रहा हूँ । जो आशा मुझे निसा में थी शायद वही आशा मुझ से कुमुद को थी । मेरे जीवन के पृष्ठ जो गे से उड़ रहे थे । हर बार हर घटना उसमें एक अध्याय जोड़ देती थी । मैं क्या कर रहा था इसका मुझे पता नहीं था । निसा की आँखें मुझे चेतनाहीन करने के लिए काफी थीं ।

एक दिन हम रात को महल की खुली छत पर बैठे हुए थे । चाँदनी छिटकी हुई थी । गर्मी के कारण हम खुली हवा में बैठे थे । निसा का आँचल हवा के साथ रह-रह कर उड़ जाता था । वह सम्हालती वह फिर उड़ जाता क्योंकि हवा का वेग उस दिन तेज-सा था । बाँदी ने सूचना दी कि जहाँआरा आ रही हैं ।

जहाँआरा के आते ही हम लोग खड़े हो गए । चाँदनी में जहाँआरा का चेहरा अत्यंत भला लग रहा था । वृद्ध चेहरे पर भी आज ताजगी थी । साथ ही सौम्यता एवं भयंकर शांति । सफेद बाल चाँदी के तारों की तरह चमक रहे थे ।

‘जसकोट के राजा...तबियत तो ठीक है न।’ उसने घीमे एवं सौजन्यता से भरे स्वरों में कहा ।

‘जी तबियत बिल्कुल ठीक है ।’

‘तुम्हारे आने का मुझे शाहजादी से पता लगा । इसलिए सोचा आज मिल लूँ ।’

‘यह मेरा सौभाग्य है ।’

‘सौभाग्य या दुर्भाग्य जो भी समझो । मेरी तो तुमसे मुलाकात हो गई नन्हीं तो मन में मिलने की मुराद रह ही जाती ।’

‘वैसे तो मैं दिल्ली में अभी था ।

‘लेकिन मैं तो आगरा जा रही हूँ ।’

‘कब ?’

‘यों ही मात आठ दिनों में ।’

‘कोई काम है क्या ?’

‘नहीं यों ही । वैसे मेरा मन आग्रा में ही लगता है । दिल्ली तो वैसे ही आ जाती हूँ ।’

आलमगीर राजपूताना गए तो आप यहाँ चली आईं ।’

‘ऐसी कोई बात नहीं । लेकिन वैसे वह भी एक सबब हो सकता है ।...वात ये है कि निसा को देखे बिना जी नहीं मानता... ।’

निसा जैसे फूल उठी हो उसने कहा, ‘क्यों शर्मिन्दा कर रही हो ?’

‘सच बात सुन कर तुमको अगर शर्म आती है तो हजार बार आए मेरी बला से ।’ जहाँआरा ने कहा । उसके बाद झिले हुए चांद को देखकर जहाँआरा ने कहा, ‘यह चांद भी कितना बेरहम और बेदर्दी है ।’

‘कैसे ?’

‘पता नहीं इस के नीचे कितने जुल्म हुए कितने मासूम और बेबस कुचल दिए गए लेकिन यह इसी तरह हँसकर उगता और झूबता रहा । बेशर्मी की भी आखिर हद होती है ।’

‘संसार किसी की हँसी को नहीं देख सकता । चन्द्र हँसता है तो आप कहती हैं कि वह रोता क्यों नहीं । खुश में जब मनुष्य होता है तब उस की इच्छा होती है कि सब उस के साथ संवेदना प्रगट करें सुख में वह किसी को अपने साथ लेना नहीं चाहता ।’

‘वही बात...ऐसी नहीं है । दूर से खेत हरा ही दिखाई पड़ता है । चाँद दुनिया को दूर से देखता है इसलिए दुनिया के दुख उसे नजर नहीं आते । दुनिया उसे खुश नजर आती है इसलिए वह हँसता है ।’

‘यदि यही बात है तो हो सकता है कि वह भी रोता हो । लेकिन चूँकि उसे आप दूर से देख रही हैं इसलिए आपको उसके दोष नहीं दिखाई पड़ने । आखिर उसमें भी तो धब्बे हैं । कलंक हैं । जो कि चांद की हँसी में साफ तरह में छिप गए हैं ।’

सुनकर निसा मुस्करा पड़ी । जहाँआरा के झुँझुयोदार चेहरे पर हँसी खुल कर खेल गई । उसने कहा, ‘उदयसिंह हँसती हूँ तो रोने को दिल करना है । ऐसे हँसी के मौके आखिर कब आते हैं ? बादशाहों के हरम भी काँटों के जाल हैं । सड़क पर चलता एक आदमी हमसे हजार दरजे अच्छा है । जो हमने अपनी अमीरी में खो दिया है । वह गरीबी में अपनी गरीबी में पा लिया है ।’

‘झूठ है । तुम्हारी गरीबी अपनी अमीरी के लिए सिर पीट रही है यह हालत तो एक अमीर से कहीं गई बोती है । जो अमीर नहीं भला उसे अपनी अमीरी की क्या फिक्र ।’

अपनी इस छोटी सी जिन्दगी में सी जो देखा वह देखा नहीं गया लेकिन देखना पड़ा । विवशता मनुष्य से जो न करा ले सो थोड़ा है ।’

‘मजबूरी का दूसरा नाम जिन्दगी है ।’ जहाँआरा ने कहा ।

जहाँआरा फारसी की एक प्रसिद्ध कवियित्री । थी उसी के सम्पर्क में आकर जेबुन्निसा ने भी लिखना प्रारंभ किया था । निसा सौभाग्यवान थी । उसे एक ओर जहाँआरा का प्यार मिला था दूसरी ओर औरंगजेब की अथाह ममता । जहाँआरा ने निसा का दीवान खोला और कहा,

‘पहूँ कुछ ।’ सुनकर जेबुनिसा जैसे गड़ सी गई । मैंने निसा से कई बार अनुरोध किया था किन्तु उसने सदैव बहाना बना कर मेरी बातों को टाल दिया था आज अवसर आया था । ‘इसे तो मैं इसे सौभाग्य ही कहूँगा ।’

निसा ने झपट कर जहाँआरा से दीवान छीनना चाहा लेकिन रास्ते में ही मैंने उसके हाथ पकड़ लिए । उसने मेरी ओर देखा और मुस्करा कर आँखें नीची कर लीं । जहाँआरा ने चुटकी ली । मैंने कहा, ‘सुनाइये दो एक चीजें.....’

जहाँआरा ने कहा, ‘एक दिन सवेरे जमुना के किनारे बगीचे में निसा ने यह गुनगुनाया :—

चहार चीज जे दिल गम, बुरद कुदाम चहार ?

शराब सबजः ओ आबे खां बरुए निगार

मतलब की ये कौनसी चार चीजें हैं जो दिल का गम दूर करती हैं ? पहला शराब, दूसरा नदी का बहाव, तीसरा हरियाली और चौथा हसीन चेहरा ।’

‘शहजादी निसा का परिचय अब कुछ मिला । आज तक न जाने कितनी बार मैंने इनसे कहा परन्तु कमल के पत्ते पर भला पानी कभी ठहरा है ?’ मैंने कहा ।

‘और इतने में ही भाई जान वहाँ से गुजरे । निसा का दिल बैठने लगा । घबरा गई चट कह उठी :—

चहार चीज जे दिल गम बुरद कुदाम चहार

नमाजो रोजः ओ तसवीहा तीबः इस्तगफार

‘मतलब की ये चार चीजें कौनसी हैं जो दिल के गम को हल्का करती हैं ? नमाज, रोजा, माला और तौबा ।’ भाईजान ने यह सुना और उनकी खुशी की हद नहीं रही उस दिन से शाही हुक्म के मुताबिक ये शेर बनाने लगी है । ये इसका दीवान है ।

मैंने उस सुसज्जित पुस्तक को देखा लेकिन मैं फारसी नहीं समझता था । जहाँआरा के दीवान की एक प्रति तो मेरे पास थी ही लेकिन अब दिल मचल उठा कि निसा की रचनाओं की भी एक प्रति साथ लेता चलूँ । इसके बाद शांति रही निसा ने अपना दीवान ले लिया । जहाँआरा ने कहा, 'सीकरी के उस्ताद का कुछ ख्याल आता है ।'

अचानक मेरे सामने उस वीणावादक का दृश्य घूम उठा जिसकी वीणा सुनने का अवसर मुझे जहाँआरा के साथ मिला था । वह चांदनी का दृश्य भी याद आया जबकि उन शाही अधिकारी का सिर मैंने धड़ से अलग किया था । मैंने सोच कर कहा—

‘हाँ...उसका पता लगा क्या ?’

मैंने पता लगाने की बहुत कोशिश की लेकिन नाकामयाबी ही हासिल हुई ।’ इसके बाद जहाँआरा जाने के लिए उठी । हम भी उठे परन्तु इससे पहले कि वह जाने के लिए आगे बढ़ती एक कदम आगे बढ़ कर मैंने उसके पैरों को छू लिया । उसने मेरे हाथ पकड़ लिये और ऊपर से नीचे तक मुझे देखा । सहसा वह भावुक हो उठी । उसकी आँखों से आँसू की बूँदे बह गईं लेकिन जल्दी से अपने आँचल से उसने उन्हें पोंछ डाला और कहा, ‘जसकोट के राजा ! किसी को अपना प्यार और कद्र देना गुनाह है । मैं इस लायक कहाँ थीं ? ...भला ये तुमने क्या किया ?’

इसके बाद मेरा उत्तर सुनने से पहले ही वह वहाँ से तेजी से चली गई ।

*

*

*

निसा.....

उस घटना के बाद निसा का मुझे एक नवीन परिचय मिला था मुझे ऐसा लगा कि जेबुनिसा मेरे काफी निकट आ चुकी है लेकिन औपचारिकता की आड़ में स्वयं वह अपने आप को धोखा दे रही है । वह

अपनी भावनाओं की संकोचवश शायद प्रगट नहीं करती थीं। मैं भी पीछे था सोचा कि दोनों में से एक को तो झुकना ही होगा।

आलमगीर की वह लाडली बेटा थी। वह उसे प्यार करता था और इतना प्यार करता था कि निसा के साथ अपने नाम का उत्तरार्ध 'जेब' जोड़कर उसने उसे जेबुन्निसा बना दिया था। दो विचार-धाराओं के समन्वय पर इस रमणी के व्यक्तित्व का विकास हुआ था। एक ओर था औरंगजेब दूसरी ओर थी जहाँआरा।

वह फारसी में कलाम लिखती लेकिन उन्हें सुनने का मौका सिर्फ मैं जहाँआरा की ही कृपा से पा सका था।

उस दिन उसके पास पहुँचा। जहाँआरा आगरा चली गई थी। सूना-सा लग रहा था। उसने कहा, 'उदय ! तुमको याद है ना....!'

'क्या ?'

'उस दिन जब मैंने तुमसे पूछा था कि तुम इधर क्यों आए ?'

'हाँ पूछा था।'

'और इसका सबब तुमने मुझे ठहराया था।'

'हाँ ठीक है।'

'उसका साफ मतलब क्या था ?'

परिस्थिति साफ-साफ उत्तर माँग रही थी। निसा के समक्ष अपनी ओर इस बात को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करने को मैं अपनी एक कम-जोरी समझता था। आज सोचा कि इसे प्रगट ही कर दूँ। मैंने कहा, 'यही कि तुमने मेरे जीवन में प्रवेश किया।'

सुन कर सहसा वह गंभीर हो उठी। अपने आँचल के छोर में अंगु-लियाँ चलाते एवं नीचे देखते हुए उसने कहा, 'उदय.....'

उसके स्वरों में कठोरता-सी आ गई 'यह तुम्हारी गलतफहमी है एक भारी गलती है। इसको अपने मन से निकाल दो। मैं तुम्हारी जिन्दगी में न तो कभी आई हूँ और न ही कभी आ सकती हूँ।'

मैं अवाक् हो कर उसका मुँह देखने लगा, तो क्या यह मेरा भ्रम था ?'

‘बिल्कुल.....’

‘शाहजादी अपने आपको धोखा न दो ।’

‘उदय.....तुम अपने आपको धोखा न दो.....मेरा सवाल तो उठता ही नहीं । जसकोट के राजा.....चार दिन की खुशी जन्म भर की खुशी नहीं होती । चार दिन की बातें जन्म भर की बातें नहीं होतीं । जो ख्याल तुम्हारे मन में उठा है उसका निर्वह मुश्किल है तुम उसके हर पहलू पर सोचो ।’

मैं स्तम्भित-सा रह गया । उसने फिर कहा, ‘उदय इस प्यार का नतीजा मुझे बहुत बुरा मिला है । कहने को तो मुझ पर मेरे बाप का प्यार है लेकिन क्या किसी ने मेरा भी दिल कभी टटोला है । मेरे जो हाथ अपने रोते हुए दादा के आँसुओं को थाम लेते थे वे उनकी सहारा देने में नाकामयाब रहे । मलके आला जहाँआरा के साथ मैंने एक नहीं आठ साल दादा के साये में बैठ कर गुजारे हैं । उनके अशकों की कहानी आज भी मेरे दिल पर ताजी है । उनकी बद आँखें और गालों पर अशक भला मैं कैसे भूल सकती हूँ ? दारा और उसके बेटे ने दुनिया का क्या बिगाड़ा था लेकिन उनकी मौत मेरे लिए काफी थी । उसे मैंने देखा और सुना । दर्द इतना ज्यादा हो गया कि आँखें सूखी ही रह गईं । मायूस होकर इस तरह के न जाने कितने दर्द मैंने पाल रखे हैं । जिसको मैंने प्यार दिया वह दीन दुनिया से गया । मेरा प्यार लेकर क्या तुम भी उसी रास्ते जाना चाहते हो ? इसमें उदय, तुम यह उम्मीद करते हो कि एक दर्द को मैं और पाल लूँ । भला उससे किसका फायदा होगा ? तुम्हारा या हमारा । पहले और तीसरे पहर का सूरज एक सा ही चमकता है । लेकिन दोनों के भविष्य में बहुत अंतर होता है । जसकोट की आजादी तुम्हारे लिए एक ओर है दूसरी ओर मैं । इसे तो

मैं तुम्हारा वहम ही कहूंगी । तुम आदमी हो.....तुम्हारे पास लियाकत, है । जिन्दगी की कड़ी से कड़ी मुसीबतों से तुम्हें टक्कर लेनी है । मुझे साथ रखकर मेरे बाप की नाराजी का फल भोग सकोगे ? उसे दिल ही में दबा कर तो नहीं रख सकते । तुम बड़े हो तुम्हारे पास लियाकत है । दोनों एक दूसरे के लिए महान बने रहें यह क्या थोड़ा है ? मैं जानती हूँ कि जिन्दगी में जवानी की शुरूआत कैसी होती है ? यदि तुमने इसे कह भी दिया तो मुझे इसकी फिक्र नहीं । उसे मैं तुम्हारी भूल ही कह सकती हूँ । यह तो तुम्हारे दिल से मैं एक गलतफहमी को दूर कर देना चाहती हूँ । मैं नहीं चाहती कि उसका बोझ लिए हुए तुम अपने आपको धोखा दो । यह तो तुम्हारे सवाल का जवाब है ।

निसा का विगत जीवन मैं जानता था । आज उसकी उदासी ने अपना सारा निचोड़ मुझे सुना दिया । मैंने कहा, 'शाहजादी मुझे माफ करें ।'

'माफी का तो सवाल ही नहीं उठता । आखिर तुम्हारी गलती ही कौन-सी है ? तुम हँसो, मैं हँसूँ यह क्या थोड़ा है । आखिर दुनिया ने किसकी हँसी को बर्दाश्त किया है ।'

'शाहजादी ठीक कहती हैं.....।' निसा नाखूनों से फर्श कुरेदने का असफल प्रयास कर रही थी ।

'परन्तु मैं भी स्पष्ट कर दूँ कि जब मैं तुम्हारे पास आया उस समय मेरे जीवन के अंधकारमय पट पर तुम बिजली बन कर चमक उठीं । मैंने समझा कि तुमने मेरे जीवन में आँधी की तरह प्रवेश किया । तुम्हारी मूर्ति को हृदय में बसा कर आपत्तियों में मारा-मारा फिरता रहा लेकिन तुम्हें न भूला.....और इस ओर चला आया.....तुम्हारी महिमा के लिए आज भी मेरे पास शब्द नहीं हैं । तुम चाहे जो कहो कम से कम तुम्हारा स्वर्गिक सौंदर्य मुझे अपने चित्रों के लिए सदैव प्रेरण देता रहेगा ।'

'हो सकता है, लेकिन इस कुदरती चीज को मैं तुम्हारी गलती

भला कैसे मान लूँ जैसा कि तुम कह रहे हो ।’

‘ठीक है ।’

मैं चला आया.....

निसा कितनी दूर है इसे मैं समझ गया । उसे देखकर मुझे एक सिहरन सी अवश्य हुई थी, लेकिन उसका दृष्टिकोण समझकर मैं शांत रह गया । यौवन में मनुष्य की बुद्धि का शैशवकाल रहता है । जैसे-जैसे वह वृद्ध होता जाता है उसकी बुद्धि यौवन को प्राप्त होती जाती है । उसी दिन अनमने भाव से उसे मैंने एक पत्र लिखा—

देवी जेबुनिसा—

किसी का जीवन भले मैदान की तरह समतल हो किन्तु मेरा जीवन वैसा नहीं है । न तो उसमें भव्यता ही है और न शांति । मेरे जीवन में एक से एक तूफान उठे और उठेंगे । मेरा जीवन विषमताओं से पूर्ण है । जीवन में जिसे मैंने वरदान समझा वही मेरे लिए अभिशाप सिद्ध हुआ । इसी क्रम से मेरा जीवन बढ़ा और बढ़ता जा रहा है ।

जिस मादकता को तुम्हारे पास देखा वह स्वप्न बन गई—इतिहास बन गई । उसकी स्मृतियाँ ही बस मुझे चिढ़ाने के लिए अवशिष्ट हैं । मेरा जीवन मेरे लिए शायद अभिशाप है । थोड़े से सुख पाकर पिछले दुख भूल जाता हूँ । जब मुझे ठोकर लगती है तो मेरी आँख खुलती हैं किसी का नहीं यह मेरा ही दोष है । इतनी ठोकरें खाकर भी मेरा विवेक जाग्रत नहीं हुआ ।

मेरा जीवन तो कहता है कि स्वप्न और सत्य में कोई अंतर नहीं । तुम्हारी लाल आँखों में चिनगारी थी या मादकता समझ नहीं सका । माँ का प्यार मुझे मिला नहीं । पिता के प्यार का सवाल ही नहीं उठता । तुम्हारा प्यार पाने के लिए बढ़ा था लेकिन तुमने तो अपने आप को सिकोड़ लिया । मेरा जीवन तो उस लहर के समान है जो अपना अस्तित्व खोजती-खोजती तट पर जाकर लीन हो जाती है ।

मैं दिल्ली छोड़ रहा हूँ । जसकोट वापिस लेना है । विश्वाम रखो कि उदय फिर कभी वापिस नहीं आएगा । अपनी इच्छा से आया था तुम्हारी इच्छा से चला गया । जानता हूँ कि पत्र पढ़ कर तुम्हें क्रोध होगा किन्तु मैं क्या करूँ असमर्थ हूँ ।

--उदय

*

*

*

उसके पास यह पत्र मैंने भिजवा दिया ।

निसा ने पत्र पढ़ा । और पढ़कर अपने आप को न सभाल सकी उसने मुझे से मिलने का अनुरोध किया था । शायद मैं उस समय न जाता किन्तु आगरा से जहाँआरा आने वाली थी ।

मैं उस मिली ।

‘उदय तुमने बहुत कुछ उलटा सीधा समझ लिया है ।’ निसा ने कहा । वह उदास थी ।

‘नहीं देवी ।’

‘उदय, तुम्हारे ख्यालात मेरे मन में उठे थे । लेकिन एक बार मैं फिर कह दूँ कि उनके लिए खुश होकर मैं रोना नहीं चाहती ।

‘ठीक कहती हो ।’

‘जाने का भला क्या भूल सवार हुआ है ।’

‘शाहजादी अपना कर्त्तव्य मुझे पहले करना है, वह है जसकोट को फिर से लेना । लोग मेरी राह देख रहे होंगे और एक मैं हूँ कि यहाँ चुपचाप बैठा हूँ । क्या मेरे सिर पर कोई जिम्मेवारी नहीं है ।’

निसा ने एक गहरी और ठंडी साँस ली ।

‘मैं आज ही जाऊँगा ।’

‘उदय, जिस दिन तुम आए थे उस समय तुमने मेरी उदासी का कारण पूछा था ।’

‘हाँ’

‘और मैंने कुछ राजनैतिक कारणों की ओर इशारा किया था ।’

‘हाँ !’

‘बात ऐसी है । राजपूताने की हालत तो तुम जानते ही हो । राणा राजसिंह ने चित्तौड़ छोड़कर अरावली पर्वतों की शरण ली है । सारे राजपूत बादशाह से नाराज हैं ।’

‘हाँ…………।’

भाई जान अकबर ने बगावत करने की सोची है । उनका ख्याल है कि अपने नीचे वह एक बार फिर उसी तरह की सल्तनत हासिल करेंगे या बनाएँगे जैसे कि शाहंशाह अकबर ने बनाई थी । हिंदू और मुसलमानों को वे एक साथ मिलाएँगे । दिल्ली से उन्होंने मेरी मदद मांगी है । यहाँ के सारे हालात छिपे तौर से बताने का काम मेरा है ।’

‘शाहजादी मृत्यु से खेल रही है ।’

‘उदय हरम की इन चार दीवारियों से तो मन ऊब गया । यह जुल्म और ये हालात अब ज्यादा नहीं देखे जाते अब तो यही तमन्ना है कि दिल्ली में भाईजान अकबर की हुकूमत आ जाए तभी अमन चैन और शांति होगी ।’

‘कुछ भी हो शाहजादी, यह राजनीति का खेल बहुत बुरा है । मैं तो इसकी कल्पना ही कर काँप उठता हूँ । आप आलमगीर के विरुद्ध जाएंगी…………मुश्किल है ।’

‘उदय मैंने कदम भी उठा लिए हैं । पता नहीं भविष्य आखिर कहाँ खींच ले जाएगा लेकिन इस बात का जिक्र किसी से नहीं करना । इस बात के लिए तुम्हें मेरी कसम है । मौका आने पर मैं तुम्हारी सहायता के लिए जसकोट सैनिक भेजूंगी ।’

कृतज्ञता के भाव से शाहजादी के प्रति मेरा हृदय गदगद हो गया । उसने फिर कहा, ‘औरगजेब को तुम गाली देते होगे ।’

‘मैं क्या सभी उसे उसकी क्रूरता के लिए गालियाँ देते हैं ।’

‘लेकिन एक बात तुमको बता दूँ……उसे गाँठ से बाँध लो ।’

‘क्या ?’

‘यदि तुम अपने कार्यों में कामयाबी हासिल करना चाहते हो तो तुमको भी अपनी जिंदगी वैसी ही बनानी होगी ।’

‘अर्थात्...!’

‘उसके मकसद को छोड़ दो अपना मकसद तुम उससे जुदा रखो लेकिन जिन जरियों को बादशाह ने पकड़ा है उसे मत छोड़ो ।’

‘कैसे जरिए ?’

‘औरंगजेब सिर्फ तीन घंटे को नींद लेता है । सवेरे से रात तक उसका एक नियम-सा हो गया है । जिंदगी की समस्त चीजों को उसने एक नियम के अन्तर्गत स्वीकार किया है । न वह किसी के लिए रोया है और न हँसा है । उसका रोजाना का एक नियमित कार्यक्रम है । एक पल भी उससे वह इधर उधर नहीं होता । उसका शरीर रक्तमांस का नहीं लोहे का है, उदय, तुम भी लोहे के बनो । यह जमाना ही खून और लोहे का है । शराब को उसने कभी हाथ नहीं लगाया । जहाँ तक इशक माशूकी का सवाल है उसे वह आलसी आदमियों का एक धन्धा मानता है । कामकाजी लोगों के लिए एक दिल बहलाव की चीज ।’

अब तक हम बाहर आ चुके थे । महल के पीछे उद्यान में हम खड़े थे लेकिन गर्मी उस दिन अधिक थी । हवा साँय साँय कर बह रही थी । हवा के साथ धूल भी उड़ कर आती थी । निसा का आँचल हवा के साथ रह रहकर उड़ जाता था वह उसे संभालती थी । वह फिर उड़ जाता था । तारों का मन्द मन्द प्रकाश था । भूत की तरह अन्धेरे में महल सिर उठा कर खड़ा था । उसके स्वर भारी थे । घड़ी घड़ी वह अपने आँसू पोंछती फिर नाक साफ करती । वह पैर के अँगूठे से जमीन कुरेद रही थी । अन्धेरे में रातरानी की भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही थी ।

‘जाओगे.....!’

‘हाँ.....!’

‘कैसे कहूँ ?’ मैंने उसके आँसू पोंछ दिए । मैंने कहा ।

‘शाहजादी संसार की कठोरता हमारी भावनाओं को उसी तरह कुचल देती है जैसे कि एक फूल को पत्थर का भारी टुकड़ा ।’

‘उदय...’ सहसा वह रुक गई ।

‘बोलो रुक क्यों गई ?’ ऐसा लगता था कि जैसे वह एकदम भावुक हो उठी हो । उसने अपने शेरों और कलामों का एक दीवान मेरे हाथ पकड़ा दिया और कहा, ‘यह ले जाओ मुझ नाचीज की निशानी ।’

‘मुझे शमिन्दा न करें शाहजादी ।’

‘उस दिन मैं समझ सकीं थी कि तुम्हें वाकई मेरे कलामों से मुहब्बत है । तुम्हारा दिल तोड़ कर भला मुझे क्या मिलता ?’

इसके बाद उसने मेरा हाथ पकड़ा । उसके हाथों पर पसीना था । वे ठंडे हो रहे थे । उनमें एक हल्की सी कंपन थी । मैं काँप-सा गया । मेरी स्थिति डाँवाडोल-सी हो गई । उसने अपने हाथ से हीरे की अँगूठी निकालकर मुझे पहिना दी ।

‘उदय यह मेरी निशानी है । इसे सँभाल कर रखना ।’

मैं मौन था ।

‘जसकोट स्वतंत्र होगा तो मुझे खबर देना ।’

‘अवश्य दूँगा ।’

‘मैं कुछ मदद दूँगी ।’

‘मुझे कृतज्ञता से कितना दबा दोगी ।’

‘दोस्ती का मजाक मत करो उदय, जो मैं कहती हूँ सुनते जाओ ।’

‘सुनाती जाओ ।’

‘अपने पिता को कभी कष्ट मत देना । मैं उस आदमी की हालत अच्छी तरह से जानती हूँ जिसकी बीबी इस दुनिया में नहीं है ।..... दादा को आगरा के किले में मैंने देखा था । उदय उनकी सूखी आँखों से इतना दर्द टपकता था कि मैं तो देखकर ही काँप उठती थी । जब बैठे वे

पहर पहर तक ताजमहल का अक्स उस छोटे से हरे रत्न में देखते रहते तो मेरी आँखें गीली हो जातीं...जब वे ताजमहल को सूनी-सी निगाहों से देखते उस समय मेरा जी करता कि मैं उनसे लिपट कर रो दूँ ।'

'तुम्हारा जीवन स्वयं कविता है ।' इतने में ही एक बवण्डर-सा उठा और हमारी आँखों में धूल चली गई । वह आँखें मलने लगी ।

आवेश में फिर उसने मेरे हाथ पकड़ लिए ।

वे धीरे-धीरे काँप रहे थे । उसकी आँखों में आँसू आ गए मैंने कहा, 'मैं तो विपन्नावस्था में हूँ । तुम्हें भला मैं इस समय क्या दे सकता हूँ ?'

'जया को अवश्य भेज देना ।' उसने मेरी बात अनसुनी करते हुये कहा ।

'अच्छा !'

इसके बाद मैं तीर सा मुड़ा । आधी रात...घोर सन्नाटा । वह तब तक मुझे देखती रही जब तक उसकी आँखों से मैं ओझल नहीं हो गया । मैं भी पीछे मुड़ मुड़ कर देख लेता था ।

आगरा से उस दिन जहाँआरा नहीं आ सकी ।

*

*

*

औरंगजेब इस समय राजपूताने में था.....

शाहजादा अकबर विद्रोह की तैयारियां कर रहा था ।

सोचता हूँ कि औरंगजेब को बनाया किसने ? शाहजहां ने पश्चिमोत्तर सीमा पर काबुल और कंधार में ठंडी बर्फ में राजपूत लड़ नहीं सकते थे । इस विभाग से बहुधा दाराशिकोह हार कर ही आता लेकिन उसे शाही इनाम मिलते थे ।

इस ठण्डी बर्फ पर और शरीर को भेदने वाली ठण्डी बर्फीली हवाओं में औरंगजेब के नेतृत्व में वही राजपूत जीत कर आते तो उसे क्या मिलता ? सात दिन और सात रात बिना किसी भोजन और नींद के जो व्यक्ति लड़ता और विजय पाता उसका यही पुरस्कार था कि उसे

दक्षिण सीधा मराठों का विद्रोह दबाने भेज दिया जाता । पुरस्कारों की बात तो खैर बहुत दूर की थी । एक पिता का ही जब अपने पुत्रों के साथ इस तरह का ऊँच नीच का व्यवहार था तो पुत्रों में भला समता की भावना कहाँ से आती ? जब शाहजहाँ के पुत्र राजगद्दी के लिए कुत्तों की तरह लड़ रहे थे उस समय शाहजहाँ आगरा के किले में बैठा एक तमाशबीन की तरह तमाशा देख रहा था । उसे फरमान जारी करके अपनी सत्ता स्थापित करनी थी । अपनी सत्ता का प्रतिनिधि उसने बनाया दारा को ।

औरंगजेब को किसी का प्यार नहीं मिला । किसी की ममता नहीं मिली । वह भला किसी को अपना प्यार क्योंकर देता ? उसके पास प्यार और ममता नाम की कोई चीज नहीं थी ।

जहाँआरा और निसा... जहाँआरा को हृद से ज्यादा प्यार मिला । माँ के लिए वह रोई । भाई उसके सामने मारे गये उनके लिये वह रोई । पिता के लिये वह रोई । उसके तो आँसू सूख गए । और निसा ने यह सब अपने अलहड़ और अबोध यौवन में यह सब देखा । वह फारसी की हृद दर्ज की ऊँची कवियित्री थी । संसार के इन अशोभन सत्यों ने उसे एक दार्शनिक बना दिया था ।

अचानक निसा की बात का खयाल आया ।

‘अपने पिता को कष्ट मत देना ।’

*

*

*

‘पिता जी हमें यहां से शीघ्र ही प्रस्थान करना है ।’

‘क्यों ...?’

‘क्योंकि यह स्थान खतरे से खाली नहीं है ।’

‘बेटा यह तो तुमसे मैंने पहले ही कहा था ।’

इसके बाद पिता के साथ मैं दक्षिण की ओर मुड़ पड़ा ।

माँ के विषय में उन्हें सारा हाल मैंने बताया । उस विशालकाय वृद्ध पुरुष की आँखें भीग गईं ।

आज पता लगा कि शाहजहाँ को क्यों पागल होना पड़ा था आज पता लगा कि जहाँआरा उसे क्यों सहारा देती थी ? इसीलिये जान सका कि निसा क्यों उदास हो हो जाती थी । निसा को जीवन के अनुभव मुझसे अधिक थे । इसलिये वह बुद्धिमती थी । उसकी अमूल्य बातों का पता मुझे बाद ही में चलता था ।

तीन



घोड़े पर सवार होकर उदयसिंह तो चल दिया किन्तु रह गई पीछे उसके शिविर में कुमुद और जया । कुमुद मौन बैठी विचार-मग्न थी । जया ने इधर-उधर हाथ मारना शुरू किया । एक कोने में उसको पुस्तकों का ढेर सा दीखा । उदयसिंह की निजी पुस्तकें थीं । एक हस्तलिखित पुस्तक उसे दीखी । उस पर लिखा था 'मेरे संस्मरण' जया को समझते देर न लगी कि वह किताब उदय की है । उसने वह पुस्तक उठा ली और अपने शिविर में ले आई ।

*

*

*

जया ने समस्त पुस्तक पढ़ कर समाप्त कर डाली । आगे अभी लिखा ही जाने को था । उसने निसा का प्रसंग उदय के साथ पढ़ा उसे जेबुन्निसा की याद आ गई । उसने सोचा कि वह लौटने का कुमुद से आज ही अनुरोध करेगी । उदय के विषय में वह सोचती रही । उसे पता लगा कि उदय कौन है ?

‘जया.....’

उदयसिंह को वह जेबुन्निसा का गट्टर देने के पश्चात् आपने शिविर में लौट गई थी । उसके बाद शाही फौजों से उदयसिंह की मुठभेड़ में उसका पति मारा गया था उस पर वज्र गिरा । आखिर उसे किसका सहारा था ? शाही फौज में सैनिकों को अथवा सेना नायकों को अपनी

स्त्रियाँ लाने की मनाही थी । और जया चुपचाप चली आई थी । पति की मृत्यु से एक तो वह निराश्रय हो गई ऊपर से दंड का भय । आखिर वह अकेली ही अज्ञात दिशा की ओर सेवकों सहित चल पड़ी । जसकोट के सैनिकों को वह सौभाग्यवश मिली । उन्होंने उसे कुमुद के पास पहुँचा दिया । तब से वह कुमुद के पास ही थी ।

उदयसिंह के जाने के पश्चात् कुमुद उन्हीं सैनिकों के साथ रही ।

एक बार तुनः राजपरिवार मिल चुका था । साथ ही अजयसिंह भी थे । राजपरिवार के जो सदस्य गुप्त रूप से निकल गए थे वे भी थे । उदय के जीवन का यह एक नवीन प्रभात था । इन पहाड़ों के घने जंगलों में जसकोट के ही सैनिक फैले थे ।

उदयसिंह अपने डेरे पर लौट आया । थका था इसलिए अपने आपको उसने निद्रा के गर्त में लीन कर दिया । सोकर उठा तो पुस्तकों की ओर उसने देखा । वह अपने संस्मरण लिखना चाहता था । देखा तो वह पुस्तक ही गायब । उसने सारा शिविर छान मारा किन्तु व्यर्थ-किष्की का पुस्तक ले जाना तो मुश्किल था । उसके शिविर में आखिर हर कोई तो आ नहीं सकता था । जिसका उस पुस्तक से कोई मतलब होगा उसे तो वही ले जाएगा । जिस समय वह तम्बुओं से गया था उस समय वहाँ पर जया और कुमुद थीं । उसने कुमुद को बुला भेजा ।

‘इस कोने से तुमने कोई पुस्तक ली क्या ?’

‘कैसी पुस्तक ?’

‘मेरी एक हस्तलिखित पुस्तक थी ।’

‘मैंने नहीं देखी ।’

‘आपने नहीं देखी देवी जी तो गई कहाँ वो ?’

‘मेरे पीछे भले पड़ गए.....मुझे क्या पता ?’

‘जया तो नहीं ले गई ।’

‘बुलाकर देखो ।’

मैंने जया को बुला भेजा । उसका चेहरा प्रश्न सुनकर पीला-सा पड़ने लगा । वह नीचे देखने लगी । मैंने कहा 'आपने वह पुस्तक देखी हो तो बता दीजिए ।'

'राजन् पुस्तक मेरे पास है ।'

'आपके पास !' उदय ने आश्चर्य से पूछा ।'

'हाँ मैं अपराधी हूँ ।'

'अपराधी का कोई प्रश्न नहीं है ।'

'आप शिविर से जैसे ही बाहर गए । मेरा ध्यान उस ओर गया । उसे मैं उठा ले गई पढ़ने के लिए ।'

'मुझ से अपराध हुआ ।'

'उमे पढ़ डाला आपने ?'

'जी हाँ.....।'

सुन कर उदय को क्रोध आ गया । कुमुद बीच में ही बोल उठी, 'मुझे नहीं बताया ।'

'कृपा कर उमे उठा लाओ ।'

जया ने अपराधी की भाँति सामने लाकर उस पुस्तक को रख दिया । उदय ने सोचा आखिर इसने पढ़ ही डाला ।

'अपराध के लिए आप दंड दे सकते हैं । जया ने कहा ।

'मैं भला क्या दंड दूँगा ।' उदय ने ठंडे स्वरों में कहा ।

'तो मैं देती हूँ ।' कुमुद ने कहा ।

'क्या कैसा दंड ?'

'यही कि मैं उसे छोड़ती हूँ ।'

उदय मुस्करा तो पड़ा था लेकिन वह मुस्कराहट दबी हुई थी । उदय के मुखान्त भावों को वह समझ गई । इसीलिए एक अपराधी की भाँति ही वह खड़ी रही । उसकी आकृति फीकी-सी लग रही थी ।

'खैर कोई बात नहीं.....उसमें ऐसा क्या लिखा था ।' उदय ने

कहा; 'मुझ पर जो बीती वही तो है।' उदय ने फिर कहा ।

'लाओ तो मैं भी पढ़ूँ।' कुमुद ने कहा ।

'क्षमा करो।' उदय ने उस पुस्तक को अपने पास रख लिया ।
कुमुद हँस पड़ी और जया को लेकर चली गई ।

उदय ने कह तो दिया कि कोई बात नहीं लेकिन उसका सिर चक्कर खाने लगा । उसने सोचा कि आखिर जया को क्या अधिकार था कि उसकी निजी वस्तुओं में हाथ मारती ।

*

*

*

दीपशिखाओं के प्रकाश में कुमुद उदयसिंह के शिविर में बैठी थी ।

'कुमुद', जया ने फिर क्या कहा ?

'कहती थी कि राजन् क्या कहते होंगे ?'

'खैर उसने कोई चोरी तो नहीं की।' सहसा उदय का चेहरा गंभीर हो गया । उसने प्रहरी से जया को बुलाने को कहा । जया उपस्थित हो गई ।

'आपने मेरे संस्मरण तो पढ़ ही डाले ।'

'जी हाँ ।'

'निसा ने जो आपके बारे में कहा उसे भी पढ़ा होगा ।'

'जी हाँ ।' मैं शाहजादी के पास जाना चाहती हूँ ।

कुमुद तड़फ उठी । उसने कहा, 'यह नहीं होगा ।'

उदय व्यंग्य से हँस उठा । 'उसने कहा, 'कुमुद जो होना है सो होगा और होकर ही रहेगा । हमारे तुम्हारे कहने या न कहने से क्या होता है ?'

'यह नहीं होगा ।' कुमुद ने कहा ।

'मुझे जाना ही होगा ।' जया ने कहा ।

बहिन मैं तुम्हारा आभार नहीं भूल सकूँगी.....लेकिन.....'

'लेकिन क्या ?'

‘भगवान के लिए मुझे शाहजादी के पास जाने दीजिए । रोकिए मत ।’

उदय ने कहा; ‘शाहजादी निसा ने जब मुझे तुम्हें भेजने को कहा था तो उसके स्वर्णों में गहरा आग्रह था । मैं जानता हूँ कि तुम पर कैसा वज्राघात हुआ है । परन्तु तुम्हीं कहो कि भाग्य का हाथ कौन पकड़ सकता ?’

‘राजन् आप ठीक कहते हैं ।’

‘मैं तुम्हारे साथ तीन चार विश्वस्त सैनिक भेज देता हूँ वे तुम्हें दिल्ली पहुँचा आएँगे ।

कुमुद के चेहरे पर गहरी उदासी छा गई ।

शाहजादी निसा के पास जाने से पहले दूसरे दिन जया मेरे पास आई । कुमुद भी वही थी ।

‘बहिन तुम्हारे उपकारों को मैं न भूल सकूँगी ।’ जया ने कहा ।

‘कैसे उपकार ?’

‘यह तो आप स्वयं जानती हैं । मैं क्या बताऊँ कैसे उपकार ?’

‘वह मेरा कर्त्तव्य था ।’

‘आप आज जसकोट की सूत्रधारिणी हैं ।’

‘व्यर्थ बड़ाई मत करो……’

‘सच कहती हूँ……’

‘क्यों जाती हो ?……रुक जाने में कोई हर्ज है क्या ?’

बहिन किसी स्त्री ने आप जैसा ही प्यार मुझे दिया । उसका जीवन मेरा जीवन था । मेरा जीवन उसका जीवन था । वह है शाहजादी निसा……उसके आग्रह को टालना मेरे लिए असंभव है ।’

जाते समय जया ने कुमुद का हाथ जोर से दबाया और कहा, ‘उदय-सिंह को छोड़ना मत । कुमुद के कान लाल हो गए । चेहरे पर सुर्खी दौड़ गई ।

‘राजन् से अच्छा व्यक्ति कोई नहीं..... वे महान हैं ।’

‘चुप रह ।’

‘मैं जानती हूँ ।’

इसके बाद वह चली गई ।

*

*

*

दक्षिण की राजनैतिक अवस्था उदय के लिए अनुकूल हो रही थी । सबसे बड़ी तो यह बात थी कि बुरहानपुर में मिर्जा राजा जयसिंह की मृत्यु हो चुकी थी । मुगल सेना का ऐसा कोई कुशल सेनानायक नहीं था जो कि दक्षिण की इस बिगड़ी हुई राजनैतिक अवस्था का संचालन ठीक तरह से करता ।

मिर्जा राजा जयसिंह अपने जीवन में कभी किसी युद्ध में परास्त नहीं हुआ था । अपने युग का वह भारी कूटनीतिज्ञ था । अपने राजत्वकाल में जयपुर के ऐश्वर्य को उसने शिखर पर पहुँचा दिया । वह शाहजहाँ का सफल सेनानायक था । परन्तु जय हिन्दुस्तान के राज्य के लिए शाहजादों में युद्ध हो रहा था उसी समय वह सबका भविष्य समझ गया था । सामूगढ़ की लड़ाई के बाद वह स्पष्ट समझ गया था कि सितारा औरंगजेब का है । उस समय उसे शाहजहाँ का आदेश था कि वह दाराशिकोह की सहायता करे । परन्तु औरंगजेब का सितारा चमकता देखकर वह उसकी ओर मिल गया । एक वह भी समय था जब जयसिंह दारा की इच्छाओं को प्रगट होने से पहले पूर्ण करने को तैयार रहता था और एक वह भी समय आया, जबकि सुलेमानशाह दारा के पुत्र ने जयसिंह से हजार मिन्नतें कीं, रोया, गिड़गिड़ाया, घुटनों के बल गिर कर उसके पावों को हाथ लगाया लेकिन जयसिंह का कूटनीतिज्ञ आखिर नहीं हिला और नहीं हिला । शाहजादे सुलेमान के आँसू जयसिंह के सामने से उभी तरह बह गए जैसे बतख के पंखों से पानी लग कर हट जाता है । जैसे दोनों का कभी मेल ही न हुआ हो ।

यही जयसिंह था जिसने गुजा को परास्त किया था और यही जयसिंह था जिसने शिवाजी को अपनी कूटनीति से औरंगजेब का कैदी बनाया । दक्षिण में आकर उसने शाही आधिपत्य जमाने के लिए दो तरीके अपनाए.....या तो युद्ध और या रिश्वत । गोलकुण्डा और बीजापुर के बड़े-बड़े सामंतों और सरदारों को उसने भारी-भारी रिश्वत पर खरीद लिया था । वे बीजापुर और गोलकुण्डा में घुन का कार्य कर रहे थे । याखिर उसने बीजापुर पर एक अग्रिमदल के साथ चढ़ाई की । यह अग्रिमदल था, शाही फौज का मुख्य भाग नहीं । शत्रु का लोहा देखने के लिए जयसिंह ने यह किया । अपनी निजी जेब से जयसिंह लगभग १ करोड़ रुपया रिश्वत देने में खर्च कर चुका था । जबकि औरंगजेब ने केवल १४ लाख रुपया ही इस कार्य के लिए दिल्ली से भेजे थे । शाही खजाने से यह पैसा वसूल ही करना था ।

इसी अग्रिमदल की बुरी तरह से हार हुई । औरंगजेब ने मुना वह क्रोधित हो उठा । उसने फरमान जारी कर जयसिंह को वापिस दिल्ली बुलाया । जयसिंह के लिए यह सब काफी था । वह काफी वृद्ध हो चुका था । इस आघात को न सह सका । दिल्ली लौटते हुए बुरहानपुर में उसकी मृत्यु हो गई ।

और शिवाजी !

वह बन्दी बना कर दिल्ली तो पहुँचा दिया लेकिन वह मिठाई के टोकरे में भाग निकला । औरंगजेब जिसकी कैद से उसके भाई, बाप और नाती नहीं निकल सके शिवाजी निकल कर भाग गया । वह दक्षिण आया । दक्षिण में आने पर उसे एक भी मुगल का विश्वास नहीं रह गया । उसने नये सिरे से अपनी योजना बनाई और छापे मारने प्रारंभ किए । अब समय उसका था । मैदान उसका था । एक के बाद एक उसने गढ़ जीतने प्रारंभ किए । शाही फौजें बुरी तरह से शिवाजी से उलझी थी ।

जसकोट पर आक्रमण कर उसे वापिस लेने का इससे अच्छा मौका और कोई नहीं था। उदयसिंह में नया जोश था। इस कारण भी उसके साथ एक नया योद्धा था—वे थे अजयसिंह। अजयसिंह ने कंद में रहने के कारण वर्षों से तलवार को हाथ नहीं लगाया था। फिर भी रण-संचालन में उनकी अनुभवपूर्ण बुद्धि से उदय बराबर लाभ उठा रहा था। समस्त सैनिकों में नवीन उत्साह था। शाही फौजों को उदय के अस्तित्व का पता नहीं था।

‘समय आ गया है जब कि हम जसकोट पर चढ़ाई करें।’ उदय !

‘दुर्ग में कितने सैनिक हैं?’ अजयसिंह ने पूछा।

मैंने कहा, ‘पाँच हजार परन्तु पास के भागों से पन्द्रह हजार सैनिक उनकी सहायता के लिए कभी भी आ सकते हैं।’

‘शाही फौजें तो शिवाजी से उलभी हैं न।’

‘उनकी बात छोड़िये।’

‘क्यों?’

‘उगकी स्थिति मैं जानता हूँ।’

‘तुम्हारा आशय।’

‘शाही फौज के अच्छे-अच्छे सरदार शिवाजी से बीजापुर और गोलकुण्डा से लड़कर काम आ चुके हैं। स्वयं जयसिंह न रहा तो अब कौन रहेगा। जयसिंह दक्षिण के एक-एक पत्थर को पहिचानता था। शाही फौज में सिर्फ गिनती ही है। शाहजादे स्वयं रिशवतखोर हैं। बादशाह का ध्यान राजपूताने की ओर लगा है।’

‘मतलब यह है कि हमारे पास बीस या पच्चीस हजार सैनिक होने चाहिएँ।’

‘बीस हजार हैं। सब कुशल सैनिक हैं।’

‘युद्ध-संचालन आप कीजिए।’

‘बेटा ! मेरी उम्र ही कहाँ रही और हाथों में वह ताकत कहाँ।’

‘रण-योजना तो आप कर सकते हैं ?’

‘हाँ कर तो सकता हूँ लेकिन समस्त सेनाओं का सेनापतित्व तुम करो । जहाँ तक सलाह का प्रश्न है मैं दूँगा ।’

‘मेरा विचार यह है कि पहले चलकर सीधा दुर्ग को घेरा जाय । वहाँ पर सेना के एक भाग को हम तैयार रखेंगे जो शाही फौजों की बाहर से आने वाली फौज से टक्कर ले । शाही फौज से खुले स्थल पर मुठभेड़ लेकर धावा किया जाय तो उन्हें परास्त करने के पश्चात् गढ़ पर आक्रमण करना कठिन नहीं होगा ।’

‘बात तो तुम्हारी ठीक है लेकिन पहले ही से मार्ग में तुम ऐसा स्थल चुनकर रखो जहाँ पर शाही फौज ने मुकाबिला में सरलता हो ।’ अजयसिंह ने कहा । इसके बाद वे उठकर चले गये । उन्हें शायद कोई आवश्यक कार्य था । इसके बाद उदय ने अपने तीन प्रमुख सेनानायकों को बुलाया । वे उपस्थित हुए ।

‘देखो हमारा रास्ता शायद ही कोई रोके । इसलिए पहला आक्रमण उन पर करना है ।’

‘नगर तो ध्वस्त है ।’

‘नगर ध्वस्त है तो क्या हुआ ? इस पर कब्जा करने पर विश्राम के लिए हमें सुरक्षित स्थान मिल सकेगा । दुर्ग के गोले भी वहाँ कुछ नहीं कर सकेंगे । हमारी भविष्य की समस्त योजनाओं का संचालन वहीं से होगा । किले पर वहाँ से हम आड़ लेकर ठीक तरह से गोले बरसा सकेंगे ।’

‘जैसी आज्ञा ।’

✱

✱

✱

‘ये अंगूठी किसकी है ?’ कुमुद ने पूछा ।

उदय ने अपने हाथों की अंगुलियों की ओर देखा और विशेषकर अंगूठी को और गंभीर हो गया । उस दिन संध्या के समय कुमुद और

उदय गोदावरी के तट पर बैठे थे । कुमुद एक बड़े से पत्थर पर बंठी थी और पाँव बहते पानी में लटके थे । जहाँ वे बैठे थे उस ओर पानी उजला था । सूरज डूब रहा था । बस, अभी वह क्षितिज की सतह पर ही था ।

‘उदय ! तुम तो गंभीर हो गये ।’ उदय ने फिर भी कुछ नहीं कहा । वह मौन रहा, उसने कहा, ‘अतीत के बारे में कुछ न पूछा करो ।’

‘तो क्या इसका सम्बन्ध अतीत से है ?’

‘हाँ.....’

‘तो फिर तुम्हें तंग नहीं करती ।’

कुमुद के मुख पर डूबते सूर्य की किरणों तो पड़ ही रही थीं किंतु पानी में भी उन सूर्य की किरणों का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था । एक ज्योति-स्तम्भ-सा बन गया था । उदय ने कहा, ‘इस मास में हम आक्रमण कर देंगे ।’

‘पूरी तैयारी हो गई ?’

‘हाँ ।’

‘अब तो प्रायः सैनिक नये हैं ?’

‘लेकिन वे अनुभवी हैं । शाही फौज के भी बहुत से सैनिक हैं । उन्होंने कई मास का वेतन न मिलने के कारण बादशाह की नौकरी छोड़ दी है ।’

‘इस बार अच्छी तरह से संभलकर लड़ना । कहीं अधिक घाव न लगे देखना’ कुमुद का स्वर लड़खड़ा गया ।

‘तुम्हारा स्वर काँप क्यों रहा है ?’

‘मैं कैसे कहूँ कि तुम लड़ो.....युद्ध से तो मुझे भय लगता है ।’ कुमुद ने कहा ।

‘तुम्हें युद्ध से भय लगता है इसलिए, तुम्हारी वाणी भी काँपने

लगी कुमुद ! करूँ क्या ? किया क्या जाय आखिर ? आज युग कैसा है ? यदि ईंट का जवाब पत्थर से न दिया जाय तो अत्याचार सहने पड़ते हैं । यदि अत्याचार करना पाप है तो अत्याचार सहना भी तो पाप है । जब मेरी नसों में खून है तो यह मैं कैसे देखूँ कि मेरे प्रदेश पर कोई दूसरा अधिकार जमाये बैठा रहे । लोग हमारी स्त्रियों की इज्जत लूटें, हमारी प्रतिष्ठा पर आघात करें, आखिर इसका उत्तर कैसे दिया जाय ? मैं मानता हूँ कि एक सैनिक अपनी स्त्रियों का सुहाग तो लूटता ही है साथ ही शत्रु की स्त्रियों का भी सुहाग लूटता है । परन्तु कुमुद ! क्या किया जाय ? हमें जीवित रहना है ।' यह कहते कहते उदय आवेश में आ गया । कुमुद सहम-सी गई । उसने पंर पानी से बाहर निकाल लिये । उसने फिर कहा, 'कुमुद ! मैं किसी का घर लूटने नहीं जाऊँगा, दूसरे को तंग नहीं करूँगा, दूसरों पर अत्याचार नहीं करूँगा ; परन्तु मेरे घर में घुस कर जब मुझ पर कोई अत्याचार करेगा तो मैं उससे जान पर खेल कर लड़ूँगा ।'

'ठीक कहते हो ।' धीमे किंतु गंभीर स्वर में कुमुद ने कहा ।

'सारा दक्षिण आज विपन्नावस्था में है । सैनिक का अर्थ आज है डाकू । सैनिक किसान के लहलहाते खेत को काट कर आज ले जाता है । चाहे वह सैनिक हिन्दू हो या मुसलमान । उसके लिए कोई भी सैनिक किसी डाकू से कम है ? वह दिन दहाड़े आता है और उसकी खेती-बाड़ी तहस-नहस कर देता है । ऐसी स्थिति में हमें सफलतापूर्वक बढ़ना है ।'

'किंतु जसकोट की विजयश्रो अमर है ।'

'इसी विश्वास को लेकर तो बढ़ रहा हूँ ।'

*

*

*

उदय कार्य से अभी निवृत्त ही हुआ था । सोने जा रहा था कि प्रहरी ने समाचार दिया कि सागर नामक कोई व्यक्ति इसी समय मिलना चाहता है । काफी मना करने पर भी वह नहीं मानता ।

‘उसे आने दो ।’ उदयसिंह समझ नहीं सका कि आखिर डेरे के भीतर सीधा यह उसके शिविर तक आ कैसे गया ? क्या किसी प्रहरी ने नहीं रोका इसे बाहर ? द्वार का कपड़ा उठा कर सागर ने अन्दर प्रवेश किया । उदयसिंह अपनी चारपाई पर बैठा था । सागर की आँखें चढ़ी हुई थीं । मूछों पर उसने ताव दे रखा था । बाजू में तलवार लटक रही थी । अभिवादन करने के पश्चात् वह सीधा तन कर खड़ा हो गया ।

‘तुम……?’ उदय ने कहा ।

‘जी हाँ मैं…… राजन्……।’

‘तुम्हारी इस समय यहाँ क्या आवश्यकता थी ?’

‘आपको नहीं थी मुझे है ।’

‘अभी भी कुछ करने की इच्छा है ।’

‘जी हाँ……’

‘क्या ?’

‘विद्रोह……।’

‘वह तो तुम्हारी पुरानी आदत है । जसकोट की हार से मन नहीं भरा शायद । दिखता है अभी भी कोई कसर बाकी है ।’

‘राजन् ! कसर तो बहुत बाकी है और रहेगी, खैर जाने दीजिए इन बातों को । मैं आया हूँ आज अपना हक माँगने ।’

‘तुम्हारा हक ?’ उदयसिंह ने व्यंग्य से कहा ।

‘हाँ अपना हक ?’

‘तुम्हारा हक है मृत्यु चाहो तो अभी वह दिलवा सकता हूँ ।’

‘राजन् ! मैं मृत्यु से नहीं डरता लेकिन सागर को मारने वाला अभी तक पैदा नहीं हुआ ………’

‘इतना घमंड ठाकराँ !’

‘घमंड नहीं है यह राजन् !’

‘फिर क्या है ?’

‘मेरा स्वाभिमान !’

‘ठाकराँ ! ज्यादा अकड़ अच्छी नहीं होती ।’

‘जानता हूँ राजन् ! लेकिन मैं एक गरीब आदमी हूँ गरीब भला
आपसे क्या अक्लमन्द होगा ।’

‘तुम्हारे आने का क्या उद्देश्य था ?’

‘कहा न कि अपना हक माँगने आया हूँ ।’

‘कैसा हक ?’

‘आप जानते हैं न राजन्, कि अब युद्ध होगा ।’

‘हाँ वह तो जानता हूँ ।’

‘और भयंकर युद्ध होगा विशेषकर दुर्ग में ।’

‘फिर मैं क्या करूँ ?’

‘जसकोट की विजय होगी ।’

‘तो यही बताने इतनी दूर से आए हो ।’

‘मेरी बात पूरी सुन लें राजन् ! फिर अपना मत दें ।’

‘तुम्हारी बात सुनने से क्या फायदा ? एक विद्रोही का विश्वास ही
क्या ?’

राजन् ! जसकोट की विजय होगी और सागरसिंह की मृत्यु होगी ।
मैं मरने से नहीं डरता लेकिन अपना हक लेने आया हूँ । मेरी मृत्यु के
बाद मेरी लाश को कम से कम कन्धा दे देना राजन् ! इसे जहाँ से लाए
हो वहीं छोड़ आना । मृत्यु के बाद मेरा कोई वश नहीं इसलिये यहाँ
तक आया हूँ । यदि मेरा वश मृत्यु के पश्चात् भी चल सकता तो यहाँ
तक नहीं आता ।’

‘हाँ तुम्हारी लाश कहाँ छोड़ी जाय ?’

‘राजन् ! स्मरण होगा आपको उस श्मशान का, उस आधी रात का,
उस टिमटिमाते दीपक का और उसके पास बनी उस समाधि का । वह
समाधि मेरी पत्नी की है । कष्टों को भेलते-भेलते वह इस संसार से

चली गई उसी के पास फूँक कर मेरी अस्थियों को पहुँचा देना और समाधि बनवा देना । बस यही मेरी इच्छा है और यही मेरा हक ।’

‘ठाकरां.....तुम्हारी मृत्यु भी तुम्हारा कलंक नहीं धो सकेगी । तुम्हारी लाश को गीदड़ों के सामने फेंक देना चाहिये । तुम्हारे कुकर्मों को देखते हुए तो तुम्हारा यही पुरस्कार है । जसकोट पर जब आफत आई थी, हर ओर से आफतें आ रही थीं, तुमने उस समय विद्रोह किया । अरे अधम ! साथ नहीं देना था तो कम से कम शत्रुओं से तो नहीं मिलना था । अपना इरादा बता देते । क्या मैं जबरदस्ती कर रहा था । खैर, तुमने जो किया उसका फल मैं तुम्हें ठीक-ठीक दूँगा ।’

राजन् ! मैंने विद्रोह किया है या नहीं यह समय बता देगा वह बात दूसरी है । लेकिन आपको यह वचन देना होगा ।’

‘वचन... और न दूँ तो ।’

‘वह मेरा हक है ।’

‘ठाकरां ! क्या हक हक चिल्लाता है । शर्म नहीं आती । कैसा हक ? कहाँ का हक ? तेरा मुझ पर कौन-सा उपकार है जिसका हक माँगता है ।’

उदयसिंह को अब तक क्रोध आ गया था । चारपाई से उतरकर वह सीधा खड़ा हो गया । सागर ने शांत स्वर में कहा, ‘राजन् ! क्रोध भेँ आने के कई मौके हैं । जहाँ तक मेरे उपकारों का सवाल है वह तो समय बता देगा और बाकी समझने की बात है । सागर ने आज तक किसी के सामने हाथ नहीं पसारे । भीख नहीं माँगी । उसने अपना हक लड़ कर लिया है । यही एक मौका है जहाँ वह कुछ नहीं कर सकता । मैं मानता हूँ कि मैंने आपका नमक खाया है लेकिन इसका आशय यह नहीं कि मरने के बाद आप मुझे कंधा देने तक का प्रबंध न करें ।’

‘ठाकरां ! कह दिया मैंने कि तुम्हारी लाश कुत्तों और गीदड़ों के हिस्से जायगी ।’

‘राजन् ! हक की बात तो खैर दूर रही । मरने के बाद भी कम से कम एक आदमी दूसरे को सहानुभूति देता है । मरने के बाद कौन किसका दोस्त.....एक राजा के नाते नहीं तो कम से कम एक आदमी के नाते तो अपने कर्तव्य का ख्याल करिये ।’

‘अपने कर्तव्य मैं अच्छी तरह से समझता हूँ ।’ शिविर में शोरगुल सुन कर कुमुद और अजयसिंह आ गए थे । उनके शिविर पास ही थे । उदय क्रोध से तन कर खड़ा था ।

‘राजन् ! यह आपकी अहंमन्यता है । गर्व किसी का नहीं रहा है और न रहेगा.....मुझे सिर्फ एक बार आप ‘हाँ’ कह दीजिए मैं यहाँ से चला जाऊँगा ।’

‘तुम्हारा कोई दवाव है क्या ? क्यों हाँ करूँ ? कौन-सा तुम्हारा मुझ पर उपकार है ?’

‘उपकार.....राजन् ! इसको समझने की बजाय आप चिल्लाए जा रहे हैं । याद है आपको जब विपन्नावस्था में हार कर अपने घायल घोड़े पर जा रहे थे । उस समय किसने आपको अपना घोड़ा दिया था ? किसने आपको कुमुद का रास्ता बताया था ! मैं वहाँ न होता तो आप क्या करते ? आपके भागे जाने का पता था । मैंने विद्रोह किया होता तो उस मौके से अनुचित लाभ उठाता लेकिन मैंने वह नहीं किया उसके बाद भी आप मुझ पर विगड़ रहे हैं ।’ उदयसिंह विचार में पड़ गया । उसने सागर को मौन होकर देखा । अजयसिंह और कुमुद उदय का मुँह अभी तक कौतूहलवश देख रहे थे ।

सागर ने कहा, ‘मुझे समझ नहीं आता कि आपको आपत्ति क्या है ?’

‘ठाकरा ! यदि तेरी यही इच्छा है तो जा उसकी व्यवस्था हो जाएगी.....।’

‘बस मैं यही सुनने के लिए यहाँ आया.....अब सागर को किसी की चिंता नहीं ।’

‘नंगों को किसकी चिंता है भला ?’

‘और एक बात.....जिस समय आप गढ़ घेर लेंगे उस समय रोज रात को पहले पहर में दुर्ग की पूर्वी ओर बुर्ज के पास जो खुली दालान है उस ओर गौर से देखते रहें । जिस दिन वहाँ पर आपको मशाल का प्रकाश तीन बार बुझ कर फिर तीन बार जलता दिखाई दे तो समझ लेना कि सदर फाटक पर सागर है । उस रात को आप सारे सैनिक तोप के गोले की परिधि के बाहर एकत्रित रखना । सवेरे सदर ददरवाजा खुल जायगा । फाटक के खुलते ही उस ओर जोर मार कर जो आपसे हो सकेगा कर लेना । उसके बाद जसफोट के दुर्ग में कोई आपका रास्ता नहीं रोक सकेगा ।’

‘तुम जहाँ कहीं जाओगे वहाँ गदर करोगे ।’

‘राजन् ! हर समय हकूमत ठीक नहीं होती । मैंने जो कहा है । मान लेना । मौके पर काम देगा ।’

इसके बाद उसने अभिवादन किया और जाने के लिए हाथी की तरह उसने अपना पूरा शरीर घुमाया ।

उदय ने कहा, ‘ठाकराँ, यदि मैं अपना वचन पूरा न करूँ तो....’

सागर ने आधे मुड़ कर कहा, ‘राजन् ! आपने एक बार वचन दे दिया है । जानता हूँ आप ऐसा नहीं करेंगे ।’

उसके बाद उसे डेरे से बाहर तक छोड़ने के लिए उदय ने उसके साथ प्रहरी कर दिया । उसका घोड़ा डेरे से बाहर ही था ।

जिस तरह बिजली चमकने के बाद आँखों पर अपनी चमक छोड़ जाती है उसी तरह सागर शिविर में उपस्थित तीनों जनों पर अपनी छाप लगा गया ।

‘आदमी कौन था यह ? पानीदार मालूम होता है ।’ अजयसिंह ने कहा ।

‘सागर था ।’ कुमुद ने उत्तर दिया ।

‘हाँ सागर था.....मुना था कम्बख्त को फाँसी होने वाली थी,

लेकिन नहीं.....हुई।'

इसके बाद सारी बात उदय ने अजयसिंह को सुना दी ।

*

*

*

हमारे शिविर सुरक्षित स्थानों में थे । तीन ओर पहाड़-थे एक ओर सँकरी-सी घाटी थी । इसी से हमारा आना-जाना होता था । सारी सेना का पाँचवाँ हिस्सा भविष्य के लिए एवं डेरे की सुरक्षा के लिए रख बाकी सेना को प्रयाण के लिए आदेश दिया । इस समय सेना साँधी उदय के नीचे थी । पहले उदय अपने अन्य जागीरदारों एवं जमींदारों पर तो आधारित था ही किन्तु उसकी सेना कई जानियों एवं टोलियों में बँटी थी जो पहले अपनी जाति और टोली का ख्याल ज्यादा रखती । उदय की पराजय का पहले यह एक भारी कारण था । अब की बार उसने सारी सेना को विधिपूर्वक शपथ ग्रहण करा पहले अपने प्रति ईमानदार होने को कहा । अबकी समस्त जवान सैनिक शिक्षा पाये हुए थे । वे अपना काम जानते थे धस्त्र लेकर साँघे युद्ध में दौड़ने वाले नहीं थे ।

उदय ने जसकोट के दुर्ग से दस कोस दूर पर अपना पड़ाव डाला । यह स्थल जसकोट के बाहर से दुर्ग की ओर जाने वाला राजमार्ग था । जगह भी उपयुक्त थी । यहीं से उसके कुछ सैनिक तो निकटवर्ती पहाड़ों में छिप गए और कुछ जासूस की तरह शाही फौजों का पता लगाने की ओर बढ़े । उदय का विश्वास था कि यदि बाहर से कोई शाही फौज के दस्ते न आते हों तो सीधा नगर पर आक्रमण कर उसे ले लिया जाए ।

*

*

*

शाही फौजों को उदयसिंह के उठने का समाचार मिला ।

औरंगजेब राजपूताने में व्यस्त था । शाहजादा अकबर ने बगावत का झंडा बुलन्द किया था । शाहजादी जेबुन्निसा दिल्ली से उसे आवश्यक

गुप्त समाचार भेज रही थी। औरंगजेब तो दक्षिण में नहीं आ सकता था। अतएव जसकोट के किलेदार को ही सारा सेनापतित्व का भार संभालना पड़ा।

सागर.....

उसने किलेदार से काफी गाँठ ली थी। दोनों ही मदिराभक्त थे। दोनों की खूब पटती थी।

‘सागर..... उदयसिंह तो इस वक्त काफी जोर शोर के साथ उठा है।’ किलेदार ने कहा।

‘कुछ नहीं होता.....खाँ साहब ! अपना काम हे लड़ना।’

‘वह तो खैर है ही लेकिन काफी संभल कर लड़ना होगा।’

‘सो तो है ही।’

‘क्योंकि पिछली लड़ाई में मैं देख चुका हूँ कि वह काफी मुस्तैदी के साथ लड़ता है।’

‘आप ठीक कहते हैं।’

‘शाही फौजों में यदि वह होता तो उसे एक भारी ओहदा मिल गया होता।’

‘परन्तु होता कैसे ?’

‘यही तो उसने बेवकूफी की।’

‘बेवकूफी.....’ सागर का चेहरा लाल हो उठा।

‘अगर तुम्हारी तरह अवलमन्द होता तो उसे इतना नुकसान न उठाना पड़ता।’

‘खाँ साहब !’

‘कहो ठाकरा !’

आप से एक अनुरोध है। आज रात महफिल जमाने दे.....क्या पता शायद यह जिंदगी की आखिरी महफिल हो। क्या पता खाँ साहब ! हम इसके बाद जीते रहेंगे या नहीं। बस, मीत से खेलने से पहले एक महफिल हो जाए।’

‘बात तो तुम्हारी पते की है ठाकुर ! लेकिन……’।’ किलेदार ने गंभीर मुद्रा धारण कर कहा—

‘तुम बादशाह का मिजाज नहीं जानते ’

‘जानता हूँ खाँ साहब ! कि उन्हें महफिलों, नाच, गाने आदि से चिढ़ है ।’

‘बस यही बात है ।’

‘परन्तु इस बात को हम उनके कानों तक नहीं पहुँचने देंगे ।’

‘ये फौजी बात को हजम करना नहीं जानते ।’

‘तो ऐसा हो कि यह महफिल सख्त पहरे में हो—किले के बाहर किसी को कानों कान खबर न हो ।’

‘दिल तो मेरा भी बहुत करता है लेकिन धबराता हूँ । ये फौजी हरामजादे बात को हजम करना नहीं जानते ।’

‘खान ! डरने का काम है औरतों का । आप आज्ञा भर दे दीजिए । सागर सब कर लेगा ।’

‘मेरा ख्याल है कि यह नादानी होगी ।’ किलेदार ने कहा । सागर जोर से हँस पड़ा । उसने कहा, ‘खाँ साहब ! वास्तव में ये बातें नादानों की ही हैं । परन्तु पैदा होते और मरते वक्त आदमी नादान ही होता है । मौत के दीवानों को जिंदगी और बुजुर्गी से क्या ? आणकी खिदमत में तो यह सारी जिंदगी खत्म हो जाएगी । आखिरी रात में एक महफिल हो जाय । फिर तो मैदान पड़ा है । लड़ना ही लड़ना है ।’

‘इस महफिल से फायदा क्या होगा ?’

‘आखिर इससे नुकसान भी क्या होगा ?’ किलेदार उत्तर सुनकर हँस पड़ा । उसने कहा, ‘अच्छा एक बार तुम्हारे मन की ही हो जाय !

*

*

*

रात्रि के प्रथम याम में दीवाने-आम अनेक दीपशिखाओं से आलोकित हो उठा । किलेदार और सागर दोनों ने डटकर मदिरा पी

मदिरा के नशे में सागर उन्मत्त हो उठा । तबले की धुन पर सारंगी की गत बज रही थी । सागर ने उदय की महफिल भी देखी थी । यह उस महफिल से भिन्न थी । इस पर मुगल छाप पड़ी थी । साकी ने सागर की प्याली भर दी । उसने पी ली । किलेदार को भी शराब मिली ।

‘खाँ साहब ! यही जिन्दगी है ।’ सागर ने कहा ।

‘ठाकुर ! वाकई जिन्दगी यही है ।’

जीवन के तीव्र प्रति आघातों ने सागर को मदिरा-भक्त बनाया था आज का आयोजन उसकी ही प्रतिक्रियामात्र था ।

साकी का गीत गूँज उठा.....

उसका भाव था—

एक दिन रजनी की घोरतम छाया में सरिता का प्रवाह एक पहाड़ी ने रोक लिया ।

सरिता से अनेक धाराएँ उस वेग को बनाए रखने के लिए निकलीं और सूख गईं नष्ट हो गईं ।

एक शाखा ने सरिता से विद्रोह कर पहाड़ी से शरण माँगी । पहाड़ी ने शरण देना तो स्वीकार किया किंतु कहा, ‘तुम्हें मेरी दिशा में बहना होगा ।’

स्वीकार है ।’ रुखा-सा उत्तर था ।

सरिता का प्रवाह रुक गया किन्तु पहाड़ी की दिशा में उस शाखा का प्रवाह बहता ही गया । पहाड़ी की दिशा में शाखा बहती ही गई ।

धीरे-धीरे पहाड़ी का अस्तित्व इस धारा में लीन होने लगा । पहाड़ी को क्रोध आ गया । उसने कहा, ‘मैंने तुझे शरण दी और तूने मेरा शोषण किया ।’

पहाड़ी को क्रोध आ गया उसने शाखा का शोषण कर लिया । शाखा ने पहाड़ी का शोषण कर डाला । अर्थात् दोनों मिट गईं ।

सरिता का वेग रोकने वाला अब कोई नहीं था । उसने जोर लगाया और बह गई ।

अन्तर केवल इतना ही था कि सरिता में अब नया पानी था.....
पुगना नहीं.....

*

*

*

सागर ने गीत सुना और वह गम्भीर हो गया । वह मदिरा पीकर लड़खड़ा रहा था । उसने हुक्के की नली से मुँह लगाया और साकी को घूर कर देखने लगा ।

तबले की धुन पर सारंगी बजे जा रही थी । महफिल का समा बैधा हुआ था । साकी ने मदिरा देना बन्द कर दिया था । वह भी नृत्य कर रही थी । जिस समय नृत्य करती हुई गरदन नीचे कर मुड़ती तो उसकी कमर बल खा जाती । उसकी चोली और लहंगे के बीच उसकी कमर आवरणहीन थी । किलेदार की आँखें तो वहीं लगी थीं । किलेदार ने सागर से हुक्के की नली लेकर उसे मुँह लगाया ।

सागर ने साकी को इनाम दिया । उसने वही गीत गाया ।

सागर ने फिर अधिक इनाम दिया साकी ने उसे पुनः गाया ।
सागर चिल्ला उठा, 'हरामजादी ! चुप करती है या नहीं ।'

मक्खन में जैसे छुरी घुस जाती है उसी तरह सारी महफिल सन्नाटे में आ गई । दो तीन सामंत सागर को आश्चर्य से देखने लगे । किलेदार स्वयं आँखें साफ कर के देखने लगा था । वह नहीं चाहता था कि साकी वह गीत गाए इसलिए वह अधिक पुरस्कार देकर उससे यह आशा करता था कि वह पुनः वही गीत न गाए । परन्तु साकी समझती थी कि सागर उसके गीत से प्रसन्न हो रहा है इसलिए वह बार-बार गाती थी । सागर का पारा चढ़ गया और आखिर वह गरज ही उठा ।

'क्या बात है...ठाकराँ !' किलेदार ने लड़खड़ाती ज़बान से पूछा ।

'दूसरा गीत गाओ ।'

साकी सहमी-सी खड़ी थी । वह रो पड़ी.....

'रोती है.....' सागर ने कहा ।

उसने दूसरा गीत नहीं गाया । किलेदार उसके पास पहुँच गया । खाँ साहब ने पुचकार कर उसके आँसू पोंछ डाले ।

खाँ साहब रोमांचित हो गये । उन्होंने और शराब पी और बेहोश हो गये ।

‘क्या गाती है ।’ कहकर साकी को किलेदार ने अपनी ओर खींचा । तबले की धुन पर फिर नृत्य शुरू हुआ । अबकी बार तो एक भुण्ड का भुण्ड नाच रहा था ।

‘फूलझड़ियाँ.....ओ.....हो.....फूलझड़ियाँ ।’

सागर का नशा उतर-सा रहा था । अंधेरी रात में वह खुले प्रकोष्ठ में आया और दूर क्षितिज पर दैत्य के समान दिखाई पड़ने वाली पहाड़ियों को देखने लगा । उसे गीत ने हिला दिया था । उसे लगा कि ‘नदी जसकोट की शक्ति का प्रतीक है । और पहाड़ी शाही फौजें । विद्रोही शाखा स्वयं सागर । वह सिहर उठा । वह फिर से अन्दर आया उसे स्मरण आया उसने फिर सोचा । पुराना पानी क्या उदयसिंह का प्रतीक है नहीं नहीं वह अधिक नहीं सोच सका । उसने अधिक मदिरा पी और साकी को पास बुलाया । उससे कहा, ‘साकी ! उस गीत से तुम्हारा क्या आशय था ?’

‘कुछ नहीं ।’

‘सच ।’

‘हाँ कुछ मतलब नहीं था ।’

‘सच कहती हो ।’

‘हाँ सच कहती हूँ ।’ सागर ने उसे अधिक पुरस्कार दिया और कहा, ‘फिर से वह गीत नहीं गाना ।’

‘नहीं गाऊँगी ।’

‘ठाकुर ! माँजरा क्या है ?’ किलेदार ने सागर से पूछा ।

‘कुछ नहीं ।’

‘ग्रमां, हमीं को बनाते हो.....क्या कहती है वह.....’ किलेदार सागर के पास खिसक आया था ।

‘खाँ साहब ! मैंने उससे कुछ नहीं कहा । सिर्फ उससे यह कहा कि वह उस गीत को फिर से न गाए’ कह कर सागर वहाँ से जाने लगा ।

‘अर्माँ तुम तो ऐसे चिढ़ते हो जैसे तुम्हें बिच्छू ने काटा हो माजरा क्या है.....कुछ.....कुछ.....’

बात को अनसुनी कर सागर बाहर चला आया । संदेह नहीं कि वह मदिरा-भक्त था । लेकिन उसके जीवन में सिर्फ एक स्त्री ने प्रवेश किया था और वह थी उसकी पत्नी । पत्नी की मृत्यु के बाद जैसे उस पर वज्र गिरा हो । उसके बाद उसने किसी स्त्री की ओर आँख उठा कर नहीं देखा । पत्नी की याद को अपने दिमाग से निकालने के लिए या अपने आपको भुलाने के लिए वह मदिरा पीता था ।

जसकोट के पतन के पहले भी ऐसी ही महफिल हुई थी ।

*

*

*

किलेदार ने समय नष्ट न करते हुए निकटवर्ती प्रदेशों में उदयसिंह के उठने का समाचार भेज फौजें बुलवाईं । लगभग बीस-बाईस हजार सैनिकों को लेकर किलेदार ने अपने लिए दूसरा स्थान चुना । जासूसों ने उसे बताया कि उदयसिंह के पास अधिक सेना नहीं है । किलेदार ने उदयसिंह की सेना को दूर से देख कर यह निश्चय किया कि उस पर चढ़ाई करना व्यर्थ है क्योंकि उदयसिंह को प्राकृतिक स्थल अपने अनुकूल मिला था । बड़ा मैदान था । उसके एक ओर घाटी थी । तीनों ओर पहाड़ था घाटी के पास छोटा-सा पहाड़ था । वहाँ से घूम कर घाटी के मुँह पर बाहर से जा सकते थे ।

उदय मैदान में अपनी सेना लेकर डट गया था । शाही फौज ने भी अलग मैदान चुना । दो सप्ताह ऐसे ही व्यतीत हो गए किंतु किसीने भी किसी पर आक्रमण नहीं किया ।

‘मैं एक काम करता हूँ ।’ अजयसिंह ने कहा ।

‘क्या ?’

‘अपने साथ पाँच हजार सैनिक लेकर मैं शाही फौज पर आक्रमण करता हूँ । एक दो घंटे लड़ कर मैदान छोड़ दूँगा । शाही फौज हमारा पीछा करेगी । मैं सारी टुकड़ियों सहित यहाँ आ जाऊँगा । शाही फौज के यहाँ आते ही तुम दूट पड़ना । तीन ओर से घाटी की ओर दबाना ! घाटी के बाहर हमारे सैनिक छिपे रहेंगे । यदि शाही फौज वहाँ से निकलने की कोशिश करेगी तो उम पर आक्रमण होगा ।’

सलाह उदय को पसन्द आ गई ।

दूसरे दिन सबेरा होने से एक प्रहर पहले ही अजयसिंह अपने पाँच हजार सैनिकों सहित शाही फौजों की ओर बढ़ गए । सारे सैनिक घोड़ों पर थे ।

एक पहर तक वे दूर रहे...

सबेरा होते होते पूर्वी क्षितिज पर किलेदार ने भयंकर धूल उड़ती देखी । उसे समझते देर न लगी । उसने फौजों को यथायोग्य आदेश दिए । अजयसिंह की बढ़ती हुई फौज के सामने उसने तोपखाना पूरा लगा दिया । उसने तोपों की दाग प्ररम्भ कर दी । उदयसिंह ने तोपों से बचने के लिए अपने सैनिकों को दो भागों में बाँट फेंक जाने का हुक्म दिया ।

परन्तु किलेदार ने अत्यन्त चतुराई से काम लिया । तोपों की दाग असफल होते देख । उसने घुड़ सवारों को कूच का हुक्म दिया । अब तक लड़ाई पूरी तरह से शुरू हो गई थी । शाही फौज के आगे से अधिक सैनिक मैदान में आ चुके थे । अजयसिंह ने युद्ध बढ़ता देख अपने सैनिकों को मैदान छोड़ने का हुक्म दिया । जितनी तेजी से जसकोट के सैनिक आए उससे भी अधिक तेजी से वे वापिस मुड़े ।

किलेदार हँस पड़ा । उसने कहा, ‘ठीक ही ये जसकोट की फौजें लड़ेंगी । किलेदार ने सोच लिया कि जसकोट के ये भागे हुए सैनिक

पड़ाव में जाकर ही रुकेंगे । पड़ाव पास ही था ।

उसने जसकोट के सैनिकों का पीछा करने के लिए अपनी फौजों को आदेश दिया । अजयसिंह भाग कर उदयसिंह से आ मिला ।

किलेदार ने तोपखाना सम्हाला और पूरी फौजों सहित उदय की सेनाओं के संचालक अजयसिंह की ओर द्रुतगति से प्रयाण किया । तोपखाना आगे-आगे था । घाटी से गुजर कर उस मैदान में किलेदार ने प्रवेश किया ।

तीनों पहाड़ों पर उदय ने मोर्चाबन्दी कर रखी थी । वहाँ पर तोपें गाड़ रखी थीं । तीनों पर कुल सान तोपें थीं । शाही फौजों के आते ही जसकोट के सैनिक पहाड़ों पर चढ़ने लगे । शाही फौज के आते ही पूर्वी पहाड़ी पर से उदय की तोपों ने दाग प्रारम्भ कर दी । एक घंटे तक अन्य तोपों में भी दाग शुरू हो गई । किलेदार की समझ में अब आया कि जसकोट के सैनिकों का पीछा कर उसने ठीक नहीं किया । उसे तोपखाना लगाने का अवसर ही नहीं प्राप्त होता था । दोपहर की चिलचिलाती धूप में उस पर गंले पड़ रहे थे ।

शाही फौजों ने पहाड़ियों पर चढ़ना शुरू किया । संध्या होते-होते लड़ाई ने जोर पकड़ लिया । किलेदार ने देखा कि विजय मिलनी कठिन है इसलिए उसने घाटी से हटना शुरू किया किंतु इससे पहले कि घाटी से वह प्रयाण करता जसकोट के छिपे सैनिकों ने उस पर आक्रमण किया ।

रात हो गई थी । हल्की-हल्की चांदनी छिटकी थी । लड़ाई चल रही थी । रात में धीरे-धीरे शाही फौजें मैदान छोड़ने लगी । सबेरा होते-होते शाही फौजों ने मैदान छोड़ दिया । किलेदार चाहता था कि युद्ध में उसके सैनिक अधिक न मारे जाएँ और उसकी विजय भी हो जाए किन्तु यहाँ तो बात ही उलटी थी । किलेदार को दुर्ग की रक्षा करनी थी । इसलिए अवसर अनुकूल न पाकर हटना प्रारंभ कर दिया था ।

परन्तु यह हार उसे बहुत महँगी पड़ी। आघे से अधिक या तो मारे जा चुके थे या घायल थे। सारा तोपखाना उदय के हाथ लगा।

सवेरे उदयसिंह ने शाही फौजों का पीछा कर उनके पड़ाव पर धावा मारा। वह उन्हें विश्राम नहीं लेने देना चाहता था।

किलेदार ने जब देखा कि पड़ाव में भी सुरक्षित रहना कठिन है तो वैसे ही जसकोट नगर की ओर भागना आरंभ किया।

समस्त शाही फौजें नगर में समा गईं। नगर का फाटक बन्द कर लिया गया।

शाही पड़ाव के समस्त शिविर तथा अन्य रसद इत्यादि उदय के हाथ लगे। शाही फौजों का पीछा न करते हुए उदय ने अपने पड़ाव की ओर लौटना ही उचित समझा।

*

*

*

कुमुद बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। जिस समय प्रहरी ने शिविर के समक्ष उदय का घोड़ा पकड़ा, उस समय कुमुद ने हाथ देकर उदय को घोड़े से उतरने में सहायता दी। उदय ने घोड़े से उतर कर कुमुद का हाथ जोर से दबा दिया। उसका चेहरा लाल हो गया।

उदय को इतनी फुरसत नहीं थी कि वह कुमुद से अधिक समय तक बात करे।

‘मैं अभी आता हूँ कुमुद!’ कह कर तीर की भाँति दूसरी ओर उदय मुड़ गया।

युद्ध से सेना लौटी थी। बहुत-सा काम था। दूटे एवं अस्त-व्यस्त सामान को एक ओर करना था।

भारी कार्य तो था, घायलों और मृतकों का। स्त्रियों का करुण क्रन्दन हृदय हिला देता था। किसी का पति घायल था हर किसी का कोई न कोई संबंधी किसी न किसी तरह आहत तो हुआ ही था।

घायलों एवं मृतकों के कार्य की व्यवस्था कर अपने दस हजार सैनिकों को समय नष्ट न करते हुए उसने नगर घेर लेने की आज्ञा दी । इस दल का नेतृत्व जयसिंह ने किया ।

उदय डेरे पर ही रहा ।

इस युद्ध द्वारा कम से कम यह निश्चित हो गया था कि शाही फौजों से खुला मैदान लेने का प्रश्न है ही नहीं । अबू का युद्ध नगर और दुर्ग से ही संबंधित था ।

उदयसिंह ने सारे पड़ाव को उठाने की आज्ञा दी । वृद्ध और स्त्रियाँ अधिक सुरक्षित स्थान में भेज दिए गए । कुमुद भी उनके साथ थी ।

*

*

*

जसकोट के नगर पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उसका नगर द्वार तो सुधार लिया गया था किन्तु परकोटा टूटा हुआ था । उदय ने नगर को घेर कर सदर दरवाजे पर तो जोर लगाया ही लेकिन परकोटे की खाई में कई स्थलों पर परकोटे के टूटने से ईंट पत्थर जमा हो गए थे । उस ओर उसका ध्यान गया ।

उसने नगर पर आक्रमण किया । किलेदार ने ज्यादा लड़ना बेकार समझा क्योंकि अमली बात तो दुर्ग की रक्षा थी । नगर में शक्ति खराब करने की अपेक्षा दुर्ग में समा जाना ही उसने श्रेयस्कर समझा । उसने समस्त शाही फौजों को दुर्ग के अन्दर ले लिया और फाटक बन्द कर लिए ।

उदय ने नगर पर आक्रमण किया और उसे ले लिया । जसकोट पर उदय का पुनः अधिकार हो गया । ध्वस्त नगर पर पुनः एक बार जसकोट की पताका फहरा उठी । टूटे हुए घरों में जहाँ कहीं भी जगह मिली जसकोट के सैनिकों ने जमना शुरू किया ।

उदय ने अपने टूटे हुए राजमहल में प्रवेश किया । ऊपरी दोनों मजिलें गिर चुकी थीं ।

लेकिन आखिरी और सबसे भारी मंजिल अभी तय ही करनी थी वह थी—जसकोट के दुर्ग पर विजय ;

जसकोट का दुर्ग चारों ओर से घिर चुका था । किलेदार ने पसीना पोंछते हुए कहा, 'सागर ! बादशाह के कानों में हमारी शिकस्त की खबर गई तो खैर नहीं ।'

'आप एक काम कीजिए ।'

'क्या ?'

'बादशाह को कोई सामाचार मत भेजिए ।'

'क्यों ?'

'इससे तो वे समझेंगे कि जसकोट पर हमारा कब्जा है ही ।'

'यह तो गद्दारी होगी ।'

'हाँ साहब ! देखिए पूछा गया तो कह दीजिएगा कि किला घिरा हुआ था आखिर क्या करते ?'

किलेदार गंभीरावस्था में खड़ा बाहर की ओर देखता रहा ।

'बादशाह से फौज मंगाना हो तो बात दूसरी है ।' सागर ने कहा ।

'फौज !' व्यंग्य से किलेदार ने कहा, 'ठाकरा ! फौज अब कौन भेजेगा । बादशाह तो खुद उलझा है । उधर शिवाजी एक के बाद एक किले सर किए जा रहा है ।'

सागर ने दुर्ग के सदर फाटक की तोप संभाली किन्तु गोले दागने में वह सुस्त था ।

'ठाकुर ! ऐसे काम नहीं चलेगा ।' किलेदार ने सागर से कहा ।

'सागर का जोश मौका आने पर देखना ।' सागर ने जैसे नींद से जाग कर उत्तर दिया हो ।

*

*

*

शाहजादा अकबर ने राजपूताने में बगावत का झंडा खड़ा किया बादशाह उस समय अजमेर में था । उस समय अकबर की सहायतार्थ

न जाने कितने राजपूत राजा एकत्रित हो गए । राणा राजसिंह और जोधपुर का वीर राजपूत सरदार दुर्गादास उसकी ओर था । आमेर को छोड़कर लगता कि जैसे राजपूताना बादशाह पर चढ़ दौड़ेगा । राजपूतों के समक्ष एक बार अकबर का युग साकार हो उठा । शाहजादा अकबर में उन्होंने शाहजादा के पर-पितामह अकबर की छाया देखी ।

आलमगीर ने शाहजादा अकबर को एक भारी फौज देकर राजपूतों को दबाने भेजा था परन्तु बजाय इसके कि वह राजपूतों को दबाता वह राजपूतों से मिल गया ।

औरंगजेब की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे । अजमेर से अकबर कोई खास दूर नहीं था । औरंगजेब के पास इतनी सेना नहीं थी कि वह अकबर का सामना करता । उसने सहायता के लिए इधर उधर जल्दी-जल्दी आदेश भेजे ।

यदि इस समय शाहजादा अकबर ने औरंगजेब पर चढ़ाई कर दी होती तो भारत का इतिहास दूसरा ही होता । एक स्थल पर एक शाही टुकड़ी को अकबर के हाथों धुरी तरह से परास्त होना पड़ा ।

औरंगजेब भयभीत हो रहा था कि कहीं अकबर समय नष्ट न करते हुए उस पर चढ़ाई न कर दे । किन्तु अकबर, अकबर था औरंगजेब नहीं । उसने अपने नाम सिक्के जारी करवाने शुरू कर दिए और अपने आप को हिन्दुस्तान का बादशाह घोषित कर दिया । खुतुबा अपने नाम से पढ़वाना शुरू कर दिया । जशन और रंग-रंलियाँ मनाई जाने लगीं ।

औरंगजेब के लिए इतना बहुत था । उसे । समय मिल गया । उसने अपने विश्वसनीय जागीरदार और सामन्त शीघ्रातिशीघ्र एकत्रित किए । कूटनीति से उसने राजपूतों में फूट डलवा दी । रातों-रात कितने ही राजपूत राजा अकबर को छोड़ कर खिसक गए । उन्होंने समझा कि उन्हें फँसाने के लिए औरंगजेब ने यह चाल रची है । राणा राजसिंह और दुर्गादास ने अकबर का साथ न छोड़ा ।

अकबर का लोहा लाल था । औरंगजेब ने समय नष्ट न करते हुए उस पर चोट की ।

युद्ध हुआ... अकबर की हार हुई । ठाकुर दुर्गादास ने उसे संभाजी तक दक्षिण में अनेक कठिनाइयाँ सह कर किसी तरह पहुँचा दिया ।

विजयी औरंगजेब राजपूताने का विद्रोह दबा कर दिल्ली लौटा ।

दिल्ली में उसे जासूसों द्वारा जेबुन्निसा के वह गुप्त पत्र प्राप्त हुए जो उसने दिल्ली से शाहजादा अकबर को लिखे थे ।

औरंगजेब के लिए इतना काफी था ।

जेबुन्निसा औरंगजेब की बहुत लाडली बेटी थी । औरंगजेब ने शाहजादी को फूल की तरह पाला था । जब निसा छः वर्ष की थी उसी समय उसकी शिक्षा-दीक्षा का भार शक्रुल्ला नौशापुरी की पत्नी मरियम हाफिजा को सौंपा था । उसी ने शाहजादी को पढ़ना लिखना सिखाया और कुरान शरीफ कंठस्थ कराया । आठ वर्ष की अवस्था में ही मधुर वाणी में निसा ने औरंगजेब को सम्पूर्ण कुरान शरीफ सुनाया था । औरंगजेब इतना प्रसन्न हुआ था कि उसने तीस सहस्र अर्शफियाँ उसे पुरस्कार स्वरूप दी थीं । शाहजादी की इस सफलता पर राजधानी में कई दिनों तक उत्सव मनाया गया था । उसकी मेधा शक्ति देखकर औरंगजेब ने शाहजादी की उच्च शिक्षा के लिए विद्वान संयद मुल्ला अशरफ को उसे अरबी तथा फारसी पढ़ाने के लिए नियत किया था । बड़े मनोयोग से इन भाषाओं को सीखकर निसा ने उन पर अधिकार प्राप्त कर लिया । औरंगजेब की सलतन्त में शेर-शायरी करना मना था लेकिन निसा को वह अधिकार प्राप्त था ।

और इसी औरंगजेब ने निसा के ये गुप्त पत्र प्राप्त कर उसे गिरफ्तार कर लिया । जहाँगिरा और औरंगजेब का प्यार पाने वाली निसा अथ सख्त पहरे में थी । तातारी बाँदियाँ नंगी तलवारें लेकर उसके चारों ओर अब डटी थीं ।

जहाँग़ारा ने सुना तो सिर पीट लिया । रो तो वह सकती नहीं थी क्योंकि आँसू तो उसके कब के सूख चुके थे । उसके आँसुओं की भला क्या बिमात थी ? उसमें कुछ ताकत होती तो आगरे के किले में आठ साल सड़कर क्यों शाहजहाँ को मरना पड़ता ? उसके आँसुओं में ताकत होती तो क्यों दारा शिकोह का मुँह काला कर गधे पर बिठा कर उसे राजधानी की सड़कों पर घुमाया जाता और कुत्ते से भी बदतर मौत मारा जाना । जहाँग़ारा ने जिसको अपना प्यार दिया उसे मृत्यु ने भी अपना प्यार दिया ।

दूसरे दिन भरे दरबार में निसा की पेशी थी । काजी के समक्ष न्याय होने वाला था ।

पिछली रात को जहाँग़ारा निसा से मिली ।

निसा ने एक भीषण उदासी लिए जहाँग़ारा को देखा । जेब्रुनिसा सफेद कपड़ों में थी । उसका शरीर भी लगता था जैसे सफेद हो गया हो । चेहरे पर एक दिव्य शांति छाई थी । निसा कमरे में नीचे ही बैठी थी ।

जहाँग़ारा पहले तो उसे एकटक देखती रही । उसके बाद अपने आँसुओं का बाँध नहीं रोक सकी ।

‘मेरी बच्ची……’ कह कर दोनों बाहें उसने निसा के गले में डाल दीं । निसा ठंडे लोहे की तरह ठंडी बैठी थी ।

उमने जहाँग़ारा को देखा और पागलों-सी देखती रही……

‘मेरी बच्ची……यह तूने क्या किया……इस घुड़ापे में क्या खुदा को मुझे यह सब दिखाना था ।……पगली कहीं कि……तुझे भला यह क्या सूझा था ।’ जहाँग़ारा ने कहा ।

निसा मौन थी ।

‘मेरा प्यार आखिर तुझे भी ले डूबा……या अल्लाह……अब तेरा क्या होगा ?……इस मजहबी अन्धे औरंगजेब को क्या हो गया ।’

निसा मौन थी ।

निसा के कंधे पर सिर रखकर जहाँआरा सिसकती रही.....निसा शून्य में पागलों की तरह देख रही थी ।

उसके दोनों कंधे हिलाकर जहाँआरा ने कहा, 'पगली बोलती क्यों नहीं कुछ तो बोल ।'

निसा मौन रही । उसने जहाँआरा को देखा और देखती ही रही ।

निसा के कपोलों पर आँसुओं की दो बूँदें बह गईं । जहाँआरा ने उनको गिरने से पहले पोंछ दिया ।

'वक्त पूरा हो गया है ।' दरवाजे पर से नंगी तलवार लिए हुए खड़ी बांदो ने कहा ।

जहाँआरा ने निसा का माथा चूमा उसके बाल सहलाए और उठ कर चली गई । निसा शून्य में ताकती रही ।

*

*

*

दूसरे दिन निसा की पेशी हुई । शाही वकील से बयान सुन चुकने के बाद काजी ने कुरान शरीफ के पन्नों में हाथ मारना शुरू किया । सफेद कपड़ों में काजी बगुले की तरह लग रहा था । कुरान की दो चार आयतें अदा कर काजी ने इस जुर्म की सज़ा आजन्म कैद ही बताई ।

आदि से अंत तक निसा शांत रही । उसने एक भी शब्द नहीं कहा । बादशाह ने उससे अपना बयान देने को कहा लेकिन उस पर कुछ प्रभाव न पड़ा । वह चुप रही ।

बादशाह ने सज़ा सुनाई—सलीमगढ़ में आजन्म कैद.....

जहाँआरा ने सुना.....।

निसा ने सुना.....।

कई बूढ़े दरबारी आँखें पोंछते हुए दरबार से चले गए ।

*

*

*

दूसरे दिन सन्ध्या को..... ।

दीवाने-खास में औरंगजेब ने निसा को बुलवाया । वह सफेद कपड़ों में थी । लगता था जैसे बहुत थकी हो । जहाँआरा भी वहाँ थी । जेबुन्निसा सख्त पहरे में लाई गई थी ।

औरंगजेब ने साधारण कपड़े पहिन रखे थे । एक ऊँचे से आसन पर वह बैठा था । सिर पर सफेद पगड़ी थी । पैजामा और मलमल का कुंरता पहने था । शरीर पर एक भी आभूषण नहीं था । एक हाथ में उसकी छड़ी थी, दूसरे हाथ में माला ।

सलीमगढ़ जाने से पहले निसा की औरंगजेब से यह अंतिम भेंट थी । जहाँआरा की ओर देखते हुए औरंगजेब ने कहा—

‘इससे पूछो कि इसकी आखिरी स्वाहिश कुछ है तो वह पूरी कर दी जायगी ।’

‘बेटी ! कुछ चाहिए तो बोल दे ।’ जहाँआरा ने निसा से कहा । एक गहरी उपेक्षा और निराशा से औरंगजेब को निसा ने देखा । वह मौन रही ।

‘मेरी सल्तनत में गहारी और बेइंसाफी को जगह नहीं है ! जिसने यह किया है । उसका नतीजा उसे भोगना पड़ा है ।’

‘भाईजान ! ज्यादा अक्लमंदी अच्छी नहीं होती । अपनी अक्ल अपने पास रखो तो ठीक होगा ।’ जहाँआरा ने औरंगजेब से कहा ।

‘आपा ! हृद से बाहर जाने की जरूरत नहीं ।’ इस लड़की से पूछो कि आखिरी वक्त वह कुछ चाहती है क्या ?’

‘बेटी.....’

‘आखिरी वक्त मैं इस मजहबी अन्धे बादशाह की सूरत नहीं देखना चाहती ।’

औरंगजेब ने सुना और गरज उठा, ‘नादान छोकरी ! इसका जवाब सलीमगढ़ का किला ही देगा ।’

‘वहाँ मैं भले ही कैद हो जाऊँ लेकिन मेरी यह आवाज रहेगी जो मौत तक इस सल्तनत की गालियाँ देती रहेगी ।’

इसके बाद बिना कुछ सुने निसा उठी और जाने के लिए तैयार हो गई ।

वह पहरे में जैसे आई थी वैसे ही चली गई ।

#

#

#

संसार में मनुष्य अपने आपको किसी न किसी तरह भुलाने का ही प्रयत्न कर रहा है । जिस समय वह अपने बारे में ही सोचता है वह दुःखी हो जाता है । जहाँआरा एक ओर तो निसा को भुलावा दे रही थी । उसके दुवों का भार हल्का करना चाहती थी । दूसरी ओर अपने आपको भुला रही थी । परमात्मा की यही सृष्टि है । दुनियाँ कहती है ईश्वर दयालु है । ईश्वर की दयालुता को देखते जहाँआरा की आँखें जवाब देने लग गई थीं । और ईश्वर की दयालुता का एक नमूना उनने आज देखा जबकि उसके समक्ष फूट-सी पाली गई निसा आजन्म कंद के लिए सलीमगढ़ सख्त पहरे में जा रही थी ।

हुकम हुआ कि सबेरे की पहली किरण के साथ ही जेब्रुनिसा को सलीमगढ़ खाना कर दिया जाए ।

सलीमगढ़ जाने से पहले पिछली रात जहाँआरा उसके पास आई । निसा फर्श पर बैठी हुई थी । वही महल था, वही कमरा था और वही भव्यता लेकिन आज सब निसा की जैसे हँसी उड़ा रहे थे । सफेद पोशाक में चुपचाप वह फर्श पर बैठी थी ।

जहाँआरा ने निसा से भेंट लेने की आज्ञा प्राप्त कर ली थी । कंद में जाने से पहले यह निसा की जहाँआरा से अन्तिम भेंट थी । दोनों की आँखें सूखी थीं । दोनों एक दूसरे को पागलों की तरह देख रही थीं ।

सहसा जहाँआरा ने अपनी दोनों बाहें निसा के गले में डाल दीं । वह चीख उठी, 'मेरी बच्ची !'

'आप रोती क्यों हैं ?'

‘रोऊँ नहीं तो क्या करूँ..... ।

‘मलिका-ए-आला.....आप जानती हैं न कि यह सारी जिंदगी की कैद है..... ।’

‘हाँ.....’

‘शायद आपकी शक्ल न देख सकूँगी ।’

ऐसी बातें मत कर बेटी ।’

‘सच बात.....है.....मलिका-ए-आला ! छाती पर पत्थर रख कर उसे सुनना ही होगा ।’

‘बोल.....।’

मेरी मौत के बाद मेरी कब्र लाहौर के पास बनवाना । जगह ऐसी हो कि न वहाँ कोई शमा जलती हो, न वहाँ बुलबुल की आवाज सुनाई देती हो । उजाड़ बियाबान जगह में मेरी मजार बनवा कर उस पर लिखवा देना—

बर मजारे मा गरीबाँ, न चिरागे न गुले ।

न परे परवाना सोजद, न सदाए बुलबुले ॥*

जहाँआरा मौन थी । निसा ने फिर कहा, ‘ख्वाहिश थी उदयसिंह से मिलने की ।’

‘उसने जसकोट पर चढ़ाई कर दी है । उसकी जीत की खबरें मिल रही हैं ।’

निसा ने उदय को पत्र लिखने की इच्छा प्रकट की । जहाँआरा ने उसे कलम दावात मँगवा दी ।

उसने लिखना प्रारंभ किया.....।

पत्र लिखकर उसने कलम दावात एक ओर रख दी । आधी रात का गजर सुनाई पड़ा ।

* मुक्त गरीब की मजार पर न तो दीपक है और न फूल । अतः न तो यहाँ पतंगों के पर जलते हैं और न बुलबुल की आवाज ही आती है ।

दोनों थक गई थीं.....आँखें रोते-रोते सूज गई थीं। निसा ने थक कर जहाँआरा के कंधे पर सिर रख दिया था और सो गई थी। जहाँआरा को भी निसा के बाल सहलाते हुए नींद आ गई।

दोनों सो गईं।

ऐसा प्रतीत होता था कि वर्षों के बाद दो बिछड़े हुए मिल रहे हों.....लेकिन वे तो हमेशा के लिए बिछड़ने जा रहे थे।

रात भर दोनों सोई रहीं।

प्रभात हुआ।

उषा आई।

एक भयंकर-सी तातारी बाँदी ने अन्दर प्रवेश कर कहा, 'मलिका-ए-आला..... सुबह हुआ चाहती है.....शाहजादी के पास से हट जाइये।'।

जहाँआरा निसा से जोर से चिपट गई। निसा ने भी उसके कंधों पर सिर रख उसे जोर से पकड़ लिया.....।

देखते ही देखते सूर्य की पहली किरण भी आ गई। अब रुकना मुश्किल था।

तीन तातारी बाँदियों ने अन्दर एक साथ प्रवेश किया।

मलिका-ए-आला.....वक्त हो गया।'।

'मैं नहीं जाने दूँगी.....तुझे.....मेरी बच्ची।' जहाँआरा चीख उठी।

'मैं नहीं जाऊँगी।'।

'मलिका ए-आला !' बाँदी ने जोर से चिल्लाया। दोनों एक-दूसरे को जोर से पकड़ कर सिसकती रहीं।

बाँदी ने अन्य चार-पाँच बाँदियों को बुलाया। वे नंगी तलवारें लेकर उपस्थित हुईं। आदेश पाते ही दो बाँदियों ने निसा को पीछे से पकड़ा। दो ने जहाँआरा के कंधे पकड़े और अपनी तरफ खींचा। निसा की सफेद कमीज गरदन के पास से फट गई लेकिन उसने

जहाँआरा को नहीं छोड़ा ।

बाँदियों की लाल आँखें अंगारों की तरह चमक उठीं । उन्होंने जोर लगाया और निसा को पीछे हटा लिया ।

खींचतान में निसा की कमीज बाँह पर से भी फट गई थी ।

सूरज काफी चढ़ आया था.....

निसा ने जहाँआरा के पैरों को हाथ लगाया.....

जहाँआरा ने उसके मस्तक को चूम लिया और कहा, 'खुदा हाफिज.....!'

ममय नष्ट न करते हुए बाँदियाँ निसा को वहाँ से ले गईं ।

इसके बाद जहाँआरा निसा के महल में आई । आकर उसने उसके कमरे की बड़ी आलमारी खोली । उसमें निसा ने अपने दीवान बड़ी तरतीब से जमा कर रखे थे । दो-तीन उदय के चित्र भी थे । कैद में जाने से पहले निसा का यही अंतिम आयोजन था । लगता था जैसे वे सामान निसा की अनुस्थिति में उसके आने की राह देख रहे हों । निसा का वह सर्वस्व था । भाग्य का हाथ भला कौन रोक सका है ? संसार में लोग आते हैं जाते हैं । भला किसने किसको रोका है । और कौन रोक सकता है ? जहाँआरा से अधिक नहीं देखा गया उसने आलमारी बंद कर दी और उस ओर पीठ कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से शून्य में ताकने लगी ।

*

*

*

'तूफानों और आँधियों पर विजय प्राप्त कर कितनी प्रसन्नता होती है ?'

निःसंदेह किन्तु दूसरे तूफानों पर विजय पाना असंभव हो जाता है ।' अजर्यासिह ने कहा ।

उदय ने जसकोट का दुर्ग घेर तो लिया था किन्तु उसे अब पता लग रहा था कि दुर्ग पर विजय पाना कोई हँसी खेल नहीं है । मुगल

फौजों को दो स्थलों पर उदय ने हराया तो था किन्तु उससे उसका सैन्य बल क्षीण पड़ गया था । इन युद्धों ने उसकी कमर तोड़ दी थी ।

जसकोट का दुर्ग काफी दुर्गम था । वह जसकोट का किला घेरे पड़ा था ।

प्रातः काल की किरणों ने अपना प्रकाश चारों ओर फैला दिया । जसकोट का दुर्ग साफ दिखाई पड़ रहा था । तोपें मौन पड़ी थीं । उदय को आश्चर्य हो रहा था कि दुर्ग के तोपची शान्त क्यों हैं ? फिर उसे स्मरण आया कि दुर्ग छोड़ते समय उसने तोपों के मुँह बेकार कर दिए थे । शायद अभी तक उन्हें सुधारा नहीं गया था ।

एक प्रहर के पश्चात् किले के पार्श्व भाग पर उसने दाग प्रारम्भ कर दी । उसका उत्तर अत्यन्त भयंकर मिला । उदय के तोपखाने का पूर्वीभाग तो बिलकुल उड़ गया कई तोपची मारे गए । कई तोपें बेकार हो गईं ।

दोपहर के समाप्त होते ही अपनी तोपों को उसने पीछे कर लिया । उसकी तोपों ने गोले उगलने बन्द कर दिए ।

थोड़ी देर के बाद उदय ने फिर मोर्चा बाँधा । किलों से तोपों की गर्जन फिर प्रारम्भ हुई । दुर्ग से बहुत भयंकर गोले आ रहे थे उनका उत्तर देने के लिए उदय की तोपें बेकार-सी लगती थीं ।

‘उदय’ उदय ने पीछे मुड़ कर । देखा उसके पिता पसीना पोंछ रहे थे ।

‘कहिए ।’

‘गढ़ पर विजय पाना असंभव है ।’ अजयसिंह के माथे पर पसीने की बूँदें चमक रही थीं । हाथ बारूद से काले हो रहे थे ।

‘पिता जी.....असंभव कुछ नहीं है ।’

उसी रात उदय को वहाँ से काफी पीछे हट जाना पड़ा ।

दुर्ग की तोपों ने उस दिन उदय की सेना को काफी नुकसान

पहुँचाया ।

‘यदि फिर से मुट्ठड़ होकर लड़ा जाये तो ।’ अजयसिंह ने कहा ।

‘इसका आशय तो यह हुआ कि हम अपनी हार मान लें ।’

‘अब क्या कोई कसर बाकी है ?’

‘नहीं मैं तो पूरी तरह लड़ूँगा । पिताजी..... मैं अब लौट नहीं सकता अब लौटना मूर्खता होगी । मैंने सोच समझकर ही आक्रमण किया है ।’ कह कर उदय सदर फाटक की ओर मुड़ा ।

‘पिता जी ये सदर फाटक की तोप क्यों शांत है ? अभी तक वहाँ से एक भी गोला नहीं आया । सदर फाटक पर जो दस्ता है उसे भी कोई नुकसान नहीं हुआ ।

‘पुत्र, उसकी मौनता रहस्यमय है जानते हो न किले के पार्श्व भाग की तोपें भी इसी तरह मौन थीं । और बाद को कैसा करारा उत्तर मिला था ।’

*

*

*

शिविर में अजय, कुमुद और उदय बैठे थे । अजयसिंह बहुत उदास थे ।

‘आप उदास हैं ।’ उदय ने पूछा ।

‘बेटा, संसार बदल गया है । अपने समय को ढूँढ़ता हूँ । मिलता नहीं ।’

‘कैसे ?’

‘सब कुछ नया है ।’

‘अर्थात् ?’

‘मेरे समय के न तो साथी रहे और न वह समय, युद्धों में लहराने वाले उनके हाथ न जाने कहाँ गए ? उस समय का मंत्री कोई तो वृद्ध हो चुका है, किसी की मृत्यु हो गई है । तुम मेरे लिए नये हो, कुमुद नई है, सैनिक नए हैं । एक अजीब-सा वातावरण है । अपने समय के

जसकोट को ढूँढ़ता हूँ वह मिलता ही नहीं है ।’

‘पिताजी ! प्रकृति का गुण ही नवीनता है ।’

‘हाँ बेटा, परिवर्तन तो होता ही है किन्तु स्मृतियों में भी एक अजीब-सी ताकत होती है । इन खोए हुए क्षणों का नाम ही तो जीवन है । उन महर्षि के बदले आज यहाँ कुमुद है ।’

महर्षि का नाम सुन कर सब उदास हो गए किन्तु अजय उठ कर वहाँ से चले गए ।

‘पिताजी का मन इस युद्ध में नहीं लग रहा है ।’ उदय ने कहा ।
उन पर काफी बीत चुकी है इसलिए यह संसार उन्हें सारहीन दिखाई पड़ रहा है ।’

‘लेकिन लड़ते गजब के हैं ।’

‘पुराना चावल जो है ।’

‘उनके आ जाने से हमें नया बल मिला है । रण-संचालन तो उनका गजब का है ।’

‘आज ज्यादा उदास हो गए ।’

‘हाँ ।’

‘यह क्रम कब तक चलता रहेगा ?’

‘यह मैं क्या बताऊँ ? सोचा कुछ था । हुआ कुछ, अब पता लगा कि गढ़ पर विजय पा लेना हँसी-खेल नहीं है ।’

‘तो घेरा उठा लोगे ।’

‘घेरा तो मैं नहीं हटाने का । रसद समाप्त होने पर देखता हूँ किलेदार कैसे समपर्ण नहीं करता ?’

‘मान लो तुम विजयी नहीं होते तो क्या करोगे ?’

‘विजयी नहीं होऊँगा तो हार तो जाऊँगा ।’

‘हार कर क्या करोगे ।’

‘फिर से कोशिश करूँगा ?’

‘मान लो तुम्हारा कोई भी सैनिक नहीं बचता सब मारे जाते हैं, उस समय क्या करोगे ?’

‘यदि ऐसी अवस्था आए कि सब मारे जाते हैं। सगे सम्बन्धी भी, तो बस तुमको लेकर किसी दूर निर्जन स्थान में रह कर सारा जीवन काट दूँगा। लेकिन विद्रोही के रूप में शाही हुक्मन को हर तरह की तकलीफ देता रहूँगा।’

इतने ही में प्रहरी ने समाचार दिया कि जहाँग़ारा का भेजा हुआ कोई दूत मिलना चाहता है। नाम सुनकर स्वयं उदयसिंह ने दूत को मिलने के लिए बुलाया। दूत ने उदयसिंह को एक पत्र दिया।

यह वही पत्र था जो निसा ने कैद को जाते समय उदय को लिखा था। जहाँग़ारा ने उदयसिंह तक उसे भिजवाने की व्यवस्था कर दी थी। पत्र के देने के बाद दूत ने दिल्ली का सारा समाचार सुनाया। उदयसिंह ने दूत का सत्कार व उसके ठहरने की व्यवस्था की।

पत्र लेकर उदय शिविर में आया। कुमुद उसके भाव पढ़ रही थी। उदय के हाथ काँप रहे थे। मस्तक पर पसीने की बूँदें थीं।

‘मेरे उदय,

तुमसे मैंने कहा था—

चे आसां दीदई आशिक, तारीक इश्क बाजी रा,

तप ईजा, आतिश ईजा, अखगर ईजा औ’ शरर ईजा*

लेकिन सुन कर तुमने कहा था कि मैं अपने आप को धोखा दे रही हूँ। यह बात इतनी सच कभी नहीं लगी थी जितनी कि आज। आज जिन्दगी भर की कैद के लिए सलीमगढ़ जा रही हूँ।

दिल्ली की खबरे तो तुमने सुनी ही होंगी। बगावत के जुर्म में इन्साफ के लिए मुझे जिन्दगी भर की कैद दी गई है। सलीमगढ़ का

*ऐ प्रेमी ! प्रेम करने का ढंग तुमने सरल समझ लिया है। इस पथ में गर्मी है, आग है, चिनगारी है, लपट है।

किला इस इंसान को पूरा करने का बोझ उठाएगा । जिस गम और दर्द को अभी तक उठाया है सलीमगढ़ में जा कर वह पूरा हो जाएगा । उस समय कैदखाने की दीवारें और बाहर से आने वाली सनसनाती हवा मेरी इन साँसों को लेकर चली जाएँगी । उदय, तुम मेरी जिन्दगी में आए यह एक सच बात थी लेकिन तुम्हारे पूछने पर इसे मंजूर करना मैंने अपनी एक कमजोरी समझा । और तुम्हारे ही लफ्जों में मैंने अपने आपको धोखा दिया । कहते हैं कि इश्क अबल का बोझ नहीं उठा सकता । समझ नहीं सकी कि यह बात तुम्हारे लिए ठीक-ठीक लागू होती है या मेरे लिए । लेकिन दोनों में से किसी के लिए यह बात उतनी ही सच है जितनी कि दूसरे के लिए झूठ !

यमुना के किनारे उस दिन जब तुम चाँदनी रात में मिले थे, उसी वक्त तुम्हारी बड़ी-बड़ी आँखों, चौड़े माथे, ऊँचे बदन ने मुझे खींच-सा लिया था ।

दिल की धड़कन को रोक कर जिन्दगी में मैंने एक कमी को महसूस किया था । उसके बाद तुम आते रहे । लगता था जैसे मेरी जिन्दगी पूरी होने जा रही थी ।

बुआ अक्सर कहा करती हैं कि जिसे उन्होंने अपना प्यार दिया मौत ने भी उसे ही अपना प्यार दिया । उनके प्यार की आखिरी शिकार मैं थी । जन्म भर की कैद के बाद मौत ही तो है । लेकिन मेरा भी ऐसा तजुर्बा है कि जिसे मैंने अपना प्यार दिया उसका भी भला नहीं हो सका । अपने पहले के सारे कलाम और शेर मैंने चाचा दाराशिकोह को समर्पित किए । उनके सूफी खयालातों की मैं क्रायल थी । सुलेमान शिकोह से मेरी मंगनी भी हो गई थी । लेकिन शादी का दिन नहीं आ सका, क्योंकि मैंने उसे अपना प्यार दिया और वह मौत के घाट उतार दिया गया । सुलेमान की मौत ने जिन्दगी का मुझे बहुत बड़ा दर्द दिया और साथ तजुर्बा भी ; वह यही कि इन्सान जो चाहता है वह नहीं होता ।

उसके बाद कितने ही मेरी जिन्दगी में आने की कोशिश करके रह गए । लेकिन उन सबको मैंने ठुकरा दिया । सुलेमान की तस्वीर को लेकर दिल में मैंने अपना दर्द पाला । उस दर्द को सुनने वाली सिर्फ बुआ थीं । बुआ जहाँग़ारा न होती तो शायद मैंने कब की जान दे दी होती । तुमने जब कहा कि मैंने तुम्हारी जिन्दगी में कदम रखा है तो मैं भिन्नक कर रह गई । मेरे प्यार के ग्राहक तुम थे । सोचती हूँ खुदा न करे तुम पर कोई आफत आए । यही क्या थोड़ा था कि सारी जसलोट की सल्तनत से तुम्हें हाथ धोना पड़ा । खुदा न करे कि और तरह की कोई नई आफत तुम पर आए ।

कैद की आखिरी रात में सब बेगाने हो गए । बुआ के सिवाय मुझ से मिलने कोई नहीं आया । उस दिन बाप का दिल भी बेटी की ओर से आँखें बंद कर रह गया । सच है उदय ! बिल्कुल सच है कि यह सारी दुनिया एक सपना है । कौन किसका बाप है और कौन किसकी बेटी !

तामरा जंजीर दर पाए-दिले दीवाना शुद ।

दोस्त शुद दुश्मन मरा हर आशना बेगाना शुद ॥*

यह दुनिया क्या किसी मुसाफिरखाने से कम है । आखिरी रात को बुआ अपनी बाँहों में मुझे लेकर सारी रात रोती-रोती सो गई ।

मेरा दिल करता था कि उस रात को तुम होते और दोनों बाँहों में तुम्हें लेकर मैं अपने सारे आँसू निकाल देती । लेकिन किस्मत को क्या कहा जाय ? यह मेरा तुम्हें आखिरी खत है । शायद सलीमगढ़ से अब कुछ न लिख सकूँ । मेरा खत पढ़ कर मुझे खत मत लिखना क्योंकि मेरे हाथों में तो वह पहुँचेगा नहीं उलटे तुम्हारी जान पर बन आयेगी ।

*पैर में जंजीर पड़ते ही दिल दीवाना हो गया, दोस्त दुश्मन बन गये और सभी आशना बेगाने हो गए ।

अपनी खंरियत का हाल बुआ को देते रहना । उन्हीं से मुझे पता लग जाया करेगा । खुदा तुम्हें सलामत रखे ।

खुदा हाफिज !

तुम्हारी ही

कनीज

निसा ।'

पत्र पढ़ कर उदय की आँखों से आँसू गिर पड़े । पत्र लेकर बिना कुमुद की ओर देखे वह गिविर से तीर की भाँति निकल गया । पत्र में निसा ने अपनी ही कविता की पंक्तियाँ लिखी थीं

*

*

*

‘ठाकरा ! खुशखबरी सुनते हो ।’

‘कैसी खुशखबरी !’

‘हमारी मदद के लिए बीस हजार फौज और आ रही है ।’

‘ऐं……’ सागर का चेहरा गंभीर हो गया ।

‘जैसे ही वह फौज आएगी हम फाटक खोलकर उन पर टूट पड़ेंगे । दो तरफ से दुहरी मार पड़ेगी तो देखते हैं कि उदयसिंह क्या करता है ?’

सागर गंभीर होकर कुछ सोच रहा था ।

‘ठाकुर ! क्या सोचते हो ?’

‘कुछ नहीं ।’

‘नहीं कुछ तो है तुम बता नहीं रहे ।’

‘कुछ नहीं है खाँ साहिब !’

‘सागर, सदर दरवाजे की दोनों तोपें तुम्हारे मातहत रही । वह जोरदार आग फेंको कि मैदान में दुश्मन का पता न लगे ।

‘हाँ……ठीक है ।’

उसी दिन रात को अजय ने दुर्ग के पूर्वी बुर्ज के पास खुली दालान

पर देखा कि मशाल का प्रकाश तीन बार जल कर तीन बार बुझा है ।
 एकदम उन्हें सागर का स्मरण हो आया ।

*

*

*

उसी समय रात को गुप्तचरों ने समाचार दिया कि बीस हजार शाही फौज किलेदार की मदद के लिए आ रही है । उदय के होश उड़ गए । सोचा, 'यदि हम घेरा डाले ही सामना करते हैं तो जीवित ही मारे जाएंगे ।'

उदय ने उसी समय सेनानायक को बुला भेजा । तब हुआ कि उदयसिंह आठ हजार सैनिकों को लेकर शत्रु का मार्ग रोकें और बाकी सेना लेकर अजयसिंह घेरा डालें रहें ।

आधी रात तक उदय के नेतृत्व में आठ हजार सैनिकों ने प्रयाण कर दिया ।

*

*

*

सागर सदर फाटक की तोप सम्हाल रहा था । उसने बहुत शराब पी रखी थी । उसने सदर फाटक खुलवा दिया था ।

उदयसिंह के चले जाने के बाद अजयसिंह ने अपनी सेना को सम्हाला किन्तु किले में तोपों की दाग बहुत जोर से प्रारंभ हो गई । सदर फाटक की तोपें मौन थीं । अजयसिंह की रात का स्मरण आया जब कि उसने मशालों का प्रकाश तीन बार बुझकर तीन बार जलते देखा था । अजयसिंह ने सारी सेना सदर फाटक के पास कर ली । उसे सन्देह तो हुआ परन्तु उन्होंने भी सदर फाटक पर एक भी गोला न छोड़ा ।

इतने में ही उन्होंने सदर फाटक खुलता देखा । और वह खुला ही रह गया । वहाँ एक भी सैनिक नहीं था । तीसरा प्रहर शुरू हो रहा था ।

सैनिक तलवारें ऊँची कर के चिल्ला उठे । अजय सारी सेना लेकर सदर फाटक पर बिजली की तरह भपटे ।

फाटक के खुलने में एक भीषण रहस्य था ?

फाटक के खुलते ही किलेदार नंगी तलवार लेकर उस ओर झपटा ।

‘ठाकराँ ! तुमने सद्गर फाटक खुलवाया है ।’ किलेदार गरज उठा ।

‘हाँ, खाँ साहब ! सागर ने ही उसे खुलवाया है ।’ सागर ने शान्त स्वर में उत्तर दिया ।

‘दुश्मन की सारी फौज चली आ रही है । रास्ता रोकना मुश्किल है ।’

‘इससे प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है ?’

‘इस दगाबाजी का मकसद ।’

‘यह दगाबाजी नहीं है ।’

‘शराफ़त का जामा पहिन कर इन्सानियत का दम भरते तुम्हें शर्म नहीं आती । सरासर दगाबाजी कर पूछता है उसका मतलब ! यही इन्सानियत है ।’

‘खाँ साहब.....ज्यादा बक बक अच्छी नहीं होती ।’ अब तक सागर अपने ठिये से उठकर पूरा तन कर खड़ा हो गया था ।

‘तू.....बागी है ।’

‘खैर अच्छा हुआ जो उसे पहिचान लिया.....सागर विद्रोही है, बागी है इम पहिचान के लिए मैं आपका शुक्रिया अदा करता हूँ । खाँ साहब ! सागर विद्रोह में पला है । किसी समय जसकोट के भविष्य के लिए मैंने उदय से विद्रोह किया था । आज का विद्रोह उसी विद्रोह को सफल बनाएगा । खाँ साहब, जसकोट स्वतन्त्र है । उसकी स्वतन्त्रता पर आँच भी नहीं लग सकती ।’

‘शर्म नहीं आती ठाकराँ, नमक हरामी करते ।’

‘मैंने उदयसिंह का नमक खाया है । यह दुर्ग उसका है । मेरे सारे कर्त्तव्य उसके प्रति हैं । खाँ साहब ! उससे मैंने आज ही के लिए विद्रोह किया था ।.....मैंने बादशाह का नमक नहीं खाया.....तुम्हारी और तुम्हारे बादशाह की शक्ल पर मैं थूकता हूँ ।’

‘नमक हराम.....जलील.....तू आस्तीन का साँप है । तेरी मज्जार पर नफरत बरसेगी ।’

‘बेइज्जती के साथ जीना मैंने नहीं सीखा ।’

‘छुप रह चक्कटे !’

‘ठहर बुलाता हूँ जल्लादों को ।’ कह कर वह मुड़ने लगा ।

‘इसका मौका नहीं आयेगा ।’ कह कर सागर ने उसका रास्ता रोक लिया ।

किलेदार ने तलवार खींच ली ।

कोलाहल बढ़ रहा था । अजयसिंह के सैनिक दुर्ग में घुस आए थे । अजय का पल्ला भारी था ।

किलेदार ने सागर की गरदन पर वार किया । सागर ने ढाल पर रोक लिया । पागलों की तरह सागर हँसा और विल्लाया, ‘ले सम्भाल मौत को ।’

किलेदार की तलवार से उसकी तलवार टकराई । चिनगारियाँ निकल उठीं ।

खाँ साहब के हाथ ढीले पड़ने लगे । किले में खबर फैल गई ! किलेदार के अंगरक्षक दौड़े ।

सागर घिर गया किन्तु अकेला ही वह तलवार चलाता रहा ।

किलेदार की गरदन धड़ से अलग हो गई ।

सागर ढीला पड़ चुका था । तलवारों के वार उस पर पड़ रहे थे । देखते ही देखते वह घराशायी हो गया ।

एक ने उसके सिर पर जोर से लात मारी और कहा ‘मर गया गद्दार कहीं का ।’

लेकिन उसने धीरे से आँखें खोलीं...साक्री का गीत उसे बरबस याद हो आया ।

सागर के प्राण निकल गए ।

जसकोट का वह सैनिक लड़ता-लड़ता जसकोट के लिए मारा गया ।

खैर दुनिया को उससे क्या वास्ता ? वह शराबी था । विद्रोही था । विद्रोह करना उसका काम था । उसे समझने की दुनिया को क्या जरूरत ?

जसकोट स्वतन्त्र हुआ । सबने ऊपर देखा किसी ने नीचे नहीं । किसी ने यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि आखिर जसकोट की स्वतंत्रता के लिए किसे नींव का पत्थर बनना पड़ा ?

एक समय सागर ने जसकोट के लिए विद्रोह किया था उस समय उसे मिला था जीवन । आज उसने जसकोट की स्वतंत्रता के लिए विद्रोह किया, आज मिली उसे मृत्यु ।

मुगल पताका उखाड़ दी गई । पुनः वहाँ जसकोट की पताका फहरा उठी ।

*

*

*

उदय ने शाही फौज से सफलतापूर्वक मुठभेड़ ली । उसने उसे बुरी तरह से हराया । रात होने के कारण वे सैनिक इधर-उधर फैल गए ।

उस दिन सूर्य एक साथ हँस कर हूँच गया । उस दिन पूर्णिमा थी । रात्रि का समस्त अंधकार समेट कर शान्ति हँस रही थी । किन्तु पश्चिम क्षितिज के निकटतर चन्द्र आता जा रहा था । उसका पीलापन बढ़ रहा था ।

विशालकाय बरगद के वृक्ष के नीचे कुमुद बैठी थी उसके बाल दिखरे थे । चेहरा मलीन था । बार-बार उसका आँचल हवा के साथ उड़ता और वह उसे सम्हालती ।

उसका स्वर काँप रहा था । उसकी गोद में सिर रख कर उदयसिंह अर्द्ध-चेतनावस्था में पड़ा था ।

मुगल फौजों का सामना उदय ने बहुत ही वीरतापूर्वक किया था । परन्तु वह थक गया था और साथ ही बुरी तरह से घायल । कई घाव

तो इतने भयंकर थे कि उसका जीना तक उनसे असंभव प्रतीत होता था ।

बरगद के झाड़ की पत्तियाँ रह-रह कर हिल उठती थीं । चन्द्र की स्निग्ध राका का प्रकाश उदय के मुख पर नाव उठता था । उसके विषादमय मुख पर हास की मलीन रेखायें खिंची थीं । वह कभी आँखें खोलता कभी बन्द करता था । किसी समय युद्धक्षेत्र में लहराने वाले उसके चमकते काले केश धूल और खून से सने थे । उन पर रक्त सूख चुका था । सौन्दर्य भयानकता में परिवर्तित हो गया था । चेहरे पर कई स्थलों पर घाव थे । साथ ही धूल से भी मुख विवर्ण होता जा रहा था ।

‘कुमुद...पानी...’ कुमुद ने पानी पिलाया और आँचल से हवा करने लगी ।

‘मेरे देव...’ कुमुद की आँखों से आँसू गिरे ।

‘तुम रो रही हो...ऐं ।’ उदय ने कहा ।

‘उदय...’ कुमुद चीख उठी ।

‘पगली रो मत !’ उदय के मुख पर फीकी हँसी की रेखाएँ खिच गयीं ।

‘जसकोट स्वतंत्र हो गया ।’ उदय ने कहा ।

‘हाँ स्वतंत्र हो गया ।...वह देखो पताका लहरा रही है ।’ कुमुद ने भारी गले से कहा ।

चाँदनी रात में जसकोट का दुर्गम दुर्ग सिर उठा कर आसमान से बातें कर रहा था । चारों ओर गहरी निस्तब्धता छाई थी । उदय ने कराहते हुए कहा, ‘मैं कैसे देखूँ ? मुझे तो दर्द हो रहा है ... मैं तो नहीं उठ सकता...’

‘मैं तुम्हें उस ओर कर देती हूँ ।’ कुमुद ने उदय को अत्यंत कारुणिक दृष्टि से देखा । कुमुद ने उदय का मुँह गढ़ की ओर कर दिया ।

जिसने अपना सारा जीवन स्वतन्त्रता संग्राम के लिए लगा दिया ।
अन्त समय वह अपनी सफलता को देख भी नहीं सकता था ।

‘कुमुद...जीवन...और जगत से...दूर मैं चला जाऊँगा । हमेशा
के लिए...पानी...दो...ओह...।’

कुमुद ने पात्र से पानी पिलाया । आँखें बन्द कर उसने पानी पीकर
फिर आँखें खोलीं ।

‘मुझे मुक्ति मिल जाएगी...कुमुद ।’

‘ऐसी बातें मत करो...उदय ।’

‘अपनी माँ...को...मैं...ऐसे...ही कहता था कुमुद... लेकिन...
आज...पना लगा...कि उसकी बातों में कितना सत्य था... कितनी
अच्छी ही वह... ।’

अपने आँसू जल्दी से पोंछ कर कुमुद ने उदय के सिंह मस्तक पर
हाथ रखा ।

‘उन बानों को याद कर मत...व्यर्थ कष्ट उठ!ओ ।’ कुमुद ने
कहा ।

‘पानी... ।’

कुमुद ने फिर पानी पिलाया—

‘यह अंगूठी देखती हो...न... ।’ हाथ की अँगुलियाँ ऊपर कर
कुमुद को दिखाते हुए उदय ने कहा ।

‘हाँ देखती हूँ ।’

‘इसे... उतारो... ।’

कुमुद ने उतार कर पूछा, ‘है किस की...यह... ?’

‘तुमने पहले भी यह प्रश्न...किया था...’

‘हाँ...’

‘जिबृन्निसा की है...वह अब सलीमगढ़ में कैद है... ।’

उसने फिर कहा, ‘मेरे संस्मरण पढ़ लेना...जो जया ने पढ़े
थे...सब समझ जाओगी ।’

उदय के हाथ ठंडे हो रहे थे । कुमुद चीख उठी, 'तुम्हारे हाथों को क्या हो गया ?'

'कुमुद मेरा साथ अब कोई नहीं देगा ।'

कुमुद रो उठी ।

'रो मत.....।' उदय ने लड़खड़ाते हुए स्वर में कहा । उदय ने आँखें ऊपर कर कुमुद को देखा ।

'कुमुद ! तुम्हारे पास.....कितनी.....शांति है.....।'

कुमुद सिसक रही थी । उसके आँसू उदय के मुख पर गिरे ।

'कुमुद ! रो.....मत.....।'

आज जब वह अपने आपको मिटाने जा रही थी तो उसने देखा कि उदय पहले ही मिट चुका है ।

नीरव जनशून्य निर्जन वन प्रान्तर भाग में जसकोट की स्वतन्त्रता का प्रणेत सदा के लिए संसार से जा रहा था ।

स्वर शांत थे, राका शांत थी, रजनी शांत थी, वातावरण शांत था । उस निस्तब्धता को भंग करने का यदि कोई अपराध कर रही थी तो वह थी कुमुद.....जिसके करुणामय स्वर हवा के भोंकों के साथ एक अन-जान कपन और सिहरन-भी पैदा कर देते थे ।

'उदय'

'और पिता जी को कष्ट मत देना.....'

'उदय.....'

'उनको ..पिता जी को कष्ट मत.....देना.....उन वृद्ध का संसार में कोई नहीं है ।'

'मैं जो.....हूँ।'

उदय का चेहरा जोरों से फीका पड़ने लगा । चाँद हूब रहा था । वह बिल्कुल पीला पड़ चुका था ।

'पानी.....'

कुमुद ने पानी पिलाया । पानी पीकर उदय ने आँखें बन्द करलीं ।

उसका मुख एक ओर लुढ़क गया ।

कुमुद चीख उठी । उदय का मुख जोर से अपनी गोद में उसने दबा लिया । उसके मुख के पास वह अपना मुँह ले जा कर बिलख उठी ।

‘मेरे उदय……उदय……।’

• * •

* • *

* • *

जसकोट स्वन्तन्त्र हुआ । अजयसिंह पुनः गद्दी पर बैठे……सागर के शव को उसकी इच्छानुसार वहीं पहुँचा दिया गया……जहाँ उसकी इच्छा थी । उसकी पत्नी की समाधि के पास उसकी समाधि बनी ।

और निसा……………

सलीमगढ़ के किले से दूर क्षितिज पर वह ऊँड़ जमीन देखती । यदाकदा कहीं चरवाहे दृष्टिगत होते । अपनी कैद में उसने जहाँआरा को लिखा—

दर्दा किजे कैदे-सितम, आजाद न गश्तम्
यक लहजा, जेगमहाय जहाँ शाद न शश्तम्*

*अफसोस कि कैदे-सितम से आजाद न हुई । और इस गम भरी दुनियाँ में एक पल को भी प्रसन्न न रह सकी ।

